

Shodh Shree

Volume-40

Issue-3

July-September 2021

ISSN 2277-5587

Impact Factor 5.025

Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

UGC Valid Journal (The Gazette of India,  
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

## शोध श्री

Volume-40

Issue-3

July-September 2021

RNI No. RAJHIN/2011/40531



CHIEF EDITOR  
Virendra Sharma

EDITOR  
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com  
www.shodhshree.com

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

**Virendra Sharma**

**Chief Editor**

Government Girls P.G. College,  
Ajmer

**Dr Ravindra Tailor**

**Editor**

Shodh Shree,  
Jaipur

## Editorial Board

**Prof. H.S. Sharma (Retd.)**

University of Rajasthan, **Jaipur**

**Prof. T.K. Mathur (Retd.)**

M.D.S. University, **Ajmer**

**Prof. Ravindra Kumar Sharma**

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

**Sarah Eloy**

Museum The House of Alijn, **Belgium**

**Prof. B.P. Saraswat**

Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

**Prof. Pushpa Sharma**

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

**Dr. Manorama Upadhayay**

Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

**Dr. Veenu Pant**

Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok (**Sikkim**)

**Dr. Rajesh Kumar**

Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

**Dr. Pankaj Gupta**

Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

**Dr. Rajendra Singh**

Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

**Dr. Avdhesh Kumar Sharma**

Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

## Advisory Board

**Prof. S.N. Tailor (Retd.)**

S.D. Government P.G. College, **Beawar**

**Prof. S.P. Vyas**

Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

**Dr. Kate Boehme**

University of Leicester, **United Kingdom**

**Dr. Mahesh Narayan**

Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587  
Impact Factor 5.025  
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI  
UGC Valid Journal (The Gazette of India,  
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

## शोध श्री

Volume-40

Issue-3

July-September 2021

RNI No. RAJHIN/2011/40531



Published by

**DR. S. N. TAILOR FOUNDATION**

(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

**Prof. (Dr.) S. N. Tailor**  
Managing Director

Chief Editor  
**Virendra Sharma**

Editor  
**Dr. Ravindra Tailor**

ISSN 2277-5587  
RNI No. RAJHIN/2011/40531

# Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

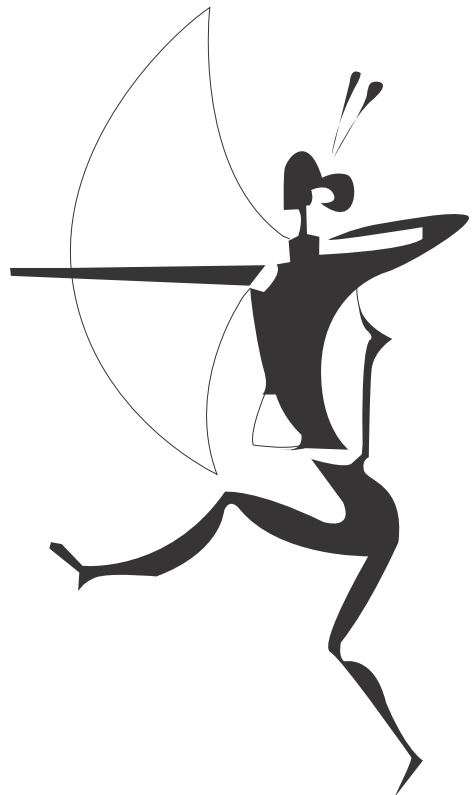
Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By  
**Dr. S. N. Tailor Foundation**  
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from  
**Shri Virendra Sharma**  
54-A, Jawahar Nagar Colony  
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at  
**Ganesh Printers, Jaipur**





# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

## Contents

Volume-40

Issue-3

July-September 2021

1. स्मरण : पं. कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण लेखन का शताब्दी वर्ष भगवान सिंह निरंजन, भिंड (मध्य प्रदेश) 1-5
2. केदार नाथ अग्रवाल के काव्य में युगबोध व युग निर्देशन 6-10  
डॉ. प्रतिमा सिंह, सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश)
3. बाल विकास में आँगनबाड़ी कार्यकर्त्रियों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण (काशीपुर ब्लॉक के विशेष संदर्भ में) 11-17  
दिव्या राव एवं डॉ. एम. पी. सिंह, हल्द्वानी, नैनीताल
4. दो विश्व युद्धों के मध्य राजस्थान में राजनीतिक परिवर्तन (1920-1939) 18-29  
डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल, झालावाड़
5. भाषा : विविध कारणों से बदलता स्वरूप (हिन्दी के संदर्भ में) 30-34  
डॉ. राकेश रंजन, भागलपुर (बिहार)
6. स्त्री विमर्श की वैचारिकी 35-40  
रश्मि नरताम, दिल्ली
7. एल. जी. बी. टी. समुदाय - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 41-44  
डॉ. नीलम जोशी, जयपुर
8. रामविलास शर्मा और शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक तुलनात्मक अध्ययन (प्रगतिशील सामाजिक चेतना के काव्यकार के संदर्भ में) 45-51  
डॉ. नेमीचंद कुमावत, रायपुर (भीलवाड़ा)
9. रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन : एक विवेचन 52-56  
डॉ. प्रमिला एवं डॉ. सुभाष सिंह, अमेठी (उत्तर प्रदेश)
10. महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार और उनकी वर्तमान प्रासंगिकता 57-64  
डॉ. अंकिता कमल पुरोहित, वर्धा (महाराष्ट्र)
11. राजस्थान के इतिहास लेखन में लोक गीतों की प्रासंगिकता 65-71  
डॉ. तोफिक हुसैन, चौमूं
12. पश्चिमी राजपूताना में दशनामी सम्प्रदाय का सैनिक योगदान का अध्ययन : 1750-1818 ईस्वी 72-75  
श्रीमती पकंज परमार, जोधपुर
13. मेवाड़ की मीरा बाई एवं वागड़ की मीरा गवरी बाई के पदों का सांगीतिक पक्ष 76-78  
डॉ. सीमा रावैड़ एवं रिया उपाध्याय, उदयपुर
14. सल्तनत काल में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का विकास 79-83  
मो. शकील, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
15. मारवाड़ की प्रमुख व्यापारिक जातियां (महाजन, रेबारी, बंजारा आदि के विशेष सन्दर्भ में) 84-87  
इन्द्रा देवी, जोधपुर
16. राजस्थान के प्रजामण्डल आन्दोलनों पर गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों का प्रभाव 88-93  
डॉ. भरत देवड़ा, जोधपुर

17. मालवा का महान संगीत प्रेमी शासक बाजबहादुर डॉ. मनीष कुमार दासौधी, बड़वानी (मध्य प्रदेश)	94-98
18. शाहपुरा (भीलवाड़ा) ठिकाने के लोकोत्सव : एक ऐतिहासिक विश्लेषण कविता गौड़, जोधपुर	99-103
19. आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में पं. मदन मोहन मालवीय का योगदान डॉ. कमल कान्त शर्मा, अलवर	104-111
20. ग्रामीण कुरीतियों को दूर करने में समाचार पत्रों की भूमिका डॉ. सन्तोष कुमार दवे, जोधपुर	112-115
21. जनसंख्या परिदृश्य : पाली नगर के विशेष सन्दर्भ में डॉ. नरेश कुमार ओझा, पाली	116-126
22. जयपुर क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन सुनिल कुमार, पाली	127-128
23. महाराजा भीमसिंह का प्रशासनिक संगठन (1793-1803 ईस्वी) ममता रानी, जोधपुर	129-133
24. मारवाड़ में डाक कार्य में संलग्न पदाधिकारी और उनको दी जाने वाली सुविधाएँ (1750-1850) सोनिया शर्मा, जोधपुर	134-136
25. मध्यकालीन मारवाड़ की कुलीन क्षत्राणियों के वीरता तथा साहस के कुछ अनछुए पहलू (वि.स.1200 से वि.स.1550) कुसुम, जोधपुर	137-142
26. Vasudhaiva Kutumbkam - An Instrument to Bring Peace and Harmony In The World Prof. Anand Prakash Singh & Dr. Ram Singh Samant, Pauri Garhwal, (Uttarakhand)	143-146
27. <i>Ardhakathanaka: The Text and the Context</i> Kalpana Malik, Delhi	147-152
28. <i>Revisiting the Partition of Bengal, 1905: Press, Politics and Government</i> Anshal Tiger, Aligarh (Uttar Pradesh)	153-157
29. <i>Challenges And Hurdles in the Journey of Women Empowerment</i> Mayuri Mehrotra, Allahabad (Uttar Pradesh)	158-165
30. <i>Peasant Protest Against Feudalism</i> (With special reference to Jat Protest in Jodhpur State) Dr. Suresh Kumar, Jodhpur	166-170
31. <i>An Ecocritical Reading of Tamsula Ao's Short Story Laburnum for My Head</i> Vinita Sandu, Jadar (Gujarat)	171-173
32. <i>To Study The Benefits and Disadvantages of Psychoanalytic Therapy In Treating Mental Problem</i> Dr. Bhavna Detha, Jaipur	174-178
33. <i>Neologism: a lingua-culture approach</i> Dr. Richa Bohra, Jodhpur	179-181

# स्मरण : पं. कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण लेखन का शताब्दी वर्ष

भगवान सिंह निरंजन

सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय आलमपुर, भिंड (मध्य प्रदेश)



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

व्याकरण भाषा की कसौटी है। भाषा को मांजने, संस्कारित करने का काम व्याकरण का होता है। जिन भाषाओं का अपना व्याकरण नहीं, वह ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह सकीं। व्याकरण के बिना भाषा में उच्छृंखलता आ जाती है, मनमाने प्रयोग होने लगते हैं। व्याकरण भाषा को तराशता है तो भाषा की गति को बाधित भी करता है। संस्कृत में पाणिनी व्याकरण की वैश्विक गरिमा है। वह उच्च मानक स्थापित किए हुए है। हिंदी व्याकरण का जन्म उस गौरवशाली परंपरा की तरह नहीं हुआ। यूरोपीय विद्वानों की पहल इस दिशा में काबिले तारीफ है। कामताप्रसाद गुरु जी का हिंदी व्याकरण अपने प्रकाशन के सौ साल पूरे कर चुका है। यह हिंदी भाषा का पहला महत्त्वपूर्ण व्याकरण है। गुरुजी के व्याकरण के साथ उनके महत्त्व और योगदान का मूल्यांकन भी इस शोध पत्र में मिलेगा।

**संकेताक्षर :** स्मरण, व्याकरण, शताब्दी वर्ष, नागरीप्रचारिणी, आयोजन, भाषा, हिंदुस्तानी, शास्त्र, अनुशासन, मानक, नियम।

वर्ष 2020 हिंदी के सर्वमान्य, सर्वप्रचलित हिंदी व्याकरण के लेखन का शताब्दी वर्ष है। इस ग्रंथ ने कामताप्रसाद गुरु जी को अमर कर दिया। यह गुरु जी का ही नहीं बल्कि हिंदी का कीर्ति स्तम्भ रहा है। यों तो इन्होंने कई प्रसिद्ध पुस्तकें लिखीं पर हिंदी व्याकरण ने इन्हें प्रसिद्धि और मान सम्मान दिलाया। इस बात में कोई दोराय नहीं कि यह आज भी सर्वाधिक मान्य व्याकरणों में से एक है। बाद के अधिकांश व्याकरणाचार्यों ने इसी के आधार पर हिंदी व्याकरण लिखे। बड़े आश्चर्य कि बात है कि इस ग्रंथ के लेखन के शताब्दी वर्ष पर कोई आयोजन या पत्रिकाओं के विशेषांक नहीं आए। ऐसे में इस महत्त्वपूर्ण कृति के शताब्दी वर्ष पर शोध पत्र लिखना आवश्यक समझता हूँ।

आचार्य कामताप्रसाद गुरु के जन्मशती वर्ष पर उनके काम को आगे बढ़ाने के कई संकल्प लिए गए पर, वास्तविकता में कुछ नहीं हुआ। उनके जन्म शताब्दी वर्ष पर नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा विशाल कार्यक्रम हुआ था, जिसमें तत्कालीन राष्ट्रपति महोदय श्री फखरुद्दीन अली अहमद जी आए थे। इस आयोजन पर जो श्री 'कामताप्रसाद गुरु शती- स्मृति- ग्रंथ' निकला उसमें गुरु जी के हिंदी व्याकरण पर मात्र दो लेख हैं, शेष लेख अलग हैं। इस ग्रंथ को पढ़ने की मेरी तीव्र इच्छा थी। मंहगे दामों में किताब मंगाई पर पढ़ी तो निराशा हाथ लगी। जबकि गुरु जी के जन्मशती वर्ष पर उनके काम को आगे बढ़ाने की बात कही जा रहा थी। सुधाकर पांडेय जो उस समय सभा के प्रचार मंत्री थे उन्होंने लिखा है-“हिंदी भाषा और साहित्य स्व. गुरु जी जैसे मनीषी की इस कृति के लिए चिर ऋणी है। हमारा संकल्प एक वर्ष पर्यंत समय-समय पर देश के विभिन्न स्थानों में आयोजन समारोह पूर्वक जन्मशती के विभिन्न कार्यक्रम संपन्न करने का है। इस जन्मशती का आयोजन केवल उत्सव के लिए नहीं होगा बल्कि जो उनका कृतित्व है उसे अद्यतन करने के लिए भी होगा। देश विदेश के ख्यातिलब्ध विद्वानों तथा व्याकरण के आचार्यों की संगोष्ठियों के माध्यम से तथा अन्यान्य साधनों से अद्यतन व्याकरण तैयार करने के लिए इस शती वर्ष का उपयोग करने का संकल्प सभा का है।”

यह संकल्प अधूरा रह गया। उनके अमर ग्रंथ के शताब्दी वर्ष पर ही यह काम आगे बढ़े तो बेहतर होगा। हिंदी हमारे संस्कारों को मांजने वाली भाषा ही नहीं है, हमारी पहचान एवं अस्मिता है। इसे आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी हिंदी भाषियों की ही है। सो हम सबको इसको आगे बढ़ाना चाहिए। गुरु जी की भी अंत-अंत तक हिंदी के सर्वांगपूर्ण व्याकरण लिखने की इच्छा थी पर वह इसे पूर्ण न कर सके।

हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ वैयाकरण तथा साहित्यकार स्व. पं. कामताप्रसाद गुरु जी का जन्म सागर (मध्य प्रदेश) 25 दिसंबर 1875 ई.में हुआ था। 1920 ई. में लगभग एक वर्ष तक इन्होंने इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित 'बालसखा' तथा 'सरस्वती' पत्रिकाओं का संपादन किया। ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे और अनेक भाषाओं का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनकी प्रमुख रचनाओं में - 'सत्य', 'प्रेम', 'पार्वती और यशोदा' (उपन्यास), 'भौमासुर वध', 'विनय पचासा', (ब्रजभाषा काव्य), 'पद्य पुष्पावली', 'सुदर्शन' (पौराणिक नाटक) तथा 'हिंदुस्तानी शिष्टाचार' इनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं। किंतु गुरु जी की असाधारण ख्याति उनकी उपर्युक्त साहित्यिक कृतियों से नहीं, बल्कि उनके 'हिंदी व्याकरण' के कारण है।<sup>1</sup>

हिंदी व्याकरण पर लिखने से पहले यह जानकारी जरूरी है कि हिंदी व्याकरण ग्रंथों के लेखन का इतिहास क्या और कैसा रहा? इस संबंध में हमारी सबसे पहले नजर दामोदर पंडित द्वारा लिखित 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' पर जाती है, पर यह कृति अवधी और संस्कृत को सीखने और परस्पर संबंध जोड़ने की ज्यादा है व्याकरण की कम। आधुनिक काल में इस पर ध्यान विदेशी विद्वानों का गया और अंग्रेजी, फ्रेंच तथा अन्य भाषाओं में विद्वानों ने अच्छे व्याकरण ग्रंथ लिखे जिनमें कुछ के अनुवाद भी हुए हैं। कुछ तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि आज भी उनसे हम मदद लेते हैं। हिंदी भाषा का व्याकरण लेखन का प्रारंभिक प्रयास विक्रम की 18वीं शताब्दी में मिलता है। औरंगजेब के शासनकाल (1704-1754वि.) में मिर्जा खां ने ब्रजभाषा का परिचयात्मक संक्षिप्त व्याकरण लिखा और प्रायः उसी समय हालैंड निवासी जोहन जोशुआ केटेलर ने हिंदुस्तानी का एक व्याकरण लिखा जिसका परिचय डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में 'हिंदुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण' शीर्षक एक लेख में दिया था।<sup>2</sup> अन्य व्याकरणों में जान बोर्थविक

गिलकाइस्ट का 'हिंदुस्तानी ग्रामर' 1790 ई., रोएबक का 'दि इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी विथ ए ग्रामर प्रिफिक्स्ड' 1810 ई., जिसका व्याकरण भाग फोर्ट विलियम कालेज में पढ़ाया जाता था। और टेलर के मतानुसार उस समय का सर्वोत्तम व्याकरण था। येट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर' 1824 ई., प्लाट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर', पादरी आदम साहिब का 'हिंदी व्याकरण' और सन 1870 में काशी के एक पादरी एथरिंगटन साहिब ने अंग्रेजी में हिंदी का एक व्याकरण लिखा जो अगले वर्ष 'भाषा भास्कर' नाम से हिंदी में रूपांतरित होकर छपा। सन 1875 में केलाग साहब का 'ए ग्रामर आव हिंदी लैंग्वेज' प्रकाशित हुआ। इसका द्वितीय संस्करण 1892 में छपा जिसमें हिंदी के व्याकरण के साथ ही तथाकथित उच्च हिंदी, ब्रज और पूर्वी हिंदी का भी विवेचन किया गया था।<sup>3</sup> पर आश्चर्य की बात है कि फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा कराए गए कार्य से पहले इस संबंध में हिंदी विद्वानों का ध्यान कम जाता है। सन 1810 में लल्लूलाल का 'ब्रजभाषा व्याकरण' कलकत्ता से प्रकाशित होकर आता है। इसके बाद कम आगे बढ़ता है और 'भाषा तत्त्व बोधिनी'- पं. रामजसन, 'भाषा चंद्रोदय' -पं. श्रीलाल, 'नवीन चंद्रोदय' - बाबू नवीनचंद्र राय। हिंदी व्याकरण 1875 राजा शिवप्रसाद सितारे, हिंदी व्याकरण, भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि का जिक्र जरूरी है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के बाद पं. केशवराम भट्ट कृत 'हिंदी व्याकरण', लकुर रामचरण सिंह कृत 'भाषा प्रभाकर', पं. विश्वेश्वरदत्त शर्मा का 'भाषा तत्त्व प्रकाश' और पं. रामदहिन मिश्र का 'प्रवेशिका हिंदी व्याकरण' है। बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री का 'हिंदी व्याकरण', बाबू रामचरण मिश्र का 'भाषा प्रभाकर' विशुद्ध हिंदी का व्याकरण था। बाबू श्यामसुंदरदास ने 1906 ई. में हिंदी और उर्दू का एक प्रारंभिक व्याकरण 'ऐन एलीमेंटरी ग्रामर आफ हिंदी एंड उर्दू' लिखा।<sup>4</sup> सन् 1911 में अध्यापक मोरो केशव दामले का लगभग 1000 पृष्ठों का 'शास्त्रीय मराठी व्याकरण' प्रकाशित हुआ था। गुरु जी ने इससे विशेष और भरपूर लाभ उठाया। वे स्वयं लिखते हैं सबसे अधिक सहायता मुझे दामले कृत शास्त्रीय मराठी व्याकरण से मिली है जिसकी शैली पर मैंने अधिकांश में अपना व्याकरण लिखा है।<sup>5</sup>

इन सबके बावजूद अभी तक कोई सर्वमान्य और प्रामाणिक हिंदी व्याकरण नहीं लिखा गया था। इस संबंध में महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं-हिंदी भाषा में

एक भी सर्वमान्य व्याकरण अभी तक नहीं बना और अगस्त 1908 की सरस्वती पत्रिका में पं. कामताप्रसाद गुरु ने भी 'हिंदी की हीनता' शीर्षक लेख में इसी प्रकार लिखा कि 'इस भाषा में न कोई माना हुआ व्याकरण है और न कोई प्रामाणिक कोष।'<sup>7</sup>

हिंदी व्याकरण और व्याकरण की अशुद्धियों की ओर कड़ा रुख महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके संपादन में निकलने वाली पत्रिका सरस्वती का रहा। सन 1905 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित भाषा और व्याकरण' शीर्षक अपने लेख में व्याकरण संमत भाषा के प्रयोग की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया।<sup>8</sup> अशुद्धियों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएं अशुद्धियों के कारण सरस्वती में छपने से रह जाती थीं या फिर संशोधन के साथ छपती थीं। महावीर प्रसाद द्विवेदी को भाषा अनुशासन पसंद था। इसे और बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता के कारण उन्होंने और पं. माधवराव सप्रे ने नागरी प्रचारिणी सभा से विस्तृत हिंदी व्याकरण लेखन का अनुरोध किया इसके परिणामस्वरूप सन् 1920 में हिंदी व्याकरण का प्रकाशन होता है। इस प्रकार देखते हैं कि कामताप्रसाद गुरु जी के हिंदी व्याकरण लेखन से पहले हिंदी में व्याकरण लेखन की परंपरा विपन्न रही।

हिंदी व्याकरण लेखन से पूर्व गुरु जी ने हिंदी व्याकरण पर छोटे-छोटे लेख लिखे थे। सन् 1900 में उन्होंने 'भाषा वाक्य पृथक्करण' नाम की पुस्तक लिखी तथा सन् 1907 में 'वाल बोध व्याकरण' लिखा।<sup>9</sup> शिक्षक जीवन में भाषा को मानक रूप देने की दिशा में उनका प्रयत्न निरंतर रहा और लेखों के माध्यम से वे व्याकरण के मूलभूत नियमों और सिद्धांतों की ओर हिंदी भाषियों और हिंदी प्रेमियों का ध्यान आकर्षित करते रहे। यह व्याकरण प्रेम उनकी साहित्य साधना का प्रमुख रूप बना और उनका कवि लेखक निबंधकार आलोचक एक प्रकार से गौण बन गया।<sup>10</sup> गुरुजी के लिखे सरस्वती में प्रकाशित कुछ लेखों के शीर्षक नीचे इस दृष्टि से दिए जा रहे हैं कि इससे यह अनुमान लगाया जा सके कि उन्होंने हिंदी के प्रश्न पर कितनी विविधता से विचार किया है -हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा और हिंदी, रोमन लिपि, कानूनी हिंदी, हिंदी में विदेशी अपभ्रंश, कुछ चिन्त्य प्रयोग, हिंदी में आदरसूचक शब्द, हिंदी में प्रत्यक्ष और परोक्ष भाषण आदि।<sup>11</sup>

गुरु जी ने व्याकरण क्या है इस पर अपने विचार व्यक्त

करते हुए लिखा है-“जिस शास्त्र में शब्दों के शुद्ध रूप प्रयोगों के नियमों का निरूपण रहता है उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण के नियम बहुधा लिखी हुई भाषा के आधार पर निश्चित किए जाते हैं, क्योंकि उसमें शब्दों का प्रयोग बोली हुई भाषा की अपेक्षा अधिक सावधानी से किया जाता है। व्याकरण वि+आ+करण शब्द का अर्थ भलीभांति समझाना है। व्याकरण में वे नियम समझाये जाते हैं जो शिष्टजनों के द्वारा स्वीकृत शब्दों के रूपों और प्रयोगों में दिखाई देते हैं।”<sup>12</sup>

नागरीप्रचारिणी सभा की समिति ने व्याकरण के संबंध में लिखा है - सभा के निश्चय के अनुसार व्याकरण संशोधन समिति का कार्य वृहस्पतिवार आश्विन शुक्ल,3, संवत् 1977 (ता. 14 अक्टूबर, 1920)को सभाभवन में यथासमय आरंभ हुआ। हम लोगों ने व्याकरण के मुख्य-मुख्य सभी अंगों पर विचार किया। हमारी सम्मति है कि सभा ने जो व्याकरण विचार करके छपवाकर प्रस्तुत किया है वह आज तक प्रकाशित व्याकरणों से सभी बातों में उत्तम है। यह बड़े विस्तार से लिखा गया है। प्रायः कोई अंश छूटने नहीं पाया। इसमें संदेह नहीं कि व्याकरण बड़ी गवेषणा से लिखा गया है। हम इस व्याकरण को प्रकाशन योग्य समझते हैं और अपने सहयोगी पंडित कामताप्रसाद गुरु को साधुवाद देते हैं।<sup>13</sup>

गुरु जी के योगदान का सही मूल्यांकन नहीं हो पाने पर उनके बेटे श्री रामेश्वर प्रसाद गुरु ने लिखा है कि “पिताश्री का साहित्यिक मूल्यांकन और उनकी साहित्यिक सेवाओं का निष्पक्ष आकलन कई कारणों से साहित्य इतिहास में नहीं हो सका।”<sup>14</sup> यह हिंदी भाषी समाज और हिंदी लेखक समाज के लिए शर्म की बात है। हालांकि इस ग्रंथ की भी कुछ कमियां रहीं जिसे स्वयं गुरु जी ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह अंग्रेजी और मराठी के ढंग पर लिखा। जबकि भारतीय भाषा की परंपरा और प्रकृति अंग्रेजी से अलग है। बाद में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जैसे विद्वानों ने इस प्रकृति को पहचाना और हिंदी शब्दानुशासन में हिंदी व्याकरण का परीष्कृत रूप देखने को मिलता है।

गुरु जी के हिंदी व्याकरण की आलोचना लिखते हुए हरदेव बाहरी ने लिखा -“गुरुजी की 30.40 प्रतिशत मान्यताओं पर टीका टिप्पणी करने की गुंजाइश है, जिसका अर्थ यह है कि ढाई तीन सौ पृष्ठ की एक मूल्यांकन पुस्तक लिखी जा सकती है। यह दिखाने के लिए कि सचमुच इतना कुछ करने की गुंजाइश है।”<sup>15</sup>

आगे वह लिखते हैं—“सामान्यतः उन्होंने अनेकानेक पिटी पिटाई धारणाओं का समर्थन किया है जो आज ठीक नहीं मानी जाती, और कुछ साधारण सी बातें भी कहीं हैं जो प्रामाणिक तो हैं, किंतु पूर्ववर्ती व्याकरण में विद्यमान हैं। यत्र-तत्र उन्होंने विभिन्न धारणाओं पर बहस उठाई है और कहीं-कहीं अपना मतभेद प्रकट किया है। ऐसे में प्रायः उलझन ही पैदा हुई है, कोई निर्णय नहीं हो पाया।”<sup>16</sup> इन कमियों के बावजूद हरदेव बाहरी जी गुरु जी के योगदान की उपेक्षा नहीं कर सके वह लिखते हैं—“कमियों के बावजूद कामताप्रसाद गुरु के व्याकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उस काल तक के अंग्रेजी और हिंदी में उपलब्ध व्याकरण के उपयोगी और प्रामाणिक तथ्यों को समझदारी और विवेक से इकट्ठा करके कम से सजाया जो सामग्री इधर उधर बिखरी पड़ी थी उसको बड़े परिश्रम से संग्रह करके व्यवस्थित किया।”<sup>17</sup>

कामताप्रसाद गुरु जी के हिंदी व्याकरण के कलेवर की बात करें तो इसमें तीन भाग हैं। पहले भाग वर्ण विचार में पहला अध्याय-वर्णमाला, दूसरा अध्याय-लिपि, तीसरा अध्याय-वर्णों का उच्चारण और वर्गीकरण, चौथा अध्याय-स्वराघात, पांचवां अध्याय-संधि का है। दूसरे भाग शब्द साधन में तीन परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद में दो खंड हैं। पहला अध्याय-शब्द विचार, दूसरा अध्याय-शब्दों का वर्गीकरण, पहला खंड-विकारी शब्द में पहला अध्याय-संज्ञा, दूसरा अध्याय-सर्वनाम, तीसरा अध्याय-विशेषण, चौथा अध्याय किया है। दूसरा खंड-अव्यय में पहला अव्यय में पहला अध्याय -क्रिया विशेषण, दूसरा अध्याय-संबंध सूचक, तीसरा अध्याय समुच्चय बोधक, चौथा अध्याय -विस्मयादि बोधक है। दूसरा परिच्छेद -रूपांतर में पहला अध्याय-लिंग, दूसरा अध्याय-वचन, तीसरा अध्याय-कारक, चौथा अध्याय-सर्वनाम, पांचवां अध्याय-विशेषण, छठा अध्याय-क्रिया, सातवां अध्याय-संयुक्त क्रियाएं, आठवां अध्याय-विकृत अव्यय है। तीसरा परिच्छेद व्युत्पत्ति में पहला अध्याय-विषयारंभ, दूसरा अध्याय-उपसर्ग, तीसरा अध्याय-संस्कृत प्रत्यय, चौथा अध्याय-हिंदी प्रत्यय, पांचवां अध्याय-उर्दू प्रत्यय, छठा अध्याय-समास, सातवां अध्याय-पुनरुक्त शब्द है। तीसरे भाग में वाक्य विन्यास में दो परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद-वाक्य रचना में-पहला अध्याय-प्रस्तावना है, दूसरे अध्याय-कारकों के अर्थ और प्रयोग, तीसरा अध्याय-सामासिक अधिकरण शब्द, चौथा

अध्याय-उद्देश्य, कर्म और क्रिया अव्यय, पांचवां अध्याय-सर्वनाम, छठा अध्याय-विशेषण और संबंध कारक, सातवां अध्याय-कालों के अर्थ और प्रयोग, आठवां अध्याय-क्रियार्थक संज्ञा, नवां अध्याय-कूदंत, दसवां अध्याय-संयुक्त क्रियाएं, ग्यारहवां अध्याय-अव्यय, बारहवां अध्याय-अध्याहार, तेरहवां अध्याय-पदकर्म, चौदहवां अध्याय-पद परिचय है, दूसरा परिच्छेद-वाक्य पृथक्करण में पहला अध्याय-विषयारंभ, दूसरा अध्याय-वाक्य और वाक्यों के भेद, तीसरा अध्याय-साधारण वाक्य, चौथा अध्याय-मिश्र वाक्य, पांचवां अध्याय-संयुक्त वाक्य, छठा अध्याय-संक्षिप्त वाक्य, सातवां अध्याय-विशेष प्रकार के वाक्य, आठवां अध्याय-विराम चिह्न अंत में दो परिशिष्ट हैं।<sup>18</sup> इतनी सारी चीजों को व्यवस्थित करना कम श्रम साध्य का काम नहीं था फिर भी वैयाकरणाचार्यों की आलोचना सहनी पड़ी।

पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने गुरु जी के व्याकरण की गलतियों की ओर संकेत करते हुए लिखा है- पं. कामताप्रसाद गुरु कृत हिंदी व्याकरण में “दीनानाथ” शब्द व्याकरण की दृष्टि से विचारणीय बताया गया है, क्योंकि यह “दीननाथ होना चाहिए”, परंतु ‘दीननाथ’ और ‘दीनानाथ’ के अर्थ में जो अंतर है, उस पर गुरु जी ने ध्यान नहीं दिया ‘दीन’ पुल्लिंग और ‘दीना’ स्त्रीलिंग है। ‘दीना’ शब्द द्वौपदी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।<sup>19</sup> पं. किशोरीदास वाजपेयी ने इसी तरह लिखा है-” हिंदी के सर्वमान्य और सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं. कामताप्रसाद गुरु की इस संबंध में एक विचित्र धारणा है। उन्होंने अपने व्याकरण में लिखा कि ‘मैंने मेज को देखा’ इस तरह के प्रयोग गलत हैं; क्योंकि ये न तो कर्तृवाच्य हैं, न कर्मवाच्य। उनका कहना है कि उर्दू से ऐसे प्रयोग हिंदी में आ गए हैं जो त्याज्य और दूषित हैं।”<sup>20</sup> जिस प्रयोग को गुरु जी गलत बताते हैं उसी को किशोरीदास वाजपेयी सही मानते हैं और कहते हैं-” ऐसा जान पड़ता है कि गुरु जी हिंदी के स्वरूप को ठीक-ठीक समझे बिना ही इसका व्याकरण लिखने बैठ गए और इसीलिए ‘रण पर नशतर’ लग गया। बात यह है कि उन्होंने हिंदी का व्याकरण बनाने में संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी आदि के व्याकरणों पर ध्यान रखा; हिंदी के स्वरूप पर नहीं, इसीलिए ऐसी भयंकर गलतियां हो गयी हैं।<sup>21</sup>

हिंदी शब्दानुशासन में पं. किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं- “सन् 1919 में, जब मैं कुछ सोचने-समझने

योग्य हुआ, तो हिंदी व्याकरण में दो विद्वानों के नाम सर्वोपरि थे, 1. पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और 2. पं. कामताप्रसाद गुरु। हिंदी कौमुदी' तथा हिंदी व्याकरण' (इन दोनों विद्वानों व्याकरण ग्रंथ) 1920-21 में प्रकाशित हुए। सौभाग्य समझिए, चाहे दुर्भाग्य, इन व्याकरणों के मूलभूत सिद्धांत मेरी समझ में न आए। इन्हीं के आधार पर वे सब पुस्तकें बनी थीं, जो पाठ्य रूप से परीक्षाओं में चल रही थीं और मुझे भी पढ़ानी पड़ती थीं। कुछ समझ में न आने पर आकर ग्रंथ देखे फिर भी समाधान न हुआ। गुरु जी से जबलपुर जाकर दो वार भेंट की; परंतु फिर भी मेरा भ्रम संदेह दूर न हुआ!'<sup>22</sup>

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कामताप्रसाद गुरु जी की जो क्षमता थी, ज्ञानार्जन था, तत्कालीन परिस्थितियां थीं और जो साहित्य मौजूद था उसके अनुरूप उन्होंने हिंदी व्याकरण लिखा। अपने हिसाब से कोई भी अपनी रचना को श्रेष्ठ बनाने में कमी नहीं छोड़ता है। गुरु जी ने अंग्रेजी और मराठी के नियमों का प्रयोग हिंदी की परिस्थिति के अनुसार किया और उसे तराशा है। बिखरी हुई सामग्री को संकलित कर हिंदी व्याकरण का रूप दिया। इसमें कोई दोराय नहीं कि वह अपने समय का श्रेष्ठ व्याकरण है। हां उसकी कमियां हैं जिसकी जानकारी स्वयं गुरु जी को थी, इसीलिए वह सर्वांगपूर्ण व्याकरण लिखने की बात कहते रहते थे। अगर वह और जीते तो इस कमी को पूरा अवश्य करते। अतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार से आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास तमाम कमियों के बावजूद सर्वाधिक मान्य है उसी प्रकार कामता प्रसाद गुरु का हिंदी व्याकरण है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कामताप्रसाद गुरु जन्मशती ग्रंथ, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं. 2034 वि. पृ. 2
2. वही पृ. 3
3. वही पृ. 5
4. वही पृ. 5
5. वही पृ. 6
6. वही पृ. 30
7. वही पृ. 11
8. वही पृ. 5
9. कामताप्रसाद गुरु जीवन रेखाएं और प्रतिनिधि रचनाएं - प्रकाशक, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद भोपाल प्रथमावृत्ति 1976 पृ. 11
10. वही पृ. 4
11. वही पृ. 12
12. हिंदी व्याकरण -कामताप्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, संस्करण सन् 2009 पृष्ठ 21
13. वही पृष्ठ 472
14. कामताप्रसाद गुरु जीवन रेखाएं और प्रतिनिधि रचनाएं - प्रकाशक - मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद भोपाल प्रथमावृत्ति 1976 पृ. 9
15. कामताप्रसाद गुरु जन्मशती ग्रंथ, संपादक मंडल-वेणीशंकर झा (अध्यक्ष), नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, प्रथम संस्करण सं. 2034 वि. पृ. 27
16. वही पृ. 32
17. वही पृ. 30
18. हिंदी व्याकरण -कामताप्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, संस्करण सन् 2009 पृष्ठ 15-18
19. हिंदी कौमुदी-पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, दि इंडियन नेशनल पब्लिशर्स लिमिटेड कलकत्ता, तृतीय संस्करण सं.1980 वि. पृ. 107
20. ब्रजभाषा का व्याकरण -पं. किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी प्रेस प्रयाग, प्रथम संस्करण सं. 2000 वि. पृ. 51
21. वही पृ. 54
22. हिंदी शब्दानुशासन-पं. किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी पंचम संस्करण संवत् 2055 वि. पृ. 67-68

# केदार नाथ अग्रवाल के काव्य में युगबोध व युग निर्देशन



डॉ. प्रतिमा सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, के. एन. आई. पी. एस. एस., सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

केदार नाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य आन्दोलन के प्रमुख कवि हैं। आजादी के पूर्व से लेकर आज तक वे अपनी काव्य यात्रा में लगे हुए हैं। उनकी राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवादी विचार दर्शन के चिंतन मनन से प्राप्त की हुई प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि है। केदारनाथ द्वारा लिखी हुई राजनीतिक कविताओं में इस देश के चालीस वशे का इतिहास कैद है। राजनीतिक कविताओं के अलावा प्रकृति प्रेम तथा श्रम करते हुए संघर्षशील मानव के बारे में बहुत लिखा है। केदार नाथ अग्रवाल आम जनता के कवि हैं, जिससे इनकी भाषा सहज, सरल, कलात्मक तथा सम्प्रेषणीय हैं। केदार में एक खास तरह की स्थानीयता, आंचलिकता है, जिससे उनकी रचनाओं में, एक सहजता, अपनी जमीन से जुड़े होने का एहसास, और लाकजीवन के विभिन्न रंग मिलते हैं। केदार नाथ अग्रवाल इस देश के श्रमशील मनुष्य के सुःख, दुःख की वाणी देने वाले प्रमुख प्रगतिशील कवि हैं।

**संकेताक्षर :** केदार नाथ अग्रवाल का संक्षिप्त युग परिवेश, काव्य स्वभाव, काव्य प्रेरणा, काव्य दृष्टि।

# के

दारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्यआन्दोलन के एक प्रमुख कवि हैं। उन्होंने जीवन को मार्क्सवादी चिंतन द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक प्रगतिशील दृष्टि से अपनेविवेक द्वारा विश्लेषित, विवेचित करते हुए देखा और कलमबद्ध किया है। इसलिए जहाँ वे अपनी राजनीतिक कविताओं में इस देश की राजनीति के अन्तर्विरोधों पर तीखी टिप्पड़ियां करते हैं वहीं शोषित मनुष्य के जीवन के अंतर्विरोध, संघर्ष और उसकी अदम्य शक्ति को भी नजरअंदाज नहीं करते। बुन्देलखंड की प्रकृति, प्रेम और प्राकृतिक परिवेश उनकी कविताओं में जीवंत होकर आया हेजो इस बात का प्रमाण हैकि वे सिर्फ राजनीतिक कवि ही नहीं हैं। इसके अलावा श्रमशील मनुष्य पर भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। वास्तव में वे गहरी जीवनाशक्ति के कवि हैं। मानवीय सम्बन्धों में वे समानता के पक्षधर हैं।

केदारजी का जन्म 1 अप्रैल 1911 को बाँदा जिले केबबेरु तहसील के कमासिन नामक गाँव में हुआ था। उनकी माँ का नाम घसिट्टो और बाप का नाम श्री हनुमान प्रसाद था जो शुरु से ही रसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और कविता भी लिखते थे। शिक्षा-दीक्षा के ग्रामीण माहौल में भय और आतंक के बल पर पढ़ाई होती थी। केदार भी ऐसे माहौल में गाँव के अन्य बच्चों की तरह कक्षा तीन तक पढ़े और उसके बाद रायबरेली आ गए। फिर पिता के कटनी जाने पर कक्षा छः की पढ़ाई कटनी में हुई। कटनी में एक साल रहने के बाद वे अपने पिता जी के साथ जबलपुर चले गए और सन् 1927 में इलाहाबाद। यहीं रहकर उन्होंने बी. ए. किया और कानून पढ़ने कानपुर चले गए। 1938 में लॉ की डिग्री लेकर बाँदा लौटे और वकालत करने लगे। केदार जी के घर का माहौल आमतौर पर धार्मिक था। केदार जी गरीब बच्चों के साथखेलते, उनके घर आते-जाते और इसतरह एक-एक घर की गरीबी से परिचित होते रहे। “इस परिचय का उनके बालपन पर ऐसा प्रभाव पड़ाकि बाद को जब उनका कवि प्रकट हुआ तब वह दुःख दर्द और संघर्ष, हाड़तोड़ मेहनत, अमीरी की ओढ़ी हुई ठसक की तुलना में गरीबर की सहजता, निर्मलता आदि उनकी कविता में हजार-हजार कंटों से फूट पड़ी” –(केदारनाथ अग्रवाल, सं. अजय तिवारी, पृष्ठ 226)।

केदार ने अपनी लेखन यात्रा का आरंभ चौथे दशक से किया था। प्रारंभ में इन्होंने प्रेम और सौन्दर्य की कविताएं

लिखीं लेकिन धीरे-धीरे युग के यथार्थ से जुड़कर उनका प्रेम एक व्यापक आधार लेकर श्रमशील जनता से जुड़ता गया। किसान और मजदूर, प्रकृति और मनुष्य उनके काव्य के मुख्य सरोकार बनते चले गए। प्रख्यात प्रगतिशील आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार “पिछले तीस-चालीस साल में जिन कवियों की रचनाओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका रही है, वो हैं- केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन। दूसरे महायुद्ध के दौरान और दूसरे महायुद्ध के बाद, मोटेतौर से 1957 तक भारत के स्वाधीनता आन्दोलन और भारत की जनवादी क्रान्ति, इनके उतार-चढ़ावको जिस कवि ने सबसे शक्तिशाली ढंग से अपने साहित्य में अपनी कविता में प्रतिबिम्बित किया है, वह भी हैं केदारनाथ अग्रवाल।” केदार जी की कविता में राजनीति की निर्णायक भूमिका तो है ही किन्तु साथमें उसमें बुन्देलखंड और बुन्देलखंड की प्रकृति, प्राकृतिक परिवेश और जनजीवन की धड़कनें और रंग भी हैं-इसलिए एक आलोचक इनकी कविता का सबसे बड़ा गुण मानते हैं लोकरूपता को। केदारने किसानों और श्रमशील जनता पर बहुत लिखा है इसलिये शिवकुमार मिश्र इन्हें मूलतः किसानी संवेदना का कवि मानते हैं। विश्वनाथ मिश्रकेदार की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के आधार पर केदार की कविता को “प्रकृति के साहचर्य में मुक्ति की तलाश” की कविता मानते हैं-“केदारनाथ अग्रवाल अपनी सौन्दर्य चेतना और सूक्ष्म चित्रण शक्ति के कारण प्रगतिवाद के दायरे को लांघ जाते हैं और अपना एक दूसरा काव्य संसार भी उजागर करते हैं।”

आलोचकों के ये सारे मत इस बात के गवाह हैं कि केदार जी रुढ़िबद्ध प्रगतिशीलता के पक्षधर नहीं हैं और न ही उनकी कविता केवल राजनीति की अभिव्यक्ति तक ही सीमित है बल्कि राजनीति को वे जीवन को सुन्दर, व्यवस्थित और शोषण से मुक्त कराने के हथियार के रूप में देखते हैं। प्रकृति, प्रेम, किसान, मजदूर ये सब केदार जी के काव्य के व्यापक सरोकार हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि केदार जी व्यक्तिवाद के दायरे में कभी नहीं फंसे।

ऐतिहासिक चेतना सम्पन्न प्रगतिशील कवि अपने समय, अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता के प्रति प्रतिबद्ध रूप से जागरूक होता है। केदार नाथ अग्रवाल ने आजादी के पूर्व ओर आजादी के बाद की भारत की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकताओं का साक्षात्कार किया है। उनकी इस

ऐतिहासिक चेतना को उनकी राजनीतिक कविताओं में देखा जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन कि भारत की चालीस वर्षों की राजनीति का प्रगतिशील इतिहास यदि किसी कवि की रचनाओं में संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है तो वे कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं, बहुत सार्थक है।

प्रत्येक कवि की एक राजनैतिक दृष्टि होती है- केदारजी की भी राजनीतिक दृष्टि है जिसे व्यापक शब्दों में प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि कहा जा सकता है। यह दृष्टि उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन के अध्ययन चिंतन और भारत की जनता के दुख-दर्द को अनुभव करके प्राप्त की है। राजनीति की वे जनवादी सरकार के रूप में वे कल्पना करते हैं जो जनता की सरकार होगी, न कि पूंजीपतियों, जमींदारों और बड़े-बड़े इजारेदारों की- यह है केदार जी की राजनीतिक दृष्टि, जो उनकी कविताओं में, गीतों में अभिव्यक्त होती है। आजादी से पूर्व, आजादी की लड़ाई में कांग्रेस की सक्रिय नेताओं की नीतियों की आलोचना, उनके समझौतावादी रुख का विरोध तथा अंग्रेजी राज की भर्त्सना- केदार इसी दृष्टि के तहत करते हैं। वे मानते हैं कि जब तक जनता की राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी नहीं होती- जबतक पूंजीपतियों साम्राज्यवादियों, बड़े-बड़े जमींदारों, इजारेदारों और अंग्रेजीराज के खिलाफ एक साथ संघर्ष नहीं किया जाता- तब तक हमें पूर्ण आजादी नहीं मिल सकती। इसलिए इस देश में जब-जब व्यापक जन उभार आया, केदार की राजनैतिक चेतना प्रखरता के साथ उसका समर्थन करती रही, ऐसे जन उभारों के समय लिखी गई केदार की कविताएं चाहे प्रचारात्मक अधिक हैं किन्तु वे अपने युग अपने समय की राजनैतिक स्थिति में उनका साथ देती हैं, जो संझार्श कर रहे हैं जो शोषित हैं- और जो वास्तव में इस देश और इस समाज की रीढ़ हैं। अक्टूबर 1947, में केदार ने आजादी मिलने के बाद “शपथ” कविता में लिखा-

**वही जमींदारों का छल है  
मानव से मानव शोषित है  
अतःआज हम हँसते-हँसते  
नई शपथ हम ग्रहण करेंगे  
जनवादी सरकार करेंगे  
(कहें केदार खरी-खरी, पृ. 47)**

केदार सत्ताधारी कांग्रेसी नेताओं को अपनी रचना से बार-बार आगाह करते रहे हैं कि हमें साम्राज्यवादी और पूंजीवादी शक्तियों के हाथों नहीं बिकना है, बल्कि

आत्मनिर्भरता का रास्ता अपनाना है- यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आएगा डालर /वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में/ भारतीय पूँजीपतियों से सांठ -गांठ कर / क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा / नेहरु और पटेल की मति को हर लेगा ।-(कहें केदार खरी खरी, पृ. 50) उत्तर- छायाबाद काल में प्रगतिवादी आन्दोलन को जिन थोड़े से कवियों से बल मिला, उनमें केदार नाथ अग्रवाल प्रमुख हैं । किसान और मजदूर की दैनिक स्थितिके लिए इन्होंने सूदखोर, मिल मालिक राजनीतिक नेता और सरकार सभी को उत्तरदायी ठहराया है । इनका यह आरोपकि पूँजीवादी प्रथा के कारण मुर्दा और असभ्य हो गया है,दीन दिखाई देता है, कुछ अनुचित नहीं लगता। देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए इन्होंने लोगा आजीविकाविहीन हैं, भूखे हैं, त्रस्त हैं। लेखक के स्वतंत्रता की वकालत इन्होंने जोरदार शब्दों में की है। यों इन्होंने हंसिया और हथौड़ा की चर्चाके साथ वर्ग संघर्ष की बात भी उठाई है, पर ये बातें नारेबाजी का रूप धारण नहीं करती।

साम्यवादी विचारधारा के प्रसार के लिए एक ओर ये किसानों मजदूरों को उत्तेजित कर उनमें विद्रोह की भावना का संचार करते हैं, दूसरी ओर मनुष्य के उपचेतन पर प्रभाव डालकर उसके भीतर से कुंठा, अहं और स्वार्थ की उन भावनाओं को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं जिनसे व्यक्तिवाद के पनपने की आशंका खड़ी होती है, तीसरी ओर स्वप्नदर्शी प्राणियों को कठोर कर्म के लिए प्रेरित करते प्रतीत होते हैं। ये समस्त प्रवृत्तियां “मोरचे पर” शीर्षक रचना में स्पष्टता से उभरकर आई है- “मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ मोरचे पर /मैं अचेतन और उपचेतन सभी पर /वार करता जा रहा हूँ / व्यक्तिवादी सभ्यता को ध्वंस बिलकुल कर रीा हूँ /स्वप्न के जो देव हैं/ औ स्वप्न की जो देवियां हैं /हाथ में हल और हंसिया को थमाकर / मैं उन्हें मजबूर करता हूँ/कि जोतो और काटो। /मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ मोरचे पर ।”

विचार के क्षेत्र में नागार्जुन की भाँति इन्होंने भी जीवन को महत्वपूर्ण माना है और प्रतिभा व प्रेम के योग से उसे सुन्दर से सुन्दर बनाने की कामना व्यक्त की है। कुल मिलाकर, जीवन में, मनुष्य में, मानव जाति के भविष्य में इनकी गहरी आस्था है। मनुष्यता को ये प्राणी का सर्वोपरि गुण मानते हैं, लेकिन समसामयिक जीवन वैसा नहीं है, जैसा उसे ये देखना चाहते हैं, इसी से देश की वर्तमान गतिविधि से ये बहुत असंतुष्ट हैं।

इसके संकेत इनकी रचनाओं में बराबर मिलते हैं-

- (1) सत्य कहीं है-कहीं नहीं है /असत्य/सब कहीं है- / घर हो या बाहर,/ संसद हो या अदालत ।
- (2) आलोक की हो गई है /अंधकार से सांठ गांठ,/ कौन है कि अब अंधकार का उद्घाटन करे ?
- (3) एक ओर बनता ही चला जा रहा है / निर्माण का हिन्दुस्तान / दूसरी ओर गिरता ही चला जा रहा है /इमान का हिन्दुस्तान ।

उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जैसे नागार्जुन ने एक मर्मस्पर्शी कविता लिखी है, वैसे नागार्जुन को संबोधित कर इन्होंने भी अपने टुकी कोमल पंखुरियां खोल दी हैं। नागार्जुन ने बांदा को भाव की दृष्टि से देखाहै, इन्होंने वहाँ के जीवन की वास्तविकता पर से परदा उठा दिया है। अपने जीवन के समस्त अभावों को भी इन्होंने निश्कपट भाव से स्वीकार कर लिया है - यह इनका बड़प्पन है। नागार्जुन का स्वागत करते हुए केदार जी कहते हैं -

आओ साथी गले लगा लूँ /तुम्हें, तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती हाक /तुममें व्यापे विद्यापति को / और वहाँ की जन-वाणी के छंद चूम लूँ / और वहाँ के गढ़ पोखर का पानी छूकर नैन जुड़ा लूँ ।

प्रगतिशील कवि होने के कारण केदार जी की सामाजिक यथार्थ को देखने की जो दृष्टि है वह वर्ग चेतन प्रधान है वे शोशक और शोषित में भेद करके अपनी प्रतिबद्धता शोषितों ,मेहनतकश किसानों और मजदूरों के प्रति जाहिर करते हैं। किन्तु केदार जी की कविताओं की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जनता के पिछड़ेपन को उसके अंधविश्वासों को नजरअंदाज नहीं किया है। सन् 1946 का जनउभार अपनी तक्रसंगत परिणति तक नहीं पहुंचा, इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछड़ापन भी था -

(1) अणिकांश जनता का /रुद्धी की टोकरी का जीवन है /संज्ञाहीन, अर्थहीन /बेकार चिरे-फटे टुकड़ों सा पड़ा है /देरी है / एक दिन, एक बार, आग के छूने की / राख हो जाना है । (गुलमेंहदी, पृ. 29)

(2) कानपुर के मजदूर दिनभर काम करके /कॉखते हॉफते / रोज की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की। (गुलमेंहदी, पृष्ठ 44 )

केदार जी ने जनता के पिछड़ेपन और अधविश्वास पर

तो लिखा ही है किन्तु श्रम करते हुए मनुष्यों पर तो बहुत लिखा है। रामविलास शर्मा ने ऐसी कविताओं को “श्रम का सूरज” कहा है। केदार ही श्रम के सौन्दर्य पर लिखी गयी कविताओं में किसान को अक्सर काम करते हुए दिखाया गया है

“पैनी कुर्सी खेत के भीतर / दूर कलेजे तक ले जाकर / जोत डालता है मिट्टी को /मेरम खेत में हल चलता है / फाड़ कलेजा गड़ जाता है /तड़- तड़ धरती तड़काता है /राह बनाता बढ़ जाता है।” (गुल मेंहदी, पृ. 55, 67 )

श्रम के प्रति अपनी इसी निष्ठा के कारण केदार अवकाश भोगी वर्ग का निकम्मापन बर्दाश्त नहीं कर पाते। “डॉगर ”को इस वर्ग का प्रतीक बनाकर कहते हैं “ये कामचोर / आरामतलब / मोटे तोंदियल भारी भरकम / हट्टे-कट्टे सब डॉगर ऊघा करते हैं / हम चौबीस घंटे हॉफते हैं।” (गुल मेंहदी, पृ. 50 )

केदार के लिए जनता कोई अमूर्त धारणा नहीं है- वह खेतों खलिहानों में काम करती हुई भिन्न और स्पष्ट आकृतियों वाली जनता है। बुंदेलखंड के आदमी “हट्टे-कट्टे हाडों वाले/ चौड़ी चकली काठी वाले।” (फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 73)

युगों से जनता को सिखाया गया है कि उसका दुःख दर्द उसके पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। केदार इसके विरोध में नया जीवन दर्शन लेकर आए हैं। श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता, और श्रम करने वाले लोग ही इस व्यवस्था को बदलेंगे “खो सकता है /मेरा तेरा /रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना /हो सकता है /पूर्ण असंभव /का भी पूरा संभव होना /किंतु नहीं श्रम /तेरा मेरा / इन हाथों का खो सकता है/ इनके द्वारा / कर्म असंभव/ पूरा संभव हो सकता है।” (गुल मेंहदी, पृ. 159)

बुंदेलखंड की प्रकृति और प्राकृतिक परिवेश उनकी कविताओं में जीवंत होकर आया है। अपने परिवेश और प्रकृति से केदार का यह लगाव जीवन के प्रति गहरी आसक्ति का ही सूचक है। प्रकृति के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए केदार कहते हैं-“प्रकृति में हम रहते हैं जो हमारे लिए माँ हैं- उसी को हमने आज के साहित्य से निश्कासित कर दिया है और हम हो गए हैं प्रकृतिविहीन निस्संग आदमी। प्रकृति और जीवन से उद्भूत हुआ करता है सौंदर्य।” यह सौन्दर्य केदार जी की कविताओं में बिखरा पड़ा है एक प्रगतिशील कवि प्रकृति पर कविताएं लिखता है तो प्रकृति को भी

सामाजिक यथार्थ से भिन्न करके नहीं देखता। केदार का प्रकृति चित्रण भी सामाजिक वास्तविकता और यथार्थ के अनुभव से भिन्न नहीं है। इसलिए गेहूँ की लहलहाती फसल केदार को हिम्मत वाली लाल फौज की याद दिलाती है “आर-पार चौड़े खेतों में/ चारों ओर दिशाएं घेरे /लाखों की अगणित संख्या में /ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है /ताकत से मुट्ठी बंधे है/ नोकीले भाले ताने है /हिम्मत वाली लाल फौज सा /मर मिटने को झूम रहा है।” (गुल मेंहदी, पृ. 21)

बुंदेलखंड की प्रकृति और किसानों के परिवेश केदार की कविताओं में इतना रच बस कर आता है कि मानों यही उनकी रचना दृष्टि का प्रेरक तत्व है। चन्द्रगहना से लौटती बार वे एक मेड़ पर बैठ जाते हैं और देखते हैं एक बीते के बराबर यह हरा टिगना चना / बंधे मुरेठा शीश पर /छोटे गुलाबी फूल का /सज कर खड़ा है।”

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 2)

केदार को प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं जिनमें गीत जीवन, खुलापन, उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उन्हें नूप, नदी, पहाड़, बादल हवा फसलें बहुत आकृष्ट करती हैं। प्रकृति के प्रति बहरे लगाव के कारण बसंत में खिले फूल ही केदार को आकृष्ट नहीं करते बल्कि छोटे से पोखर के तले उगे हुए घास देखकर भी वे उल्लसित होते हैं- “और पैरों के तले है एक पोखर /उठ रही इसमें लहरियां /नील तल में जो उगी है घास भूरी /ले रही वह भी लहरियां।” (फूल नहीं, पृ. 18)

केदार के प्रकृति वर्णन में कोमलता के साथ परुशता के स्वर का भी सामंजस्य भी है। केदार के यहाँ प्रकृति केवल सुकुमार संवेदनाओं को ही नहीं जगाती, सबल भावों की भी धात्री है “तेज धार का कर्मठ पानी /चट्टानाकं के ऊपर चढ़कर /मार रहा है /धूँसे कसकर /तोड़ रहा है तट चट्टानी।” इस प्रकार निःसंदेह केदार का प्रकृति चित्रण उनके प्राकृतिक परिवेश, स्थानिकता, उनकी सामाजिक विचारधारा और यथार्थबोध से गुंथा हुआ है।

केदार जी ने प्रेम और प्रकृति पर दोनों कविताएं लिखकर इस बात को सिद्ध किया है कि वे रुढ़ अर्थों में प्रगतिशील नहीं हैं बल्कि केदार जी ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ ही प्रेम और श्रृंगार के रोमानी कवि के रूप में किया है और आज तक वे निरंतर प्रेम कविताएं लिखते रहे हैं जो मुख्यतः “नींद के बादल”,

“गुलमेंहदी” “जमुन जल तुम,” “जो शिलाएं तोड़ते हैं, और “हे मेरी तुम” आदि काव्य संग्रहों में संकलित है। केदार का प्रेम रोमांटिक कवियों की तरह भावुकता से सना-पगा और काल्पनिक नहीं रहा है। उनका प्रेम एक व्यापक परिवेश में देखने की सामर्थ्य रखता हुआ विकसित हुआ है। उनके प्रेम की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने स्वकीया प्रेम किया है। वे आरंभ से ही सामाजिक मर्यादित प्रेम के हिमायती रहे हैं। स्वकीया प्रेम की यह विशेषता होती है आठोपहर मधुचर्या करने के बजाय, प्रमी एक दूसरे के जीवन के विभिन्न अनुभवों में हिस्सा बंटते हैं जबकि परकीया प्रेम में सामाजिक मर्यादा के साथ-साथ व्यक्ति अपने दायित्व बोध को भी भुला बैठता है। केदार ने मानवीय भूमि पर स्वकीया प्रेम की स्वस्थ भावना को खड़ा किया है। केदार की प्रेम कविताओं में प्रेम व्यंजना के साथ-साथ सामाजिक प्राकृतिक परिवेश भी अपने यथार्थ के साथ गुंथ कर आता है, जैसे

**सिर्फ प्रेम व्यंजना वाली कविता  
हे मेरी तुम!**

**यह जो लाल गुलाब खिला है, खिला करेगा  
यह जो रूप अपार हैसा है, हैसा करेगा  
यह जो प्रेम-पराग उड़ा है, उड़ा करेगा  
(जो शिलाएं तोड़ते हैं, पृ.158)  
प्रेम के साथ यथार्थ प्राकृतिक परिवेश  
हे मेरी तुम!**

**काले-काले छाए बादल उड़ जाएंगे  
गावों- खेतों मैदानों को, तज जाएंगे  
(जो शिलाएं तोड़ते हैं पृ.166)**

केदार अपनी तुम को याद करते हुए अपने गाँव, अपने परिवेश, अपनी आंचलिक प्रकृति को नहीं भूलते। हिन्दी में शायदही किसी कवि ने प्रेम सम्बन्धी कविताओं में अपने गाँव को इतने विस्तार से याद किया हो

प्यारी मेरे जन्म गाँव में  
प्यारी । उसीलड़कपन वाले गाँव में  
प्यारी उसी पढ़ाई वाले गाँव में  
प्यारी उसी रामलीला वाले गाँव में  
प्यारी उसी कमासिन वाले गाँव में  
अपने प्यारे गाँव में, नैनी से तुमको लाया हूँ  
(जमुन जल तुम, पृ. 59-63)

केदार के प्रेम संबन्धी कविताओं में प्रकृति का प्रेम, कविता का प्रेम, पत्नी का प्रेम इनका संगम हो जाता है। यह विशेषता उनके अपने व्यक्तित्व के विकास से ही संभव हुई है। केदार का सहज भाव से लिखी हुई प्रेम कविताएं कवि की मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव को बहुत अच्छी तरह से प्रकट करती है। इसमें करुणा की ऐसी अंतर्धारा है जो प्रेम को और भी मूल्यवान बना देती है लेकिन अपना प्रेम प्रबल है, सुख-दुख दोनों /साथ पियेंगे /काल क्रूर से नहीं डरेंगे /नहीं डरेंगे /नहीं डरेंगे।

(हे मेरी तुम, पृ. 14)

केदार की प्रेम कविताओं की यह विशेषता है कि उनमें कवि की सामाजिक यथार्थ दृष्टि अभिव्यक्त होती है। इसलिए प्रेम कविताओं में प्राकृतिक परिवेश, आंचलिक प्रकृति और प्रेम की उदात्ता, गरिमा ओर व्यापक मानवीय संदर्भ गुंथे रहते हैं। केदार में एक खास तरह की स्थानिकता, आंचलिकता है, जिससे उनकी रचनाओं में एक सहजता, अपनी जमीन से जुड़े रहने का एहसास और लोकजीवन के विभिन्न रंग मिलते हैं। सारांशतः केदार नाथ अग्रवाल इस देश के श्रमशील मनुष्य के सुखः दुख को वाणी देने वाले प्रमुख प्रगतिशील कवि हैं।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. डॉ रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद।
2. अजय तिवारी, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. भगत रावत, राजेन्द्र शर्मा, मनोहर देवलिया, जिउँगा अभी और अभी और, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

# बाल विकास मे ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण (काशीपुर ब्लॉक के विशेष संदर्भ में)



shodhshree@gmail.com

दिव्या राव

शोधार्थी, एम.बी. राजकीय स्नातक महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

डॉ. एम. पी. सिंह

एसो. प्रोफेसर, एम.बी. राजकीय स्नातक महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

## शोध सारांश

दुनिया में अगर कोई देश तरक्की करता है तो उसका सबसे बड़ा कारण होता है कि उस देश के बच्चों। आज का बालक कल का नागरिक होता है। किसी भी राष्ट्र का भावी विकास उसके नागरिकों में राष्ट्र के प्रति एकात्म भाव निष्ठा, त्याग, कर्तव्य परायणता व्यक्ति पर मूल रूप से आश्रित है। इन गुणों का नागरिकों में उद्भव एवं विकास तभी सम्भव है जब बाल्यावस्था से ही उनकी मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो, उन्हें प्रगति एवं विकास के अवसर प्राप्त हों और उनके सर्वांगीण विकास हेतु अनुकूल परिवेश सुलभ हो। यह सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार किया जा चुका है कि किसी भी देश का आर्थिक विकास मानव संसाधन विकास में निवेश पर निर्भर करता है। बच्चे न केवल विकास के सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं बल्कि वे मानव विकास के आधार हैं। शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि लाभार्थियों में स्वास्थ्य जाँच हेतु उत्सुकता की कमी ने ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की समस्या को बड़ा दिया है। अधिकांश 94 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने ऑगनबाड़ी के डिजिटाइज होने को अपनी महत्वपूर्ण समस्या के रूप में स्पष्ट किया है। शोध के दौरान कार्यकर्तियों ने बताया कि उन्हें मोबाईल पर कार्य करने से बेहतर रजिस्टर पर कार्य करना सरल लगता है, उन्होंने बतलाया कि डिजिटाइज होने से समय की बरबादी होती है, साथ ही साथ उन्हें शाररिक तथा मानसिक कष्ट भी झेलना पड़ता है। अधिकांश 92 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह बतलाया है कि अन्य विभागों द्वारा कार्य कराये जाने से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्य में बढ़ोतरी से उनके पारिवारिक द्वन्द्व जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शोध से यह ज्ञात होता है कि ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्य में अनेक समस्या होने के बावजूद ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती बाल विकास हेतु अनेक कार्यक्रमों द्वारा अपनी भूमिका का निर्वाह उचित ढंग से कर रही है। भारत सरकार एवं उत्तराखण्ड शासन द्वारा ऑगनबाड़ी केंद्रों के विकास हेतु निरंतर प्रयास किया जा रहा है। कोविड काल खण्ड के दौरान ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने अपने सामूहिक उत्पादायित्व बेहतर तरीके से संपन्न किया है। उत्तराखण्ड राज्य की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं उसके बावजूद कार्यकर्तियों ने बेहतर कार्य किया है।

**संकेताक्षर :** ऑगनबाड़ी, डिजिटाइजेशन, बाल विकास, मानव संसाधन, पोषाहार, स्वास्थ्य।

**दु**निया में अगर कोई देश तरक्की करता है तो उसका सबसे बड़ा कारण होता है कि उस देश के बच्चों। आज का बालक कल का नागरिक होता है। किसी भी राष्ट्र का भावी विकास उसके नागरिकों में राष्ट्र के प्रति एकात्म भाव निष्ठा, त्याग, कर्तव्य परायणता व्यक्ति पर मूल रूप से आश्रित है। इन गुणों का नागरिकों में उद्भव एवं विकास तभी सम्भव है जब बाल्यावस्था से ही उनकी मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो, उन्हें प्रगति एवं विकास के अवसर प्राप्त हों और उनके सर्वांगीण विकास हेतु अनुकूल परिवेश सुलभ हो। यह सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार किया जा चुका है कि किसी भी देश का आर्थिक विकास मानव संसाधन विकास में निवेश पर निर्भर करता है, बच्चे न केवल विकास के सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं बल्कि वे मानव विकास के आधार हैं।

बच्चों के विकास में उनके शुरुआती छः वर्षों का बहुत महत्व होता है। इसी दौरान बच्चे के स्वास्थ्य, उसके हितों, उसके नजरिये और अवसरों की काफी सारी चीजें तय हो जाती हैं जो जीवन भर बनी रहती हैं। यह अवधि असुरक्षित भी है, खासकर भारतीय सन्दर्भ में। भारत में बच्चे औसतन कुपोषित होते हैं उन्हें जन्म से ही मुश्किलों और तंगी का सामना करना पड़ता है। माँ के कुपोषित रहने और परिवार को जच्चा-बच्चा सम्बन्धी सामान्य सुविधाएं भी उपलब्ध न होने से बच्चे की परेशानियाँ उसके पैदा होने से पहले ही शुरू हो जाती हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्र के नीति निर्णायकों एवं प्रशासकों का ध्यान इस ओर गया और पांचवी पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्यान्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत मानवीय संसाधनों के विकास और बालकों की हित रक्षा की दृष्टि से अनेक कार्यक्रम एवं सेवाएँ सुलभ करायी गईं। राष्ट्रीय बाल नीति की भी स्वीकृति एवं इसके कार्यन्वयन, बाल कल्याण का एक नया आयाम प्रदान किया और बालकों के सर्वांगीण विकास के प्रति सरकार स्वैच्छिक संगठनों एवं माँ-बाप को इस दिशा में विशेष जागरूक एवं स्पष्ट किया। इसी क्रम में सरकार द्वारा व्यापक स्तर से आईसीडीएस (ICDS) कार्यक्रम अर्थात् समेकित बाल विकास सेवाओं की शुरुआत की यह नन्हें बच्चों को अनुपूरक आहार, स्वास्थ्य की देखरेख और स्कूल पूर्व की शिक्षा वगैरह उपलब्ध कराने का एकमात्र समेकित केन्द्रीय कार्यक्रम है।

आईसीडीएस (ICDS) कार्यक्रम अर्थात् समेकित बाल विकास का दूसरा नाम आँगनबाड़ी कार्यक्रम है, आँगनबाड़ी केन्द्र का संचालन वेतनभोगी आँगनबाड़ी कार्यकर्ती करती है, और आँगनबाड़ी सहायका उसकी सहायता करती है। प्रारम्भिक बचपन का उचित विकास ही समूचे जीवन के विकास का आधार है, इस हेतु शुरु के वर्षों में बच्चों के संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक, शारीरिक विकास एवं भाषा के विकास की नींव रखने हेतु विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप नियमित रूप से आँगनबाड़ी केन्द्रों पर आयोजित होते हैं व समाज में भी यह समझ विकसित हो इसके प्रयास किये जाते हैं। समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम के द्वारा साधन एवं निम्न आय वर्ग के लोगों

पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह कार्यक्रम छोटे बच्चों, गर्भवती महिलाओं, स्वास्थ्य, पोषण सम्बन्धी बेहतर देखभाल एवं शिक्षा सेवाएं एक साथ प्रदान करने का समन्वित दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समुदाय के सहयोग से बच्चों के सम्पूर्ण विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया गया। समेकित बाल विकास सेवा योजना के अन्तर्गत बाल-विकास एवं बच्चों से सम्बन्धित सम्पूर्ण कार्यक्रमों को इन्हीं आँगनबाड़ी केन्द्रों पर संचालित किया जाता है। इन आँगनबाड़ी केन्द्रों की संचालन करने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आँगनबाड़ी कार्यकर्ती की होती है। जिसे आम बोल चाल की भाषा में आँगनबाड़ी बहन जी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। समन्वित बाल विकास परियोजना बालकों के सर्वांगीण विकास को गति एवं दिशा प्रदान करने हेतु प्रयासरत है। इस बाल विकास कार्यक्रम में आँगनबाड़ी कार्यकर्तियों की भूमिका का मूल्यांकन हम इस शोध में करेंगे।

### साहित्य सर्वेक्षण

निशा भारती, (2013) ने अपने अध्ययन “भारत में स्वास्थ्य का समाजशास्त्र” का अध्ययन करके बताया है कि मिड-डे-मील और एकीकृत बाल विकास सेवाओं (आँगनबाड़ी), स्कूल, छोटे बच्चों, स्कूल जाने वाले बालक व बालिकाओं, गर्भवती स्त्रियों और स्तनपान कराने माताओं को भोजन में आने वाली कमियों को अतिरिक्त पोषाहार द्वारा पूरा करते हैं।

विनय आचार्य, (2017) ने अपने अध्ययन “भारत में कुपोषण को समझने वाली जटिलताएं” में समेकित बाल विकास सेवा एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है यह कार्यक्रम आँगनबाड़ी केन्द्रों व परिवारों के स्तर पर सेवाएं प्रदान करके कुपोषण के चक्र को रोकता है इन सेवाओं में पूरक पोषण, स्कूल पूर्व शिक्षा, टीकाकरण, स्वास्थ्य व स्वच्छता शिक्षा सम्मिलित हैं।

मंजू पवार (2018) ने अपने अध्ययन “समेकित बाल विकास योजना समस्याएं और सुझाव” में लिखा है कि एकीकृत बाल विकास योजना को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक बचपन से किशोरा अवस्था तक पर्याप्त पोषण तैयार किया जाना चाहिये।

## अध्ययन के उद्देश्य

1. ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की सामाजिक - आर्थिक पृष्ठभूमि को ज्ञात करना।
2. ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों द्वारा बाल विकास हेतु कराये जाने वाले कार्यों को ज्ञात करना।
3. ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की बाल विकास कार्यक्रम के प्रति जागरूकता को ज्ञात करना।
4. ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की समस्या को ज्ञात करना।

**शोध प्रारूप :-** प्रस्तुत अध्ययन वर्णात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है, अध्ययन का समग्र काशीपुर ब्लॉक के ग्रामीण ऑगनबाड़ी केन्द्र में कार्यरत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों का है, कार्यरत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों कुल संख्या 204 है, प्रति दर्श चयन हेतु उद्देश्य पूर्ण निर्दर्शन पद्धति का प्रयोग किया गया है, उद्देश्य पूर्ण निर्दर्शन पद्धति द्वारा कुल संख्या से 25 प्रतिशत (51) कार्यकर्तियों का चुनाव प्रति दर्श के रूप में किया गया है।

## विश्लेषण

### तालिका संख्या - 01

#### ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की वैवाहिक स्थिति को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अविवाहित	03	5
2	विवाहित	06	13
3	विधवा	42	82
	योग	51	100

तालिका संख्या 01 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 82 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती विधवा हैं जबकि 13 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती विवाहित हैं तथा शेष 05 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती अविवाहित हैं। अतः स्पष्ट होता है कि चयन प्रक्रिया में विधवा महिलाओं को प्रथम स्थान दिया जाता है।

## तालिका संख्या - 02

#### ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की पारिवारिक स्थिति को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	संयुक्त परिवार	22	43
2	एंकाकी परिवार	29	57
	योग	51	100

तालिका संख्या 02 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 57 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती एंकाकी परिवार में निवास करती है जबकि 43 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती संयुक्त परिवार में निवास करती है। अतः स्पष्ट होता है अधिकांश कार्यकर्ती एंकाकी परिवार से है।

## तालिका संख्या - 03

#### ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की मासिक आय को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	1000 से 1500	09	18
2	1500 से 2000	41	80
3	2000 से ऊपर	01	02
	योग	51	100

तालिका संख्या 03 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 80 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती की मासिक आय 1500 से 2000 के बीच में है वहीं 18 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती की मासिक आय 1000 से 1500 के बीच है शेष 02 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती की मासिक आय 2000 से ऊपर है। अतः यह मासिक आय उनकी खराब स्थिति को प्रदर्शित करती है।

तालिका संख्या - 04

ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों द्वारा बाल विकास हेतु कराये जाने वाले कार्यों को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृति		प्रतिशत		योग	
		हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	आवृति	प्रतिशत
1	पूरक पोषाहार कार्यक्रम / दोपहर का भोजन कार्यक्रम	49	02	96	04	51	100
2	स्वास्थ्य जाँच	46	05	90	10	51	100
3	प्रतिरक्षण/टीकाकरण कार्यक्रम	49	02	96	04	51	100
4	प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल	50	01	98	02	51	100
5	परामर्श सेवाएं	47	04	92	08	51	100
6	अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा कार्यक्रम	48	03	94	06	51	100

तालिका संख्या 04 हमें ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों द्वारा बाल विकास हेतु किये जाने वाले कार्यों को दर्शाता है, यह तालिका बताती है कि ऑगनबाड़ी केन्द्र में निम्न कार्यक्रम संचालित है, पूरक पोषाहार कार्यक्रम - दोपहर का भोजन कार्यक्रम, स्वास्थ्य जाँच, प्रतिरक्षण/टीकाकरण कार्यक्रम, प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल, परामर्श सेवाएं, अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा कार्यक्रम यह कार्यक्रम बालक के शाररिक, मानसिक, बौद्धिक विकास हेतु अहम भूमिका निभाते है।

तालिका संख्या - 05

ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों द्वारा बाल विकास हेतु देखरेख कार्यक्रम को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृति	प्रतिशत
1	जन्म से पूर्व	47	92
2	जन्म के उपरान्त	03	06
3	01 से 06 साल तक	01	02
	योग	51	100

तालिका संख्या 05 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 92 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियां यह तथ्य स्वीकार करती है कि वह बाल विकास हेतु बालक की देख-रेख जन्म से पूर्व ही शुरू कर देती है। जैसे

गर्भवती महिलाओं को समय-समय पर टीकाकरण की सुविधा मुहैया कराना व पोषक आहार का वितरण करना जिससे होने वाला नवजात शिशु स्वस्थ पैदा हो।

तालिका संख्या - 06

ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों द्वारा माताओं की देखभाल के विवरण को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृति	प्रतिशत
1	गर्भ से पूर्व	01	02
2	गर्भ के पश्चात	49	96
3	उपरोक्त दोनो अवस्था में	01	02
	योग	51	100

तालिका संख्या 06 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 96 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती माताओं की देखभाल दोनो अवस्थाओं में गर्भ से पूर्व एवं गर्भ के पश्चात करती हैं उनका कहना है कि जब माँ स्वस्थ रहेगी तो बच्चा भी स्वस्थ ही जन्म लेगा। वह कुपोषण जैसी बीमारी से ग्रसित नहीं होगा। क्योंकि बच्चों का विकास उनके पैदा होने से पहले ही आरम्भ हो जाता है।

तालिका संख्या - 07

ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को विकास कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त के स्रोतों को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	जानकारी प्राप्त के स्रोत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अखबार से	02	04
2	टी.वी./मीडिया	05	10
3	सुपरवाइजर द्वारा मीटिंग में अवगत कराये जाने से	44	86
	योग	51	100

तालिका संख्या 07 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 86 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को बाल विकास हेतु चलाये जाने वाले कार्यक्रमों की जानकारी है। यह जानकारी उन्हें हर महीने आयोजित होने वाली मीटिंग में सुपरवाइजर द्वारा अवगत कराये जाने से होती है। वहीं 10 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को टी.वी./मीडिया से तथा शेष 04 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को अखबार द्वारा जानकारी प्राप्त होती है।

तालिका संख्या - 08

बाल विकास कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन हेतु जनता के सहयोग को दर्शाती तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	13	25
2	नहीं	38	75
	योग	51	100

तालिका संख्या 08 के आधार से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 75 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह बतलाया है कि बाल विकास कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन हेतु जनता के सहयोग उन्हें प्राप्त नहीं होता। वहीं 25 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को बाल विकास कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन हेतु जनता का सहयोग प्राप्त होता है।

तालिका संख्या - 09

वेतन अनभियतता की समस्या को दर्शाती हुई तालिका

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	07	14
2	नहीं	44	86
	योग	51	100

तालिका संख्या 09 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 86 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि उन्हें सरकार द्वारा दिये जाने वाले वेतन समय पर प्राप्त नहीं होता है जिससे उन्हें अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि जो वेतन उन्हें प्राप्त होता है वह उनकी आजीविका हेतु पर्याप्त नहीं है। वहीं 14 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती इस तथ्य को स्वीकार नहीं करती है। वास्तविक यह है कि वर्तमान स्थिति में केन्द्र/राज्य सरकारों के मिले-जुले योगदान से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को जो वेतन मिलता है वह किसी भी किस्म की न्यूनतम मजदूरी से कम है।

तालिका संख्या - 10

लाभार्थियों द्वारा स्वास्थ्य जाँच हेतु उत्सुकता का विवरण

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	15	29
2	नहीं	36	71
	योग	51	100

तालिका संख्या 10 के आधार से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश 71 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह तथ्य बतलाया है कि लाभार्थियों अपने स्वास्थ्य जाँच हेतु उदासीन रहते हैं ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती स्वास्थ्य जाँच हेतु बार-बार उनके घर जाकर उन्हें सूचित करती है परन्तु लाभार्थी समय से जाँच नहीं करवाती हैं। वहीं 29 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती यह तथ्य को स्वीकार नहीं करती है।

## तालिका संख्या - 11

**ऑगनबाड़ी के कार्यों का डिजिटाइज होने से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की समस्या बढ़ने के विवरण को दर्शाती तालिका**

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	48	94
2	नहीं	03	06
	योग	51	100

तालिका संख्या 11 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 94 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने ऑगनबाड़ी के डिजिटाइज होने को अपनी महत्वपूर्ण समस्याओं के रूप में स्पष्ट किया है। शोध के दौरान कार्यकर्तियों ने बताया कि उन्हें मोबाइल पर कार्य करने से बेहतर रजिस्टर पर कार्य करना सरल लगता है, उन्होंने बतलाया कि डिजिटाइज होने से समय की बर्बादी होती है, साथ ही साथ उन्हें शारीरिक तथा मानसिक कष्ट भी झेलना पड़ता है वहीं 06 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को कार्यों के डिजिटाइज होने से कोई समस्या नहीं है।

## तालिका संख्या - 12

**अन्य विभागों द्वारा अत्यधिक कार्यभार दिये जाने से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्यभार बढ़ने की समस्या को दर्शाती तालिका**

क्र.सं.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	47	92
2	नहीं	04	08
	योग	51	100

तालिका संख्या 12 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश 92 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह बतलाया है कि अन्य विभागों द्वारा कराये जाने से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्य में बढ़ने से उनके पारिवारिक द्वन्द्व जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वहीं 08 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह तथ्य स्पष्ट किया कि उन्हें अन्य विभागों द्वारा अत्यधिक कार्यभार दिये जाने से समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है।

## निष्कर्ष

सम्पूर्ण विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश 82 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती विधवा है। वे एकाकी परिवार में रहती है। उनकी मासिक आय 1500 से 2000 के बीच में है जो ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की खराब आर्थिक स्थिति को दर्शाती है, बाल विकास हेतु ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती अनेको कार्य करती है इन कार्यों का उद्देश्य छ; वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण के स्तर में सुधार लाना, बच्चों के उचित शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास की नींव रखना, शिशु मृत्यु दर, बीमारी, कुपोषण और स्कूली पढाई छोड़ने की दर में कमी लाना, बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों की नितियों और कार्यक्रमों में समन्वय लाना, उपयुक्त सामुदायिक शिक्षा द्वारा माताओं को अपने शिशु के स्वास्थ्य, पोषण और विकास की सामान्य जरूरतों के बारे में जानकारी देना है। बालक के विकास को ध्यान में रखकर ही बालक की देखरेख जन्म से पूर्व तथा गर्भवती और धात्री माताओं की देखरेख गर्भ से पूर्व एवं पश्चात की जाती है। इन सब कार्यों को पूर्ण करने में ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों को समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश 75 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह बतलाया है कि बाल विकास कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन हेतु जनता के सहयोग उन्हें प्राप्त नहीं होता कार्यक्रमों की सफलता के लिए जनसहयोग का होना आवश्यक है जब तक समुदाय के लोगों का किसी समस्या को हल करने के लिए सहयोग प्राप्त न हो उस समस्या का निराकरण प्रायः कठिन होता है। अधिकांश 86 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि उन्हें सरकार द्वारा दिये जाने वाले वेतन समय पर प्राप्त नहीं होता है जिससे उन्हें अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है तथा जो वेतन उन्हें प्राप्त होता है वह उनकी आजीविका हेतु प्रयाप्त नहीं है। शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि लाभार्थियों में स्वास्थ्य जाँच हेतु उत्सुकता की कमी ने ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों की समस्या को बड़ा दिया है। अधिकांश 94 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने ऑगनबाड़ी के डिजिटाइज होने को अपनी महत्वपूर्ण समस्याओं के रूप में स्पष्ट किया है। शोध के दौरान कार्यकर्तियों ने बताया कि उन्हें मोबाइल पर कार्य करने से बेहतर रजिस्टर पर कार्य करना सरल लगता है, उन्होंने

बतलाया कि डिजिटाइज होने से समय की बरबादी होती है, साथ ही साथ उन्हें शाररिक तथा मानसिक कष्ट भी झेलना पड़ता है। अधिकांश 92 प्रतिशत ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने यह बतलाया है कि अन्य विभागों द्वारा कार्य कराये जाने से ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्य में बड़ोतरी से उनके पारिवारिक द्वन्द्व जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शोध से यह ज्ञात होता है कि ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों के कार्य में अनेक समस्या होने के बावजूद ऑगनबाड़ी कार्यकर्ती बाल विकास हेतु अनेक कार्यक्रमों द्वारा अपनी भूमिका का निर्वाह उचित ढंग से कर रही है। भारत सरकार एवं उत्तराखण्ड शासन द्वारा ऑगनबाड़ी केंद्रों के विकास हेतु निरंतर प्रयास किया जा रहा है। कोविड काल खण्ड के दौरान ऑगनबाड़ी कार्यकर्तियों ने अपने सामूहिक उत्पादायित्व बेहतर तरीके से संपन्न किया है। उत्तराखण्ड राज्य की भौगोलिक एवं

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं उसके बावजूद कार्यकर्तियों ने बेहतर कार्य किया है।

### **संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. सिंह, राकेश, 2014 'ऑगनबाड़ी कार्यक्रम; एक प्रवेशिका' सर्वोदय इंकलेव, नई दिल्ली, पृष्ठ सं..20
2. भारती, निशा, 2013 "भारत में स्वास्थ्य का समाजशास्त्र", अहजिदंगी समपूर्ण स्वास्थ्य महाविशेषांक, वर्ष.9, पृष्ठ सं..33
3. आचार्य, विनोद, 2017 "भारत में कुपोषण को समझने वाली जटिलताएं" पृष्ठ सं. 5.10
4. पंवार, मन्जू ,2018 "समेकित बाल विकास योजना समस्याएं और सुझाव", " राधा कमल मुकर्जी; चिन्तन परम्परा", वर्ष 20, अंक 1, पृष्ठ सं. 9.14

# दो विश्व युद्धों के मध्य राजस्थान में राजनीतिक परिवर्तन (1920-1939)



shodhshree@gmail.com

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

## शोध सारांश

अपनी वीरता और जन्मभूमि के प्रति प्रेम के लिए प्रसिद्ध राजस्थान की गाथाएं शुरू से ही राष्ट्रीय नायकों को प्रेरित करती रही हैं। अंग्रेजों के खिलाफ 1857 में भी राजस्थान की आवाज गुंजी थी। नई नीतियों के प्रति असंतोष, प्रजा के शोषण एवं दमन, आर्य समाज आन्दोलन, क्रांतिकारी गतिविधियों से यहां जागृति बढ़ने लगी थी किन्तु दो विश्व युद्धों के बीच (1920-1939) यहां हुए राजनैतिक बदलावों ने जनजागृति को जन आन्दोलन में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस शोध लेख में इन्हीं बदलावों का विश्लेषण किया जायेगा। इसमें कांग्रेस और गांधी के आरम्भिक दृष्टिकोण, कालान्तर में समय के साथ-साथ उसमें आये बदलावों, विभिन्न राष्ट्रीय समाचार पत्रों की भूमिका, राजपूताना मध्य भारत सभा, राजस्थान सेवा संघ, अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद्, विभिन्न राज्यों की स्थानीय सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं तथा प्रजा मंडल जैसी संस्थाओं की भूमिका और योगदान को रेखांकित करते हुए निर्धारित समय में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए किये गये विभिन्न प्रयासों को रेखांकित किया जायेगा।

**संकेताक्षर :** विश्व युद्ध, नरेन्द्र मंडल, पूर्ण स्वराज, हरिपुरा कांग्रेस, नवीन राजस्थान, राजस्थान केसरी, प्रताप, खादी, राजस्थान सेवा संघ, हरिजन सेवक संघ, नरेली, खड़लाई आश्रम, देशी राज्य प्रजा परिषद्, मारवाड़ यूथलीग, निष्कासन, प्रजामंडल, उत्तरदायी शासन।

# ब्रि

टिश भारत की जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन थी लेकिन रियासती रियासतों की जनता तिहरी गुलामी की शिकार थी- सर्वप्रथम सामन्तवाद फिर राजशाही और अन्ततः ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता की गुलामी। ब्रिटिश शासन की स्थापना से आए विभिन्न बदलावों के कारण 19 वीं सदी के अन्त तक ब्रिटिश भारत में राजनीतिक जागृति व्यापक होने लगी थी। वीरता और बलिदान के लिए प्रसिद्ध राजस्थान की गाथाएँ राष्ट्रीय नायकों को प्रेरित तो कर रही थीं लेकिन आजादी के लिए जागृति की बयार को राजस्थान में प्रवेश करने के लिए अभी उपरोक्त तीन स्तरीय शक्तियों का सामना करना था। दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज, विवेकानन्द तथा थियोसोफीकल सोसायटी ने शिक्षा तथा समाज सुधार के माध्यम से नवोत्थान का आरम्भ किया। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में रासबिहारी बोस तथा सन्याल जैसे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क और प्रेरणा से राजस्थान में भी क्रान्तिकारी गतिविधियों की सुगबुगाहट होने लगी थी। उसी को ध्यान में रखते हुए 1909 में लार्ड मिन्टो ने राजस्थान के सभी नरेशों से अनुरोध किया था कि वे अपने राज्यों में क्रान्तिकारी साहित्य और समाचार पत्रों को न आने दें और ना ही अपने राज्य में पनपने दें। राजाओं ने ऐसे निर्देशों का पालन भी किया लेकिन दृढ़ प्रतिज्ञा और निष्ठावान समाज सुधारक उग्र क्रान्तिकारी बन ही गए।<sup>2</sup> ऐसे लोगों में कृष्ण सिंह बारहट, केसरीसिंह बारहट, अर्जुनलाल सेठी, राव गोपालसिंह, दामोदरलाल राठी, प्रताप सिंह आदि प्रमुख थे। इन लोगों ने राष्ट्रीय क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने के अलावा धन की आवश्यकता में कोटा तथा निमेज महन्तों के हत्याकाण्ड को अंजाम देकर कैद की यातनाएँ भी भोगी लेकिन अत्यधिक गोपनीयता के कारण साधारण जनता इसमें सम्मिलित नहीं हो सकी।

रियासती रियासतों में जन जागृति तथा जन आन्दोलन ब्रिटिश भारत की अपेक्षा अधिक कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य था क्योंकि रियासती प्रजा के सामने एक ओर सामन्तवाद और राजतंत्र का गठबंधन था तो दूसरी ओर राजतंत्र और उपनिवेशवादी सत्ता का। ब्रिटिश भारत की राष्ट्रवादी ताकतें यहाँ की प्रजा का सम्बल बन सकती थीं लेकिन अभी यह भी दूर की बात थी। इस बीच 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध में विभिन्न भारतीय पक्षों की भूमिका तथा भारतीय संदर्भ में युद्ध के परिणामों ने ब्रिटिश भारत तथा रियासती रियासतों के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन को निर्णायक रूप से प्रभावित किया अतः 1920 से 1939 के मध्य राजस्थान में हुए परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में विश्वयुद्ध संबंधी घटनाक्रम की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

### प्रथम विश्वयुद्ध और उसके बाद

यूरोपीय शक्तियों के बीच आर्थिक होड़ तथा औपनिवेशिक विस्तार को लेकर प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। मित्र देशों का नेतृत्व कर रहे ब्रिटेन के लिए जर्मनी को पराजित करने की चुनौती थी अतः वह भारत से हर संभव मदद चाहता था। कांग्रेस, गाँधी तथा रियासती राज्यों ने ब्रिटेन की उम्मीदों से आगे जाकर उसकी मदद की। युद्धकाल में 12 लाख भारतीयों को भर्ती किया गया तथा हथियार, गोला एवं बारूद देकर विदेश भेजा गया।<sup>1</sup> रियासती रियासतों के शासकों में तो साम्राज्य की मदद के लिए होड़ लग गई। उन्होंने अपने संसाधन, सेना, कोश एवं स्वयं को साम्राज्य की सेवा के लिए समर्पित कर दिया जिसमें राजपूताना के शासक अग्रणी थे। सर्वप्रथम बीकानेर के राजा गंगासिंह ने ब्रिटिश सम्राट को मदद का प्रस्ताव भेजा<sup>2</sup> जिसका अन्य राजाओं ने अनुसरण किया। युद्ध के मोर्चे पर साम्राज्य के प्रति वफादारी सिद्ध करने के इस जज्बे का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि झालावाड़ जैसी छोटी रियासत ने युद्ध सहायता में लगभग 'सवा तीन लाख रुपये अनुदान एवं इकतीस हजार रुपये युद्ध ऋण दिया तथा राज्य से युद्ध में भर्ती होने वाले व्यक्तियों के लिए राजकोश से अतिरिक्त भत्ते और रियासतों की घोषणा की गई।'<sup>3</sup> इन सभी प्रयासों से अन्ततः 1919 में खत्म हुये विश्वयुद्ध में मित्रदेशों की विजय हुई।

युद्ध प्रयासों में भारतीयों की भागीदारी ने दो दृष्टियों से राजस्थान में जन जागृति के लिए प्रेरणा का काम किया<sup>4</sup> - पहला, युद्ध के दौरान साम्राज्यवादी हितों को देखते हुए एक ओर साम्राज्य की एकता तथा दूसरी

ओर ब्रिटिश भारत तथा रियासती रियासतों की एकता पर बल दिया गया था। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश भारत के विचारों का प्रवाह रियासती राज्यों में हुआ। वे ब्रिटिश भारत के नजदीक आए। दूसरा, साम्राज्य के लिए लड़ने गए भारतीय सैनिक समुद्रपार के देशों के स्वतंत्रता संबंधी विचारों से रोमांचित होकर लौटे। इन सैनिकों तथा समाचार सत्रों के माध्यम से रियासती राज्यों की जनता में चेतना आयी। ब्रिटिश भारत की सीमा से लगे बीकानेर तथा अलवर के राज्यों में ऐसे विचार और तेजी से फैले।

विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को भी निर्णायक रूप से प्रभावित किया जिसने शीघ्र ही रियासती राज्यों की जन जागृति को गतिशीलता प्रदान की। वस्तुतः प्रथम विश्व युद्ध में मित्र देशों ने अपने पक्ष को प्रजातंत्र की रक्षा के लिए लड़ा गया युद्ध कहा था अतः उनकी जीत के बाद भारतीयों को आशा थी कि साम्राज्य की मदद के कारण उन्हें स्वशासन प्रदान करने की दिशा में प्रगति होगी। ऐसी परिस्थितियों में 1919 का अधिनियम पारित हुआ जो स्वशासन की दिशा में निराशजनक दस्तावेज था। यही नहीं, कांग्रेस तथा गाँधी द्वारा युद्ध प्रयासों में की गई मदद के पुरस्कार में रॉलट एक्ट जैसा दमनात्मक कानून और जलियाँवाला बाग जैसा नरसंहार दिया गया और जिसकी प्रतिक्रिया में सारे देश में असन्तोष तथा आक्रोश फैल गया। इसी समय भारतीय राजनीतिक मंच पर अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह की नवीन तकनीक के साथ गाँधी का आगमन हुआ जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ही नहीं अपितु रियासती प्रजा के लिए भी आशा की नयी किरण सिद्ध हुआ। इससे कांग्रेस के दृष्टिकोण में आए बदलाव की चर्चा से पहले हम रियासती राज्यों के प्रति ब्रिटिश सत्ता के दृष्टिकोण की चर्चा करेंगे।

### ब्रिटिश सत्ता और रियासती राज्य

रियासती राजाओं का अस्तित्व ब्रिटिश परम सत्ता की कृपा पर निर्भर था। परम सत्ता तथा रियासती राज्यों के मध्य हुयी संधियों की व्याख्या ब्रिटिश सरकार के हितों के अनुरूप होती आई थी। अपने अधिकारों और प्रतिष्ठा की उपेक्षा के कारण ब्रिटिश सरकार के प्रति उनमें रोष था लेकिन वे उसे प्रकट नहीं कर सकते थे। वे अपने अधिकारों की संगठित माँग भी नहीं कर सकते थे। वे इतने भर से संतुष्ट थे कि ब्रिटिश सरकार ने उनके वंशानुगत शासन और राज्य को अक्षुण्य बनाए रखने का आश्वासन दिया था और उन्हें ब्रिटिश सरकार का संरक्षण प्राप्त था।<sup>5</sup> लेकिन बीसवीं सदी में होने

वाले राजनीतिक बदलावों ने रियासती शासकों के प्रति ब्रिटिश नीति को प्रभावित किया। 'एक ओर ब्रिटिश भारत में साम्राज्यवाद की बढ़ती खिलाफत के कारण अंग्रेज रियासती राजाओं का सहयोग चाहते थे तो दूसरी ओर बढ़ते प्रजातांत्रिक राष्ट्रवाद के ज्वार से अपनी निरंकुश सत्ता की रक्षा के लिए रियासती नरेश पहले से कहीं अधिक अपने आपको परम सत्ता पर आश्रित महसूस कर रहे थे।'<sup>8</sup> इन्हीं परिस्थितियों में जब ब्रिटेन ने विश्व युद्ध में भाग लिया तो रियासती नरेशों ने तन, मन और धन से उसकी मदद की। 'युद्ध में नरेशों की इस भूमिका की मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1919) में प्रशंसा करते हुए कहा गया कि नरेशों को संघियों द्वारा प्रदत्त विभिन्न अधिकारों, प्रतिष्ठा तथा विशेषाधिकारों की रक्षा की जाएगी।'<sup>9</sup> इसी रिपोर्ट में नरेशों के स्थायी सदन के गठन का प्रस्ताव भी दिया गया।

उपरोक्त प्रस्ताव के अनुरूप शाही घोषणा द्वारा फरवरी 1921 में नरेन्द्र मण्डल की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य ब्रिटिश भारत तथा रियासती राज्यों में अधिक समन्वय स्थापित करना बताया गया और इसमें नरेशों को अपनी शिकायतें सीधे वायसराय को भेजने की सुविधा भी दी गई लेकिन इस सदन की स्थापना का असली उद्देश्य बदली हुई परिस्थितियों में राजाओं का सहयोग पाने के लिए कुछ राजाओं को प्रयत्नशील एवं सक्रिय बनाना था। शाही घोषणा में कहा गया था कि यह संस्था राजाओं तथा प्रजा दोनों के लिए लाभदायक होगी लेकिन सदन की कार्यवाही रिपोर्टों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसमें जनहित का कोई विषय न तो उठाया गया और ना ही उस पर चर्चा हुयी थी।<sup>10</sup> राज्यों की संख्या अधिक होने के कारण सभी राज्य इसके सदस्य नहीं बन सकते थे अतः 11 तोपों की वंशानुगत तथा व्यक्तिगत सलामी वाले राज्यों को नरेन्द्रमण्डल में व्यक्तिगत सदस्यता दी गई तथा शेष राज्यों को सामूहिक प्रतिनिधित्व दिया गया। इसने छोटी तथा बड़ी रियासतों के भेद को उजागर किया जिससे रियासतों में मतभेद बढ़े और इस प्रकार नवीन व्यवस्था ने छः सौ रियासतों को एक करने के बजाय कूटनीति पूर्वक विभाजित कर दिया।<sup>11</sup>

इसकी बैठकों में भाग लेना पूर्णतया ऐच्छिक था। राज्यों के आन्तरिक प्रशासन को सदन की कार्यवाही से बाहर रखा गया था। इसके अलावा, इसके द्वारा पारित प्रस्ताव राज्यों तथा ब्रिटिश सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं थे। इस प्रकार यह एक ढीला ढाला संगठन था, जिसकी बैठकों में पचास प्रतिशत से अधिक उपस्थिति

कभी नहीं रही। नरेन्द्र मण्डल में शासकों का सारा ध्यान उनके अधिकारों, सम्मान और गौरव को सुरक्षित रखने पर रहा और यह मण्डल तीसरी शक्ति के रूप में न उभर सका। मण्डल ने राष्ट्रीय शक्तियों के मार्ग में रोड़ा बनने का ही प्रयास किया। जब 1928 में कांग्रेस ने डोमिनियन स्टेटस की स्थापना के लिए अंग्रेजों को एक वर्ष की समय सीमा दी तो 1929 में नरेन्द्र मण्डल में प्रस्ताव पारित कर इसकी आलोचना की गई जिसका बीकानेर नरेश गंगासिंह ने जोरदार समर्थन किया। वस्तुतः राजस्थान के राजाओं को यह आभास ही नहीं हुआ कि भारतीय राजनीतिक ढाँचे में शक्ति संतुलन अंग्रेजों के हाथ से निकलकर भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में पहुँच रहा था अतः अपने घटते महत्त्व को सुरक्षित रखने के लिए ये नरेश अपने आपको लगातार राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध प्रस्तुत करते रहे और ब्रिटिश सत्ता इनका उपयोग जनजागृति तथा राष्ट्रवाद को दबाने के लिए करती रही।<sup>12</sup>

व्यापक होते आन्दोलन से ब्रिटिश सत्ता व्यग्र थी अतः इसके विरुद्ध वह रियासती नरेशों के हाथ मजबूत करना चाहती थी। इसी उद्देश्य से भारतीय राज्य अधिनियम (भारतीय नरेश सुरक्षा एक्ट) 1922 पारित किया गया। इस एक्ट द्वारा किसी पुस्तक, समाचार पत्र अथवा अन्य दस्तावेज में राजा अथवा उसके प्रशासन की आलोचना को उसके प्रति घृणा, मानहानि तथा देशद्रोह की संज्ञा देकर ऐसा करना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। इस प्रतिक्रियावादी कदम की भारतीय ही नहीं, ब्रिटिश बुद्धिजीवियों ने भी आलोचना की।<sup>13</sup> उल्लेखनीय है कि रियासतों में न तो समाचार पत्रों का अस्तित्व था और ना ही अभिव्यक्ति की आजादी। रियासती प्रजा के पास अपनी शिकायतें दर्ज कराने का एकमात्र माध्यम ब्रिटिश भारत के समाचार पत्र थे लेकिन इस एक्ट द्वारा यह विकल्प भी छीन लिया गया। इस प्रकार के कानूनों की आड़ में राजस्थान के राजाओं ने आन्दोलनकारियों के प्रति कठोर नीति अपनाई जिससे राजस्थान में राजनीतिक जागृति का प्रवाह कई वर्षों के लिए सर्वथा रूक गया।<sup>14</sup>

रियासती शासकों के आग्रह पर दिसम्बर 1927 में बटलर समिति नियुक्त की गई। इस समिति का मुख्य कार्य रियासती राज्यों के साथ ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक-आर्थिक संबंधों का मूल्यांकन करना था। ब्रिटेन के प्रसिद्ध वकील लेसली स्कॉट के माध्यम से राजाओं ने समिति के समक्ष अपना पक्ष रखा लेकिन समिति द्वारा प्रस्तुत यथास्थिति संबंधी प्रस्तावों के कारण रियासती राजाओं को निराश होना पड़ा। 1928

में आए साइमन आयोग ने बटलर समिति के दृष्टिकोण का अनुसरण किया। साइमन आयोग ने ब्रिटिश प्रान्तों व रियासती रियासतों को मिलाकर भारतीय संघ बनाने का प्रस्ताव रखा था। 1930 में भारत की भावी संवैधानिक व्यवस्था पर विचार करने के लिए लन्दन में गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया जिसमें 16 रियासती राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसमें राजस्थान के अलवर, बीकानेर तथा धौलपुर के शासकों ने भाग लिया और रियासती नरेशों की ओर से महाराजा गंगासिंह ने रियासती रियासतों के भारतीय संघ में शामिल होने का आश्वासन भी दिया किन्तु '1935 के संविधान द्वारा जब संघीय व्यवस्था को लागू करने का अवसर आया तो नरेशों को अपनी प्रतिष्ठा और सत्ता को लेकर शंका होने लगी। राजाओं द्वारा आवश्यक संख्या में इस योजना को स्वीकार न करने के कारण संघीय प्रावधान लागू नहीं हो पाए और 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरु होने के साथ ही इसके क्रियान्वयन का प्रश्न ही समाप्त हो गया।'<sup>15</sup>

इस प्रकार 1920 से 1939 के मध्य सर्वोच्च सत्ता तथा रियासती राज्यों के बीच नरेन्द्रमण्डल, बटलर समिति, साइमन आयोग गोलमेज सम्मेलन और 1935 का अधिनियम आदि मसले और व्यवस्थायें छापी रहीं लेकिन इस सब में रियासती रियासतों की प्रजा पर किसी का ध्यान नहीं गया। अपनी सत्ता के मद में चूर शासक अब भी इस बात पर अड़े थे कि अपनी प्रजा के अंतिम भाग्य विधाता वे ही हैं और इस बात के भी सर्वोच्च निर्णायक वे ही हैं कि उनकी प्रजा को कैसी सरकार चाहिए। दूसरी ओर, ब्रिटिश सत्ता भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष को रोकने के लिए इन राजाओं को प्रभावशाली अवरोध के रूप में काम में लेना चाहती थीं<sup>16</sup> अतः ऐसी विकट स्थिति में रियासती प्रजा की चेतना तथा आजादी के लिए संघर्ष एक बड़ी चुनौती थी, जिसे उसने स्वयं स्वीकार किया और अन्ततः आजादी के संघर्ष में ब्रिटिश भारत का अनुसरण करने की ओर अग्रसर हुई।

### कांग्रेस, गाँधी और राजनीतिक परिवर्तन

रियासती प्रजा आरम्भ से ही शासकों को अपना स्वाभाविक नेता मानती थी लेकिन इन शासकों को बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रवों से सुरक्षा का परमसत्ता से आश्वासन मिलने के बाद इनकी सोच में बदलाव आया। सत्ता तथा सुरक्षा के मद में उन्होंने कल्याण एवं प्रशासनिक सुधारों की उपेक्षा शुरु कर दी। ये शासक अपने कुशासन की आलोचना अथवा विरोध को सहन नहीं कर सकते थे। ऐसे शासन में प्रेस

अथवा व्यक्तिगत आजादी का प्रश्न ही नहीं उठता था। 1920 से पहले राजस्थान में यदि क्रान्तिकारी गतिविधियों की हलचल हुई भी, तो ब्रिटिश सत्ता के सहयोग से शासकों ने उसे कुचल दिया। रियासतों में तिहरी दमनकारी शक्तियों की सत्ता के कारण वहाँ दमन के विरुद्ध संगठित विरोध का विकास संभव नहीं था। दूसरी ओर, ब्रिटिश भारत में कांग्रेस राष्ट्रव्यापी स्वरूप ग्रहण कर रही थी और 1920 में जब कांग्रेस की बागडोर गांधी के हाथ में आई तो उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन का कायापलट करते हुए उसे वर्ग आधारित आन्दोलन से जन आन्दोलन में रूपान्तरित कर दिया।<sup>17</sup> प्रथम विश्व युद्ध के प्रभावों तथा कांग्रेस के आन्दोलन से रियासतों में भी जन जागृति फैल रही थी लेकिन उसे नेतृत्व तथा सहयोग प्रदान करने के लिए कांग्रेस जैसे संगठन की आवश्यकता थी अतः रियासतों में होने वाले परिवर्तनों को उनके प्रति कांग्रेस के दृष्टिकोण और भूमिका के संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

‘दरअसल, गाँधी युग से पहले राजाओं के प्रति कांग्रेस का रुख प्रशंसा और सम्मानपूर्ण समर्थन का था। रियासती जनता में जागृति नहीं के बराबर थी और शासकों से अलग प्रजा की कोई सत्ता नहीं समझी जाती थी। रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीति में पहला महत्त्वपूर्ण बदलाव उसके 1920 के नागपुर अधिवेशन में आया, जब संगठन की दृष्टि से देश को इक्कीस कांग्रेस प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया तथा रियासतों को समीपवर्ती प्रान्तों में मिलाया गया। रियासत के लोग भी जिला कांग्रेस समितियों के सदस्य बन सकते थे और वहाँ से वे कांग्रेस सदस्य और प्रतिनिधि के रूप में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में भी जा सकते थे। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि रियासती जनता को कांग्रेस के क्रियाकलापों में शामिल करने का अर्थ कांग्रेस द्वारा रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं है।'<sup>18</sup> कांग्रेस की इस नीति के कारण उस पर रियासती जनता की समस्याओं के प्रति अरुचि और उदासीन होने का आरोप लगाया गया है।<sup>19</sup> लेकिन पट्टाभिषीतारमैया के अनुसार, यदि कांग्रेस ने अपनी प्रान्तीय समितियों को विभिन्न भारतीय राज्यों में संघर्ष करने दिया होता तो राज्य सरकारों और कांग्रेस समितियों में संघर्ष आरंभ हो जाता जिसमें कांग्रेस की सम्पूर्ण शक्ति लग जाती और वह इन राज्यों की सनक के जाल में फँस जाती<sup>20</sup> अतः व्यवहारिक दृष्टि से कांग्रेस के लिए यह संभव न था।

राज्यों के प्रति अहस्तक्षेप की कांग्रेस नीति में 1928 में महत्वपूर्ण परिवर्तन के साथ नये अध्याय की शुरुआत हुई जब कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में अहस्तक्षेप संबंधी धारा निकाल दी गई। एक प्रस्ताव पारित कर भारतीय शासकों से उत्तरदायी शासन की स्थापना का अनुरोध किया गया तथा इस दिशा में प्रजा द्वारा किए जा रहे प्रयासों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसके वैध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले संघर्ष में सहायता का आश्वासन दिया गया। इसके बाद कांग्रेस ने क्रमशः 1929 के लाहौर अधिवेशन, 1931 के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन, 1934 के बम्बई अधिवेशन, 1935 के जबलपुर तथा मद्रास अधिवेशन में रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग को दोहराया।

1937 में हुए प्रान्तीय चुनावों ने पुनः रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीति को प्रभावित किया। इन चुनावों में कांग्रेस को 11 में से आठ प्रान्तों में सरकार बनाने का अवसर मिला जिसने जनसहभागिता के प्रति कांग्रेस के उत्साह को बहुत ऊँचा उठा दिया। इन चुनावों से प्रान्तीय स्वायत्तता का व्यावहारिक रूप सामने आया जिससे कांग्रेस तथा रियासतों में परिवर्तन की नई लहर पैदा हुई। इसी के परिणामस्वरूप फरवरी 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में भारतीय राज्यों के संबंध में विस्तृत प्रस्ताव पारित किया गया कि कांग्रेस रियासतों में भी वैसी ही राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता चाहती है जैसी शेष भारत में। रियासतें भारत का अविभाज्य अंग हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता। कांग्रेस का पूर्ण स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य भारत के लिए है जिसमें रियासतें भी शामिल हैं।<sup>21</sup>

उपरोक्त प्रस्ताव में कांग्रेस ने अपने निर्धारित लक्ष्य के लिए कार्य करना अपना कार्यक्षेत्र तो मान लिया लेकिन राज्यों में संघर्ष संचालन में अपनी असमर्थता को भी स्पष्ट कर दिया। कांग्रेस की इस नीति से राजस्थान के नेता भी सहमत थे कि कांग्रेस द्वारा रियासती मामलों में प्रत्यक्ष भाग लेने से ब्रिटिश सरकार को अहस्तक्षेप का बहाना मिलता और राजाओं के रूप में कांग्रेस की एक और बलशाली वर्ग से शत्रुता हो जाती। स्थानीय प्रजा की शक्ति पर आधारित आन्दोलन ही अधिक मजबूत तथा आत्मविश्वास से भरा हुआ हो सकता था।<sup>22</sup> इस प्रकार राज्यों में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष का दायित्व स्थानीय संगठनों को सौंप दिया गया।

1920 से रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीति का

निर्धारण गाँधी के मार्गदर्शन में हुआ था अतः आरम्भ में अहस्तक्षेप और कालान्तर में उसमें परिवर्तन की नीति के औचित्य को सिद्ध करते हुए गाँधी ने स्पष्ट किया कि 'जनजागृति के अभाव में कांग्रेस द्वारा रियासतों के प्रति अपनाई गई अहस्तक्षेप की नीति पूर्णतः विवेक सम्मत थी लेकिन दीर्घकालीन दमन के विरुद्ध लोगों में आई चहुँमुखी जागृति और दृढ़ता की स्थिति में अहस्तक्षेप की नीति का पालन कायरता होगी।'<sup>23</sup> रामनारायण चौधरी ने कांग्रेस के प्रस्ताव से आये परिवर्तन का वर्णन करते हुए लिखा है- कांग्रेस के हरिपुरा प्रस्ताव से राजस्थान ही नहीं, देश भर की रियासती जनता में अभूतपूर्व जागृति आई। जहाँ प्रजा का कोई संगठन नहीं था वहाँ कायम हो गया और जहाँ था, उसमें नई जान आ गई। देखते ही देखते प्रजामंडलों का ताँता सा बँध गया। कांग्रेस के बड़े बड़े नेता जो अब तक रियासती संगठन से उदासीन थे, उसके कर्णधार हो गए। पंडित जवाहरलाल नेहरू अखिल भारतीय प्रजा परिषद् के अध्यक्ष थे और डॉ. पट्टाभि सीतारमैया उपाध्यक्ष। सेठ जमनालाल बजाज ने जयपुर प्रजामंडल का सभापतित्व ग्रहण किया। राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, अलवर आदि में प्रजामंडल पहले से ही थे, अब मेवाड़, भरतपुर, कोटा, बूँदी, भाहपुरा, सिरोही, करौली, बीकानेर, किशनगढ़ आदि में भी ये संस्थायें खड़ी हो गईं और न्यूनाधिक जोर पकड़ गईं।<sup>24</sup> इसी दौर में मार्च 1939 में कांग्रेस के पुनर्निर्वाचित अध्यक्ष सुभाष चन्द्रबोस ने त्रिपुरी अधिवेशन में रियासतों में आई अभूतपूर्व जागृति की प्रशंसा करते हुए कांग्रेस को प्रजा के और निकट जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

इस प्रकार हरिपुरा कांग्रेस के बाद राजस्थान में जनजागृति जनआन्दोलन में बदल गई जिसने शासकों के दमन के बावजूद पहले उत्तरदायी शासन और बाद में इसी आधार पर राजस्थान के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि गाँधी ने रियासतों में कांग्रेस की अहस्तक्षेप की नीति का नेतृत्व किया लेकिन उनके विचारों तथा कार्यशैली की प्रेरणा से राजस्थान में कई संस्थाओं ने रचनात्मक कार्य द्वारा परिवर्तन की शक्तियों को बल प्रदान किया।

### अन्य संस्थाओं तथा समाचार पत्रों की भूमिका

प्रथम विश्व युद्ध के बाद आए बदलावों तथा गाँधी के नवीन जन आन्दोलन का राजस्थान पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। शासकों के दमनकारी शासन के बावजूद छोटे-छोटे प्रयासों से प्रजा में जागृति लाने के प्रयास किए गए। राजस्थान में सेवा समितियों,

हितकारिणी सभाओं, रात्रि विद्यालयों, वाचनालयों के माध्यम से कार्य की शुरुआत की गई। सामाजिक सुधार के माध्यम से परिवर्तन लाने की कोशिश की गई लेकिन शासकों ने इन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। ऐसी स्थिति में रियासती नेताओं ने रियासतों से बाहर, ब्रिटिश भारत में ऐसी संस्थाओं तथा पत्रकारिता की स्थापना की जो वहीं से जागृति का काम कर सके। यही कारण है कि अजमेर, बम्बई, दिल्ली, लाहौर, मद्रास पूना आदि से प्रशासनिक स्वेच्छाचारिता तथा शासकों की फिजूल खर्ची को खुली आलोचना की जाती थी। राजस्थान का अजमेर ब्रिटिश भारत का भाग होने के कारण वह इसकी जनजागृति का केन्द्र बना। अध्ययन काल में निम्न संस्थाओं और समाचार पत्रों ने राजनीतिक आर्थिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

### राजपूताना मध्यभारत सभा

जब कांग्रेस रियासती मामलों में हस्तक्षेप के विषय पर विचार विमर्श कर रही थी तब कुछ उत्साही रियासती कार्यकर्ता 1918 में कांग्रेस के दिल्ली वार्षिक अधिवेशन में मिले और उन्होंने अपनी एक संस्था स्थापित करने का निर्णय लिया जिसे राजपूताना मध्यभारत सभा का नाम दिया गया। इसके संस्थापकों में सीकर के जमनालाल बजाज, जबलपुर के गोविन्ददास, ग्वालियर के गणेश शंकर विद्यार्थी, अजमेर के चाँदकरण शारदा, जयपुर के अर्जुनलाल सेठी, नरसिंह देव तथा कोटा के केसरीसिंह बारहट आदि प्रमुख थे। इसका प्रथम अधिवेशन 29 दिसम्बर 1918 को मारवाड़ी पुस्तकालय चाँदनी चौक, दिल्ली में हुआ जिसकी अध्यक्षता जमनालाल बजाज ने की। इस संस्था का मुख्यालय अजमेर में स्थापित किया गया। इस सभा के निम्न घोषित उद्देश्य थे—<sup>25</sup>

1. रियासती प्रजा में जागृति पैदा करना तथा जयपुर तथा बीकानेर राज्यों में सेवा समितियों का गठन करना।
2. नागपुर, दिल्ली, अहमदाबाद आदि ऐसे स्थानों पर सभा के सम्मेलन आयोजित करना जहाँ राजस्थानी रहते हैं ताकि उनसे सहयोग लिया जा सके।
3. सामन्ती दमन के विरुद्ध सिरोही, बूँदी तथा अन्य क्षेत्रों में भीलों की मदद करना।
4. अछूतों के लिए विद्यालयों की स्थापना करना।
5. सामन्ती अत्याचारों के विरुद्ध बिसाऊ,

पीसांगन तथा खेतड़ी में कृषक सत्याग्रह को मार्गदर्शन प्रदान करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सभा ने उल्लेखनीय कार्य किया। गोविन्दलाल पीती की अध्यक्षता में अहमदाबाद में हुए अपने अंतिम अधिवेशन की रिपोर्ट में सभा ने अपनी निम्न उपलब्धियों का उल्लेख किया है—<sup>26</sup>— खेतड़ी आन्दोलन, जयपुर में भूमिया आन्दोलन, सिरोही तथा बूँदी के आन्दोलन तथा पीसांगन बिसाऊ तथा बिजोलिया के कृषक आन्दोलन। वस्तुतः ‘राजपूताना मध्य भारत सभा रियासती राज्यों की प्रजा की राजनैतिक सेवा का उद्देश्य रखने वाली पहली संस्था थी।’<sup>27</sup>

यह संस्था केवल रियासती आन्दोलन तक सीमित नहीं थी। इसने राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जुड़ने तथा उसका ध्यान रियासती दमन के विविध रूपों की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। इसी कड़ी में 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के साथ सभा का अधिवेशन बुलाया गया और एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसमें सामन्ती राजतंत्र की फिजूलखर्ची, जनता के प्रति उदासीनता, निर्दयी दण्डव्यवस्था, अन्याय का बोलबाला, किसानों की गरीबी का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया था।<sup>28</sup> इस प्रकार इस सभा ने राजस्थान में जनजागृति की नींव रखी और राजस्थान तथा अन्य रियासतों में चिरनिद्रा में सोये लोगों को जगाया और प्रजा परिषद् की पूर्वभूमिका का निर्माण किया।<sup>29</sup> यद्यपि यह संस्था अल्पकालीन थी लेकिन जागृति के आरंभिक काल में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण थी।

### गाँधीवादी संस्थाओं का योगदान

1920 से गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन ने देश की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को दूसरी ओर मोड़ दिया। राजस्थान में भी इसका असर हुआ। यद्यपि गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने राजनीतिक रूप से रियासतों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति अपनाई थी लेकिन रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से राजस्थान में गाँधीवादी विचारधारा सक्रिय रही। रचनात्मक कार्य में खादी का प्रचार, नशा मुक्ति, शिक्षा का प्रसार, छुआछूत तथा कुरीतियों का निवारण आदि शामिल थे, लेकिन रचनात्मक कार्य केवल समाज सुधार का कार्य न होकर राष्ट्रनिर्माण का कार्य था। इस कार्य से उत्पन्न तेज तथा अदम्य शक्ति से होने वाले राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण<sup>30</sup> ने राजस्थान में जनजागृति का अलख जगाया। गाँधी के विचारों तथा संस्थाओं से प्रेरणा पाकर राजस्थान में विजयसिंह पथिक, जमनालाल

बजाज, रामनारायण चौधरी, हरिभाऊ किंकर आदि सैंकड़ों कार्यकर्ताओं ने रचनात्मक कार्य शुरू किया जिसका अंतिम ध्येय राष्ट्र निर्माण में राजस्थान को सम्मिलित करना था। इस दृष्टि से निम्न संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही-

विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी तथा हरिभाई किंकर के प्रयासों से 1919 में वर्धा में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की गई। 1920 में इसका कार्यालय अजमेर हस्तान्तरित कर दिया गया। इसका आरंभिक लक्ष्य रियासती जनता की शिकायतों को दूर करना तथा जमींदारों एवं जनता में मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना था। 'इसके सदस्य आजीवन सेवा का व्रत लेते थे। इसकी सदस्यता का नियम था कि इसके सदस्य की कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होगी। संघ की ओर से निर्वाह व्यय के रूप में एक व्यक्ति के लिए 15 रु. मासिक और गृहस्थ के लिए 30 रु. मासिक नियत किया गया था। विजयसिंह पथिक के अलावा शोभालाल गुप्त, माणिक्यलाल वर्मा, लादूराम जोशी, प्रेमचन्द भील, मोड़सिंह, नयनूराम भार्मा आदि इसके प्रमुख कार्यकर्ता थे। संघ ने राजस्थान में बेगार के विरुद्ध प्रभावी आन्दोलन चलाया। सिरोही, मेवाड़, अलवर, बूँदी आदि राज्यों में हुए जन आन्दोलनों का नेतृत्व किया।<sup>31</sup> संघ ने साप्ताहिक पत्रों के प्रकाशन से चेतना जागृत की जिसकी यस्थास्थान चर्चा की जाएगी। इस संघ की शाखाएँ बूँदी, जयपुर, जोधपुर, सीकर, खेतड़ी, कोटा आदि स्थानों पर खोली गई थी। आगे चलकर 1928 तक आते आते संघ के संस्थापक विजयसिंह पथिक और उनके प्रमुख कार्यकर्ता रामनारायण चौधरी में मतभेद हो जाने के कारण यह संस्था निर्जीव हो गई।

जब 1932 में गाँधी के निर्देशन में हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुयी तो राजपूताना शाखा की स्थापना के लिए टक्कर बापा अजमेर आए। संघ के अध्यक्ष घनश्यामदास बिड़ला ने यहाँ हरबिलास शास्त्रा को अध्यक्ष तथा रामनारायण चौधरी को मंत्री नियुक्त किया। 'राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक कट्टरता के गढ़ राजस्थान में हरिजन सेवा का कार्य बहुत कठिन था, उस पर निरंकुश सत्ताएँ जनजागृति के हर कार्य को संदेह से देखती थी। राजस्थान शाखा के लिए रामनारायण चौधरी ने नियम बनाया कि इसके वैतनिक सदस्य न सत्याग्रह में भाग लेंगे और ना ही राजनीति से कोई संबंध रखेंगे। इसके प्रचार हेतु चौधरी ने नरेशों की पूर्वानुमति से सारे राजस्थान का दौरा किया और साल भर में चन्द्रभानु, शोभालाल रामनारायणसिंह

भाटी, अयोध्या प्रसाद जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओं के प्रयास से प्रान्त में हरिजन सेवक समितियों का जाल बिछ गया। अपने उत्कर्ष काल में संघ की पाठशालाओं की संख्या सवा सौ और विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार के आसपास पहुँच गई। हजारों हरिजनों ने शराब पीना छोड़ दिया था, मुर्दा पशुओं का माँस न खाने की प्रतिज्ञाएँ ले ली थीं और अनेक जलाशय उसके लिए बने और बनाये गए।<sup>32</sup>

हरिजन सेवा तथा जनजागृति के इस कार्य के लिए योग्य तथा निष्ठावान कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए 1934 में अजमेर से सात मील दूर नरेली गाँव में प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया। छः महीने के इस प्रशिक्षण के दौरान शिक्षक अथवा कार्यकर्ता को खादी पहनने, सूत कातने, गाँधी साहित्य का अध्ययन करने, मलमूत्र साफ करने, झाड़ू लगाने, भोजन बनाने आदि का अभ्यास करते थे। 'हरिजन सेवक संघ के इतिहास में इस प्रकार का पहला प्रशिक्षण केन्द्र राजपूताना शाखा ने ही खोला था और उसी ने सर्व प्रथम हरिजनों से भी अधिक दरिद्र भीलों की सेवा का आयोजन किया। यहाँ से प्रशिक्षण पाकर निकले लोग आगे चलकर हरिजन सेवा, खादी या प्रजामण्डल संबंधी कार्यों में सक्रिय रहे।'<sup>33</sup>

इसी प्रकार आदिवासियों में जनजागृति के लिए बागड़ क्षेत्र (बाँसवाड़ा, डूंगरपुर) में काम कर रहे भोगीलाल पाण्ड्या तथा लक्ष्मणदास के काम को आगे बढ़ाते हुए 1934 में खड़लाई आश्रम की स्थापना में माणिक्यलाल वर्मा ने पहल की। इस आश्रम के कार्यकर्ताओं ने घूम घूम कर भीलों को शराब न पीने, स्वच्छ रहने, कुरीतियों को मिटाने तथा महाजनों से कर्ज लेने पर होने वाली हानि से अवगत कराया। इन्होंने भीलों के बच्चों को पढ़ाया और इस प्रकार के कार्य बागड़ क्षेत्र में लम्बे समय तक चलते रहे। गाँधीवादी विचारधारा से प्रेरित होकर किए गए उपरोक्त तमाम कार्यों ने राजस्थान के जन साधारण को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में शामिल होने का अवसर प्रदान किया।

### देशी राज्य प्रजा परिषद्

कांग्रेस द्वारा रियासती प्रजा के प्रति पूर्ण सहानुभूति के बावजूद अहस्तक्षेप की नीति अपनाने के कारण राजस्थान ही नहीं, सारे देश की रियासतों में एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। यद्यपि इसका विचार 1922 में उत्पन्न हुआ था लेकिन 1927 में घटित कुछ घटनाओं से

(बटलर समिति तथा साइमन आयोग) यह अतिआवश्यक हो गया कि रियासती जनता की माँगों को प्रस्तुत करने के लिए कोई संस्था हो। रियासती कार्यकर्ताओं के प्रयास से अन्ततः दिसम्बर 1927 में अखिल भारतीय रियासती राज्य प्रजापरिषद् की स्थापना बम्बई में हुयी और राजस्थान की राजनीतिक जागृति के जनक विजयसिंह पथिक इस संस्था के उपाध्यक्ष चुने गए। 'इस परिषद् की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था- उचित और शान्तिपूर्ण उपायों से रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना। बम्बई में हुए इसके प्रथम अधिवेशन में ही यह माँग की गई कि भारत में प्रान्तों व रियासती राज्यों का एक संघ बनाया जाए और संघ की राज्य परिषद् में रियासती प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि लिए जाएँ।'<sup>34</sup> अपनी स्थापना से लेकर राजस्थान के देश में विलय तक परिषद् ने सदैव शाही दमन व निरंकुशता के विरुद्ध उत्तरदायी शासन के लिए प्रयास किया। शासक तथा अंग्रेज इसे कांग्रेस की ही रियासती शाखा समझते थे अतः राजाओं द्वारा इसे स्थापना के साथ ही बहिष्कृत घोषित कर दिया गया जिसके कारण इसे अपने समस्त अधिवेशन रियासतों से बाहर करने पड़े।

प्रजा परिषद् की 75 सदस्यों की निर्वाचित कार्यकारिणी में निम्न सात सदस्य राजस्थान के थे- नयनूराम भार्मा कोटा, शंकरलाल वर्मा अजमेर, जयनारायण व्यास जोधपुर, कन्हैयालाल कलयन्त्री फलौदी, त्रिलोकचन्द्र माथुर करौली, रामदेव पोद्दार एवं बालकिशन पोद्दार (बीकानेर) थे। रामनारायण चौधरी को राजस्थान और मध्य भारत के लिए प्रान्तीय सचिव बनाया गया था। 1927 के बम्बई अधिवेशन से लौटे इन नेताओं में बहुत उत्साह था वे एक ऐसी संस्था का निर्माण करना चाहते थे जो सारे राजस्थान की रियासतों के बीच राजनीतिक गतिविधियों में समन्वय बैठ सकें। इसी उद्देश्य से भारत राज्य प्रजा परिषद् की शाखा के रूप में पथिक, आर.एन. चौधरी, बारहट, राठी आदि के प्रयासों से नवम्बर 1928 में अजमेर में 'राजपूताना रियासती राज्य परिषद्' की स्थापना की गई।<sup>35</sup>

अजमेर की शाखा के परिणामों और प्रभाव को देखते हुए जयनारायण व्यास ने जोधपुर में भी इस प्रकार की शाखा की स्थापना एवं अक्टूबर 1929 में इसके अधिवेशन की तैयारियाँ कर ली लेकिन राज्य की दमनात्मक नीति के कारण यह संभव न हो सका और व्यास को गिरफ्तार कर लिया गया, फिर भी उनका साहस कम नहीं हुआ और जेल से मुक्त होने के बाद उन्होंने 24-25 नवम्बर 1931 को पुष्कर में इसका

अधिवेशन बुलाया, जहाँ जोधपुर के दमनकारी रवैये की कड़ी निंदा की गई। इसमें राज्यों में नागरिक स्वतंत्रता संबंधी कई प्रस्ताव पारित किए गए। इन गतिविधियों से प्रभावित होकर सिरौही प्रजा परिषद् की बम्बई में तथा बीकानेर प्रजा परिषद् की कलकत्ता में शाखा आरंभ हुई।

इस प्रकार भारत प्रजा परिषद् तथा उसकी शाखाओं के प्रयासों से प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस संस्था के राजस्थान के सदस्य कांग्रेस के अधिवेशनों में नेताओं से मिले जिससे राष्ट्रीय नेतृत्व राजस्थान की समस्याओं के नजदीकी सम्पर्क में आया। 'प्रजा परिषद् की गतिविधियों से प्रेरणा प्राप्त कर राजस्थान में इसके कार्यकर्ताओं ने विभिन्न रियासतों में प्रजा परिषद् अथवा प्रजामण्डल की स्थापना की जिन्होंने दमन के बावजूद उत्तरदायी शासन के लिए सफलता प्राप्ति तक संघर्ष किया।'<sup>36</sup>

अखिल भारतीय स्तर के इस रियासती संगठन के अलावा राजस्थान के विभिन्न राज्यों में स्थानीय स्तर पर मारवाड़ हितकारिणी सभा, मारवाड़ यूथ लीग, सर्वहितकारिणी सभा, चुरु प्रजा प्रतिनिधि सभा, कोटा आदि संस्थाओं ने भी राजस्थान को राष्ट्रीय जागृति के साथ एकाकार करने में योगदान दिया।

### परिवर्तनकालीन पत्रकारिता (1920-1939)

1920 से पहले राजस्थान में प्रेस का विकास नगण्य था। 19 वीं सदी के आखिर में मारवाड़ गजट, राजपूताना हेराल्ड, राजपूताना गजट, राजपूताना टाइम्स, राजस्थान समाचार और राजस्थान पत्रिका जैसे साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ किन्तु जनजागृति की दृष्टि से इनका प्रभाव नगण्य था। 1920 में ब्रिटिश भारत के जनआन्दोलन के प्रभाव से जब राजस्थान में जनजागृति संबंधी गतिविधियाँ बढ़ने लगी तो उसके साथ ही यहाँ पत्रकारिता का भी विकास हुआ। दरअसल, इस दौर में जिन लोगों के हाथ में राजनीति की बागडोर थी उन्होंने ही पत्रकारिता का संचालन भी किया जिससे जनआन्दोलन और पत्रकारिता के परस्पर विकास और सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त हुआ। राजस्थान की रियासतों में, 'जहाँ प्रेस पूर्ण से सरकारी नियंत्रण में हो, जहाँ प्रेस का अर्थ शाही के निमंत्रण, धार्मिक पुस्तकों और राजपुरुषों के प्रशस्ति पत्रों की छपाई हो, जहाँ लोग प्लेग और हैजे से ज्यादा गाँधी टोपी और खद्दर पहन कर आए मेहमान से डरते हो'<sup>37</sup> वहाँ जनवादी पत्रकारिता अदम्य साहस का ही काम हो सकता था।

राजस्थान के राज्यों में अभिव्यक्ति और प्रकाशन पर प्रतिबन्ध था अतः कार्यकर्ताओं द्वारा ब्रिटिश भारत में जाकर यहाँ की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया जाता था। लेकिन उपनिवेशवादी सत्ता तथा शासकों के मध्य साँठ गाँठ के कारण ब्रिटिश सरकार ने समय समय पर कानून पारित कर राजाओं की निरंकुशता एवं अत्याचारों को संरक्षण दिया। 1922 में पारित इसी प्रकार के 'राज्य संरक्षण एक्ट' का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। जनआन्दोलनों और पत्रकारिता को कठिन संघर्ष और दमन के दौर से गुजरना पड़ा लेकिन इसी ने राजस्थान में पहले उत्तरदायी शासन और बाद में लोकतंत्रीय भारत के साथ उसके मिलन का मार्ग प्रशस्त किया।

1919 में स्थापित राजस्थान सेवा संघ ने जब सिरोही, मेवाड़, अलवर, बूँदी आदि राज्यों में जन आन्दोलन का नेतृत्व किया तो विजयसिंह पथिक ने 1920 में पहले वर्धा और फिर अजमेर से 'राजस्थान केसरी' का सम्पादन किया। इस कार्य में रामनारायण चौधरी, ईश्वरदान, हरिभाई किंकर एवं कन्हैयालाल कलत्रा ने सहयोग किया तथा जमनालाल बजाज ने आर्थिक मदद की। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य राजस्थान की रियासतों के आन्दोलन का व्यापक रूप से प्रचार प्रसार करना था। राजस्थान की जनता का यह पहला मुख पत्र था। इसने शीघ्र ही न केवल अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की बल्कि यह राजस्थान की जनता के प्रचार का प्रमुख और सशक्त माध्यम बन गया।<sup>39</sup>

केसरी के दो भाग थे- एक भाग में रियासती राज्यों की समस्याओं और दूसरे में ब्रिटिश भारत के आन्दोलनों की चर्चा होती थी। इसमें पथिक के अग्रलेख और सम्पादकीय बड़े गंभीर, सारगर्भित और पठनीय होते थे। थोड़े ही समय में 'राजस्थान केसरी' कार्यालय राजनैतिक जीवन का मुख्य केन्द्र बन गया परन्तु पथिक के क्रान्तिकारी विचारों और ओजपूर्ण लेखनी के साथ जमनालाल बजाज का तालमेल न बैठ सका और दोनों के बीच मतभेदों के कारण पथिक ने अपने को अलग कर लिया परिणाम स्वरूप यह पत्र विस्मृति के गर्भ में चला गया।

केसरी के बन्द हो जाने के बाद 1922 में अजमेर से 'नवीन राजस्थान' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसने बिजौलिया के किसान आन्दोलन, उसके प्रमुख सूत्रधार पथिक की भूमिका और गिरफ्तारी, उनके विरुद्ध चले मुकदमे और कठोर दण्ड को प्रमुखता से छापकर राजस्थान में जनजागृति की लहर पैदा कर दी। 'बेगार' विरोधी आन्दोलन, मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में

भील व मीणा विद्रोह और उसके दमन का व्यापक प्रचार करने के कारण मेवाड़ में राजस्थान केसरी, प्रताप तथा नवीन राजस्थान के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया और राजकीय गजट में घोषणा की गई कि इन पत्रों को पढ़ना, रखना अथवा उसकी पूर्ण या आंशिक सामग्री का प्रचार प्रसार करना संज्ञेय अपराध माना जाएगा।<sup>39</sup>

उपरोक्त दमनात्मक कार्यों के बावजूद प्रजा अथवा कार्यकर्ताओं का उत्साह कम नहीं हुआ। 1923 में नवीन राजस्थान का प्रकाशन बन्द करना पड़ा लेकिन 'तरुण राजस्थान' के नाम से इसका प्रकाशन पुनः आरम्भ किया गया। इसने बूँदी के कृषक असंतोश, अलवर के नीमूचणा काण्ड तथा सीकर कृषक आन्दोलन का प्रबल समर्थन करते हुए सामन्ती अत्याचारों की आलोचना की अतः जयपुर, उदयपुर एवं बूँदी राज्यों ने इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस पत्र के सम्पादन में शोभालाल गुप्त, रामनारायण चौधरी, जयनारायण व्यास आदि की सक्रिय भूमिका रही। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप की एक ब्रिटिश विरोधी चिट्ठी तरुण राजस्थान में छापने के अपराध में सम्पादक शोभालाल गुप्त और रामनारायण चौधरी को राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तार कर सजा दी गई। चौधरी तीन माह में बरी हुए जबकि गुप्त को एक वर्ष का कठोर कारावास मिला।<sup>40</sup>

इस प्रकार बिजौलिया तथा अन्य कृषक आन्दोलनों द्वारा राजस्थान में राजनीतिक जनजागृति लाने और समूचे देश का ध्यान राजस्थान की प्रजा की समस्याओं की ओर आकर्षित करने में इन पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन्हीं पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय नेताओं- महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि का ध्यान रियासती प्रजा की समस्याओं का की ओर आकृष्ट हो सका। '1927-28 के बाद देश तथा राजस्थान में हुए बदलावों और सांस्कृतिक पुनर्जागरण को स्वर देने का कार्य 'त्याग भूमि' ने किया। इसका प्रकाशन अजमेर से हरिभाऊ उपाध्याय तथा क्षेमानन्द राहत ने किया। शासकीय अत्याचारों के विरोध के कारण मेवाड़ में उपाध्याय के प्रवेश पर रोक लगा दी गई। इसने जोधपुर में प्रजा परिषद् के सम्मेलन पर रोक की शाही कार्यवाही की भी आलोचना की तथा समाज सुधार के सवाल को भी उठाया।<sup>41</sup>

राजस्थान की जनजागृति में जो योगदान प्रान्त से प्रकाशित पत्रों का रहा, वैसा ही योगदान ब्रिटिश भारत के पत्रों का रहा। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय गणेशशंकर विद्यार्थी का कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप'

अखबार था। पथिक के आग्रह पर 'प्रताप' में बिजोलिया आन्दोलन पर एक स्थायी स्तम्भ छपने लगा जिसका सम्पादन स्वयं पथिक करते थे। इसके माध्यम से यहाँ की समस्या भारतीय समाचार पत्रों तक पहुँच गई परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार सतर्क हुयी और महाराणा को जाँच आयोग बैठाना पड़ा जिसने आन्दोलन के औचित्य को सिद्ध कर दिया। इसके अलावा गाँधी के 'नवजीवन', आगरा के 'सैनिक' तथा 'गणेश', अर्जुन, हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, अखंड भारत आदि ने रियासती प्रजा की समस्याओं को उजागर कर देश का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। राजस्थान तथा ब्रिटिश भारत की प्रेस के उपर्युक्त प्रयासों ने न केवल राजस्थान की जनता को संघर्ष में मनोबल एवं ऊर्जा प्रदान की बल्कि ब्रिटिश भारत और रियासती भारत को एक दूसरे के करीब लाने और परस्पर सम्बन्धनशील बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

### उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष तथा प्रजामण्डल आन्दोलन

1920 के बाद राजस्थान के राज्यों में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। रियासतों के प्रति कांग्रेस की अहस्तक्षेप की नीति के बावजूद ब्रिटिश भारत में कांग्रेस के आन्दोलन और गाँधी, नेहरू की प्रेरणा से राजस्थान में भी नागरिक अधिकारों और उत्तरदायी शासन की माँग जोर पकड़ने लगी थी। 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में जब कांग्रेस ने रियासती आन्दोलन को औचित्य और समर्थन प्रदान किया तो राजस्थान में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए प्रजामण्डल संस्थाओं और आन्दोलन की नयी व तेज लहर दौड़ गई। विभिन्न राज्यों में दमन के बावजूद किए गए संघर्ष का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—<sup>42</sup>

जोधपुर में राज्य की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध जयनारायण व्यास के नेतृत्व में 1925 से मारवाड़ी हितकारिणी सभा ने आन्दोलन शुरू किया। वायसराय को पत्र लिखकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग की गई तथा राज्य के प्रधानमंत्री सुखदेव प्रसाद के भ्रष्टाचार का विरोध किया गया। इसके लिए आम सभाएँ की गईं लेकिन राज्य की ओर से कोई ध्यान न दिये जाने पर व्यास ने जनता से भूराजस्व न देने की अपील भी की। 1929 में ऐसी ही आम सभा के आयोजन के अपराध में व्यास तथा उनके साथियों को गिरफ्तार कर कैद में रखा गया लेकिन 1931 में जब उनकी रिहाई हुई तो उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की गतिविधियों में भाग लेते हुए स्वदेशी का प्रचार

किया, विरियासती का बहिष्कार किया तथा राज्य में उत्तरदायी शासन की माँग की अतः उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया।

1932 में राज्य द्वारा मारवाड़ हितकारिणी सभा को अवैध घोषित कर दिया गया और जन आन्दोलन के दमन के लिए 1934 में विज्ञप्ति तथा अध्यादेश जारी किया गया। राज्य की दमनात्मक कार्यवाहियों के बावजूद आन्दोलन जारी रहा और 1934 में मारवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना की गई। 1936 में नेहरू का जोधपुर आगमन हुआ और इसी वर्ष प्रजामण्डल को भी गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। अब 'नागरिक अधिकार रक्षक सभा' का गठन किया गया जिसने शिक्षा भुल्क विरोधी छात्रों के आन्दोलन का भी नेतृत्व किया और राज्य में विधान सभा की स्थापना की माँग की। परिणामस्वरूप न केवल इसके सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया अपितु सभा को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। इस पर 1938 में मारवाड़ लोक परिषद् नामक नवीन संस्था की स्थापना की गई। व्यास इस समय निर्वासित थे जिन्हें फरवरी 1939 में राज्य में प्रवेश की स्वीकृति दे दी गई। इसके साथ ही वे उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष में पुनः सक्रिय हो गए।

जयपुर में महाराजा के निरंकुश शासन के विरुद्ध बढ़ रहे असन्तोष की पहली व्यापक अभिव्यक्ति 1 सितम्बर 1927 को हुयी जब हजारों लोगों ने भ्रष्टाचार तथा बढ़ाये गए करों के विरुद्ध आन्दोलन किया। इसमें पुलिस की गोली से एक व्यक्ति के मारे जाने के बाद आक्रोशित भीड़ ने भाहर कोतवाली को घेर लिया। स्थिति पर नियंत्रण के लिए ब्रिटिश फौज तैनात की गई लेकिन इसके बावजूद पुलिस गोलीकाण्ड की निंदा करते हुए उत्तरदायी शासन की माँग की गई। भाहर में अगले पाँच दिनों तक चली हड़ताल रेजीडेन्ट द्वारा जाँच का आश्वासन देने के बाद ही समाप्त हुयी। इसके बाद भी शासन का दमन चक्र जारी रहा और अप्रैल 1931 में मोतीलाल दिवस मनाने की स्वीकृति न देकर कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।

यद्यपि जयपुर में 1931 में ही प्रजामण्डल की स्थापना की गई थी लेकिन इसे 1937 में ही पुनर्जीवित किया जा सका। प्रजामण्डल ने नागरिक अधिकारों तथा उत्तरदायी शासन की माँग की लेकिन जब शासन ने कोई ध्यान नहीं दिया तो अपनी जनवादी माँगों को लेकर प्रजामण्डल ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने का निर्णय लिया। 'आन्दोलन के दमन के लिए

शान्ति भंग की आशंका जताते हुए जमनालाल बजाज के जयपुर प्रवेश पर रोक लगा दी गई और प्रजामण्डल को अवैध घोषित कर दिया गया।' राज्य की इन दमनात्मक कार्यवाहियों के विरोध में, बजाज के नेतृत्व में फरवरी 1939 में आन्दोलन आरम्भ किया गया, प्रशासन ने 500 कार्यकर्ताओं सहित बजाज को गिरफ्तार कर लिया लेकिन मार्च 1939 में प्रजामण्डल को कानूनी स्वीकृति के आश्वासन के बाद ही यह आन्दोलन समाप्त हुआ।

भरतपुर में 1924 से व्याप्त किसान असन्तोष को दूर करने के लिए सरकार ने दमन का सहारा लिया। इसके विरोध में सभाओं का आयोजन किया गया जिन्हें टैगोर, मालवीय एवं चाँदकरण शारदा जैसे लोगों ने सम्बोधित किया। लोगों की शिकायतें दूर करने के बजाय अंग्रेजों ने वहाँ के शासक किशनसिंह को 2 वर्ष के अवकाश पर भेज दिया। अब शासन की सारी शक्तियाँ ब्रिटिश दीवान मैकेन्जी के हाथों में आ गई। उसने 1929 में स्थापित प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया तथा राज्य में प्रदर्शन, भाषण, जुलूस आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके विरोध में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया गया। अन्ततः दिसम्बर 1939 में प्रजामण्डल को कानूनी मान्यता प्रदान करने पर आन्दोलन समाप्त हुआ।

राजस्थान में सबसे प्रभावशाली किसान आन्दोलन का गढ़ होते हुए भी मेवाड़ में 1938 से पहले कोई राजनीतिक संगठन नहीं था। माणिक्यलाल वर्मा डूंगरपुर के भीलों में रचनात्मक कार्य तक सीमित थे अतः हरिपुरा प्रस्ताव के बाद 1938 में मेवाड़ में प्रजामण्डल की स्थापना हुई जिसे राज्य ने अवैध घोषित कर माणिक्यलाल वर्मा को निश्कासित कर दिया। इन परिस्थितियों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया गया और प्रतिबन्ध के बावजूद सभाएँ की गईं। फरवरी 1939 में वर्मा ने राज्य की सीमा में प्रवेश किया जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ अन्य कार्यकर्ताओं को भी कारावास की सजाएँ हुयीं। अन्ततः गाँधी की राय से मार्च 1939 में सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

किसान तथा मेव समस्या के कारण अलवर में आन्दोलन और दमन का सिलसिला 1925 में ही शुरू हो गया था लेकिन उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन 1937 में शुरू हुआ और 1938 में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। अन्य राज्यों की तरह अलवर ने भी

दमन, गिरफ्तारी और कैद का सहारा लिया। हरिभाऊ उपाध्याय ने राज्य का दौरा किया लेकिन इसी बीच विश्व युद्ध छिड़ जाने के कारण राज्य का वातावरण ठन्डा हो गया।

कोटा में 1927 में ही प्रजामण्डल की स्थापना हो चुकी थी लेकिन यह संस्था कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सकी। पं. नयनूराम भार्मा इस क्षेत्र के सर्वाधिक सक्रिय कार्यकर्ता थे। इनकी आकस्मिक मृत्यु के बाद अभिन्न हरि ने प्रजामण्डल का नेतृत्व किया। बूँदी में भी शान्तिलाल की अध्यक्षता में प्रजामण्डल की स्थापना तथा उत्तरदायी शासन की माँग की गई लेकिन दमन के कारण यह संस्था सक्रिय न रह सकी। धौलपुर, करौली, बीकानेर आदि में चालीस के दशक में ही आन्दोलन गति पकड़ सका। जन जागृति की दृष्टि से राजस्थान के अजमेर मेरवाड़ा क्षेत्र की स्थिति भिन्न थी। यह ब्रिटिश भारत का हिस्सा होने के कारण न केवल कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन से सीधे जुड़ा रहा अपितु राज्यों की राजनीतिक एवं क्रान्तिकारी गतिविधियों का भी केन्द्र रहा। इसी पृष्ठभूमि में अजमेर राजस्थान की सर्वाधिक जागरूक और सक्रिय राजनीतिक धूरी बनकर उभरा।

इस प्रकार दोनों विश्व युद्धों के बीच में राजस्थान में राजनीतिक गतिविधियों के प्रति आमजन की उदासीनता को तोड़ने में उपरोक्त विभिन्न संस्थाओं और आन्दोलनों की निर्णायक भूमिका रही जिससे आगे चलकर राजस्थान देश की राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल होने के लिए तैयार हो सका।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एल.एस. रावैड़, पॉलिटिकल एंड कॉस्टीट्यूशनल डवलपमेन्ट इन राजस्थान, रिसर्च पब्लिशर्स, जोधपुर, 1986, पृ. 5
2. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 1991, पृ. 144
3. ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, तृतीय खण्ड, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1982, पृ. 480-81
4. एल.एस. रावैड़, द रीगल पैट्रियट महाराजा गंगासिंह ऑफ बीकानेर, रॉली बुक्स, नई दिल्ली, 2007, पृ. 52
5. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट, 1919, पृ. 30

6. पी.एस. चौधरी, राजस्थान बिटविन द टू वर्ल्ड वॉर्स, श्री राम मेहरा एंड कं., आगरा, 1968, पृ. 30
7. आर.पी. व्यास, आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995, पृ. 169
8. पी. मून, रिप्लेक्सन्स ऑन ब्रिटिश इंडिया, दुर्गा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1984, पृ. 74
9. के.एस. सक्सेना, पॉलिटिकल मूवमेन्ट्स एन्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस. चाँद एन्ड कं., नई दिल्ली, 1971, पृ. 145
10. पी.एस. चौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 37
11. उपरोक्त, पृ. 36
12. एम.एस. जैन, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1988 के अध्याय 12 पर आधारित
13. एल.एस. रावैड़, पॉलिटिकल एंड कॉस्टीट्यूशनल डवलपमेन्ट इन राजस्थान, रिसर्च पब्लिशर्स, जोधपुर, 1986, पृ. 41-43
14. रघुवीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1990, पृ. 197
15. ताराचन्द, पूर्वोक्त, खण्ड चार, 1984, पृ. 246
16. राजेन्द्र लाल हांडा, रियासती रियासतों में स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1969, पृ. 75-76
17. रजनी कोठारी, (एडी.), स्टेट एंड नेशन बिल्डिंग, अलाइड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1976, पृ. 196
18. राजेन्द्र लाल हांडा, पूर्वोक्त, पृ. 92-93
19. वी.डी. माथुर, स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1984, पृ. 53
20. पट्टाभि सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग द्वितीय, पद्मा पब्लिकेशन, बॉम्बे, 1947, पृ. 79
21. राजेन्द्र लाल हांडा, पूर्वोक्त, पृ. 100
22. रामनारायण चौधरी, बीसवीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, 1980, पृ. 176-77
23. वी.डी. माथुर, पूर्वोक्त, पृ. 57
24. रामनारायण चौधरी, पूर्वोक्त
25. राम पाण्डे, पीपुल्स मूवमेन्ट इन राजस्थान (सलैक्शन्स फ्रॉम ऑरिजनल्स) खण्ड प्रथम, शोधक, 1984, पृ. 53-54
26. उपरोक्त, पृ. 54-57
27. रामनारायण चौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 40-41
28. उपरोक्त, 44
29. वी.डी. माथुर, पूर्वोक्त, पृ. 24
30. बापू के पत्र बजाज परिवार के नाम, (सम्पा.) काका कालेलकर, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1966, पृ. 8
31. सुमनेश जोशी, पथिक : रियासती जनता के पहले सिपहसालार, (सं.) विष्णु पंकज, श्री विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 12
32. रामनारायण चौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 152-157
33. उपरोक्त, पृ. 158
34. जगदीश सिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास, भाग तृतीय, हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर, 1966, पृ. 172-73
35. गोपीनाथ शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 231
36. वी.डी. माथुर, पूर्वोक्त, पृ. 151
37. शम्भू दयाल सक्सेना, जब प्रेस और अखबार का नाम लेना भी गुनाह समझा जाता था, (सं.) विष्णु पंकज, श्री विजयसिंह पथिक स्मृति ग्रंथ, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 255-56
38. के.एस. सक्सेना, पूर्वोक्त, पृ. 147
39. डॉ. मनोहर प्रभाकर, राजनीतिक चेतना का तेजस्वी साप्ताहिक नवीन राजस्थान, (सं.) विष्णु पंकज, विजयसिंह पथिक स्मृति ग्रंथ, पूर्वोक्त, पृ. 234
40. रामनारायण चौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 86-87
41. डॉ. प्रकाश पुरोहित, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्रामकालीन पत्रकारिता, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 76-79
42. के.एस. सक्सेना, पूर्वोक्त, पृ. 196-227, एल.एस. रावैड़, पूर्वोक्त, पृ. 88-102

# भाषा : विविध कारणों से बदलता स्वरूप (हिन्दी के संदर्भ में)

डॉ. राकेश रंजन

सहायक प्राध्यापक, सबौर महाविद्यालय,  
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

धरती पर मनुष्य के साथ-साथ अन्य प्राणियों को जीवित रहने के लिए हवा, पानी, भोजन, समाज की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार उसे भाषा की भी आवश्यकता होती है। मनुष्य वाक् शक्ति के बिना अपूर्ण है। यह विचारणीय प्रश्न है कि अगर भाषा नहीं होती तो मनुष्य का क्या होता, समाज की जो संरचना अभी है क्या वही संरचना भाषा के बिना भी होती? भाषा का जो स्वरूप प्राचीनकाल में था अगर वहीं स्वरूप वर्तमान समय में होता तो क्या हम अपने विचारों या मनोभावों को तन्मयता से विश्व में कहीं रख पाते? जबाब होगा नहीं। क्योंकि जिस प्रकार हम प्राचीन से वर्तमान में आते-आते अपने रहन-सहन, आचार-विचार, व्यवहार, खान-पान में बदलाव लाये हैं वही बदलाव भाषा में लाना भी आवश्यक था। भाषा में बदलाव किये बिना हम विश्वपटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में शायद समर्थ नहीं हो पाते।

**संकेताक्षर :** भाषा, विचार, मनोभाव, चिंतन, ध्वनि, मनुष्य, शैली, हिंदुस्तान, अंग्रेज, तुर्की, देश, काल, स्वरूप, विविध।

**भा**षा आमतौर पर भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है।<sup>1</sup> लेकिन भाषा की भूमिका इससे बहुत बड़ी है। हमें समाज या विश्व का बोध भी भाषा के ही माध्यम से होता है। भारतीय व्याकरण के शिखर पुरुष व्यक्तित्व भर्तृहरि ने उसकी क्षमता के बारे में यहाँ तक घोषणा कर दी है कि जगत में ऐसा कोई प्रत्यय या विचार नहीं है जो भाषा के अधीन या उस पर आश्रित नहीं है – “नसोस्तिप्रत्ययोलोकेयः शब्दानुगमादृते” (वाक्य पदीयम्)। सही बात तो यह है कि समाज की रचना ही न होती, यदि भाषा जैसी सर्वसंभावी संरचना मौजूद न होती। प्रयोग की दृष्टि से देखें तो भाषा अभिव्यक्ति से पहले चिंतन का माध्यम है। पहले हम सोचते हैं, उसके बाद उसकी अभिव्यक्ति करते हैं – बोल या लिखकर। अंतर्मन में उठते असंख्य विचारों को संकलित करने अथवा अपूर्व-असम्भव वस्तु या घटना की कल्पना करने में हमारे लिए उपकारी है तो ‘भाषा’ ही है। इन बातों के साथ एक विलक्षण बात यह है कि ‘भाषा’ के सहारे हम अपने को प्रकट नहीं करते, बल्कि कई बार अपने आप को छुपाते भी हैं। कई बार हम अपना मन्तव्य अंतर्दशा या वस्तुस्थिति को भाषा के आवरण में लपेटकर सामने वाले व्यक्ति/समाज के लिए उसे अगोचर बना देते हैं। जाहिर सी बात है कि यदि भाषा नहीं होती तो मनुष्य के लिए अपने अन्तः सत्य को छुपाना या झूठ बोलना सम्भव नहीं होता। कुल मिलाकर, भाषा बोध, चिन्तन, सम्प्रेषण और पारस्परिक सहयोग का माध्यम है। जिसका स्वरूप है सार्थक ध्वनि-प्रतिकों (शब्दों-वाक्यों) की व्यवस्था।<sup>2</sup>

यों कहें भाषा एक प्रवाह है जो अनादिकाल से प्रवाहित होती आ रही है, और प्रभावित होती रहेगी जब तक पृथ्वी पर एक भी जीवन शेष रहेगा। भाषा के परिवर्तन का इतिहास हमारी सभ्यता के विकास का इतिहास है। सभ्यता के साथ-साथ जीवन की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। नई-नई चीजों का अविष्कार होने से उनको व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति के सूक्ष्म भेद-प्रभेद भी होने लगते हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य की जीवन शैली में परिवर्तन होना शुरू हुआ त्यों-त्यों भाषा के स्वरूप ने भी अपना रूप बदलना शुरू कर दिया। भाषा की परिवर्तनशीलता प्रत्येक अवस्था में पायी जाती है।

एफ. मैक्समूलर के. एम. ने लिखा है – “यदि हम यह माने कि हम भाषा की सृष्टि कर सकते हैं या उसके रास्ते में रोड़े अटकाने की शक्ति रखते हैं तो हम ऐसे भी विचार रख सकेंगे कि हम शरीर में रक्त संचार के नियम को भी बदल सकते हैं या पहाड़ों की ऊँचाई एक इंच और बढ़ा सकते हैं।”<sup>3</sup>

श्री मंगलदेव शास्त्री तथा भोलानाथ तिवारी ने भाषा के परिवर्तन के दो प्रमुख कारण बताये हैं-<sup>4</sup>

**(क) आभ्यांतर वर्ग** – इस वर्ग में भाषा की स्वभाविक गति कठिन से सरल होने की प्रवृत्ति आती है।

**(ख) बाह्य वर्ग** – इस वर्ग में वे कारण आते हैं जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते हैं।

आभ्यांतर वर्ग में वे कारण आते हैं जो बहुत अधिक प्रभाव नहीं डालते-

**(1) प्रयोग से घिस जाना** – अधिक प्रयोग के कारण अन्य सभी चीजों की भांति भाषा में भी परिवर्तन होता है। जैसे संस्कृत की कारकीय विभक्तियाँ इसी प्रकार घिसते-घिसते समाप्त हो गईं।

**(2) बल** – किसी ध्वनि पर अधिक बल देने के कारण वह ध्वनि दूसरी ध्वनि को कमजोर बना देती है, जिसके कारण भाषा में परिवर्तन हो जाती है।

**(3) प्रयत्न लाघव या मुख-सुख** – भाषा के परिवर्तन का सर्वाधिक दायित्व इसी पर है। प्रयत्न की लघुता के कारण शब्दों को सरल बनाया जाता है। सरलता के कारण कभी उसे बड़ा और कभी छोटा बना दिया जाता है, जैसे भक्त का भगत, स्टेशन का टेशन, धर्म का धरम, यमुना का जमुना, रात्रि का रात इत्यादि परिवर्तन लाघव प्रयत्न के कारण ही हुए हैं। प्रयत्न लाघव कई प्रकार से लाये जाते हैं। जैसे – स्वरलोप, व्यंजनलोप, अक्षरलोप, स्वरागम, व्यंजनगम, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण स्वतः अनुनासिकता इत्यादि प्रमुख हैं।

मनुष्य हमेशा कम परिश्रम से काम चला लेने की बात सोचता है। शब्दों के क्लिष्ट रूप बोलने में जिह्वा को विशेष परिश्रम करना पड़ता है, इस कारण उनका इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है जिससे उच्चारण की सुविधा हो जाय।

**(4) मानसिक स्तर** – बोलने वाले के मानसिक स्तर में परिवर्तन होने से अभिव्यंजना का ढंग परिवर्तित हो जाता है।

**(5) अनुकरण की अपूर्णता** – मनुष्य भाषा को समाज से अनुकरण के सहारे अर्जित करता है। अनुकरण प्रायः पूर्ण नहीं होता है, इस कारण अनुकरण में भाषा का परिवर्तन पनपता रहता है। जब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी भाषा का अनुकरण कर रही होती है तब ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ इत्यादि सभी क्षेत्रों में इसे जोड़ने के कारण परिवर्तना की क्रिया तेजी के साथ घटित होती रहती है। अपूर्णता के अंतर्गत निम्न बातें मुख्यतः आती हैं-

**(क) शारीरिक विभिन्नता** – वाग्यांत्रों की विभिन्नता के कारण अनुकरण अपूर्ण रह जाता है, जिसका प्रभाव सामान्यतः पता नहीं चलता है किन्तु कई पीढ़ियों के बाद के परिवर्तन में इसका हाथ अवश्य रहता है।

**(ख) ध्यान की कमी** – ध्यान की कमी के कारण भी अनुकरण अपूर्ण रह जाता है, इसका प्रभाव भी दस-बीस पीढ़ी के बाद ही स्पष्ट हो जाता है।

**(ग) अशिक्षा** – अज्ञान के कारण भी अनुकरण अपूर्ण रह जाता है। देश का देस, तृष्णा का तिसना, शिक्षा का सिच्छा इत्यादि परिवर्तन प्रयत्न लाघव के अतिरिक्त अज्ञान या अशिक्षा के कारण भी हो जाते हैं। विदेशी शब्दों में तो अज्ञान के कारण बहुत परिवर्तन हो जाता है। जैसे – डॉक्टर का डागटर, टाइम का टैम, ग्लास का गिलास, गार्ड का गारद इत्यादि।

**(घ) जान-बूझ कर परिवर्तन** – कभी-कभी भाषा के प्रबुद्ध विद्वान जान-बूझकर भाषा में परिवर्तन कर देते हैं जैसे – अलेक्जेंडर का अलक्षेन्द्र, ट्रेजडी का त्रासदी, कॉमेडी का कामदी इत्यादि।

**(ङ) जातीय मनोवृत्ति** – हर जाति की मनोवृत्ति के अनुसार भाषा में परिवर्तन होता है। इसी कारण एक ही भाषा दो या अधिक जातियों में प्रचलित होकर दो या अधिक प्रकार से विकसित या परिवर्तित होती है।

### बाह्य वर्ग

**(1) भौतिक वातावरण** – वातावरण में गर्मी या सर्दी की अधिकता के कारण, मनुष्य के स्वभाव, रहन-सहन तथा आचरण पर प्रभाव पड़ता है। मैदान आदि में दूर तक सम्पर्क रहने के कारण भाषा में एकरूपता बनी रहती है जबकि पहाड़ी भागों में अवागमन आदि की असुविधा अनेक नवीन बोलियों को जन्म देती है। जिस देश की जलवायु जितनी अच्छी रहती है वहाँ की भाषा उतनी ही श्रेष्ठ होती है और वह गंभीरतम भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम हो जाती है।

**(2) सांस्कृतिक प्रभाव** - सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा प्राचीन शब्द फिर एक बार प्रचलित हो जाते हैं जैसे आर्य समाज के प्रभाव के कारण हिन्दी भाषा में संस्कृत के ढेर सारे तत्सम शब्द आ गये हैं।

महान व्यक्तियों के व्यक्तित्व का भी भाषा पर प्रभाव पड़ता है, जैसे - तुलसी के कारण अवधी भाषा में अनेक शब्द चल पड़े तथा गांधी जी के कारण हिन्दी की हिन्दुस्तानी शैली काफी प्रचलित हुई। सभ्यता के विकास के कारण अनेक सांस्कृतियों को परस्पर मिलने का अवसर प्राप्त होता है। इस मिलन के कारण भाषा पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। हिन्दी भाषा पर पाँच महत्वपूर्ण सम्मिश्रण का प्रभाव पड़ता है-

- (क) आस्ट्रिकों और द्रविड़ों का
- (ख) द्रविड़ों और आर्यों का
- (ग) आर्यों और यवनों का
- (घ) भारतीयों और मुसलमानों का
- (ङ) भारतीयों और यूरोप वालों का

इस सम्मिश्रण का भाषा पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है - (1) प्रत्यक्ष और (2) अप्रत्यक्ष

### (1) प्रत्यक्ष

**(क) शब्दों का लेन-देन** - आज हमारी भारतीय भाषाओं में उपर्युक्त वर्णित सभी संस्कृतियों के शब्द मिलते हैं। हिन्दी में आस्ट्रिकों के गंगा, द्रविड़ों के तीर, नीव, ग्रीकों के दाम, सुरंग, तुर्की एवं मुसलमानों के पजामा तथा यूरोपियनों के बटन, मोटर, रेल, स्टेशन इत्यादि हजारों शब्द प्रचलित हैं।

**(ख) ध्वनियों का आना** - मूल भारतीय भाषा में टवर्गीय ध्वनि नहीं थी पर भारत में आने पर शायद द्रविड़ों के प्रभाव से आर्यभाषा में ये ध्वनियाँ आ गई। मुसलमानों के प्रभाव से क, ज़, ख़, फ़ तथा अंग्रेजी के प्रभाव से ऑ ध्वनि आई है।

**(ग) वाक्य-गठन, मुहावरे, लोकोक्ति** - अभिव्यक्ति की शैली भी विदेशी भाषाओं से प्रभावित होती है जैसे - “पानी-पानी होना” मूलतः “आबदाबशुदन” का अनुवाद है तो “कार्यरूप में परिणत करना” अंग्रेजी के To translate into action का।

**(2) अप्रत्यक्ष** - विचार-विनिमय के कारण एक दूसरे का साहित्य, कला आदि पर भी प्रभाव पड़ता है।

**(क) समाज की व्यवस्था** - सामज की शांति या अशांति

का भी प्रभाव जीवन के प्रत्येक अंग पर पड़ता है। यह प्रभाव घूम-फिर कर भाषा पर भी पड़ता है। युद्ध या क्रांति में भाषा में विशेष रूप से ध्वनि परिवर्तन होता है। आधुनिक काल में समय कम होने के कारण अनेक प्रचलित शब्दों के संक्षिप्त रूप बनाये जाते हैं जैसे - सी. आई. डी., सी. बी. आई., आई. बी. इत्यादि। इसी प्रकार के संक्षिप्त रूप हैं।

**(ख) बोलाने वालों की उन्नति** - भारत में अंग्रेजों के साथ जो अविष्कारक आये उसके प्रभाव के फलस्वरूप मशीन, वस्त्र, खाना, मनोरंजन इत्यादि के लिए नये शब्द आ जाते हैं। जैसे पिछले कुछ दशकों में अंग्रेजी के अनेक शब्द हिन्दी में आ गये हैं, वैसे ही देश यदि अवनति करने लगे और खाने को मुंहताज हो जाय तो बहुत-सी चीजें लुप्त हो जायेंगी।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर हम पाते हैं कि बाह्य कारक भाषा के बदलाव में अहम भूमिका निभाते हैं। खास कर जब भारत देश की बात की जाय तो यह कारक अधिक प्रभावशील दिखता है, क्योंकि कालांतर में भारत में अनेक विभिन्न संस्कृतियों का आगमन हुआ है। जिसने यहाँ के संस्कृतियों को प्रभावित किया है। ज्यादा पीछे न जाते हुए हम केवल अंग्रेज आगमन से पूर्व एवं पश्चात् की बात करें तो हमें संस्कृति के साथ-साथ भाषाई परिवर्तन भी साफ परिलक्षित हो जाएगी। यूँ तो अंग्रेजों का आगमन 1579 में हो चुका था। 1579 में “टमस स्टीफेन्स नामक व्यक्ति आया था जिसने 40 वर्षों तक रह कर ईसाइयत की सेवा की।”<sup>1</sup> लेकिन जब अंग्रेजों के मन में राज्य स्थापना की बात आई उस समय तक औरंगजेब का राज्य समाप्त हो चुका था। उसके बाद केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होते ही अंग्रेजों ने अपना उद्देश्य सिद्ध करना प्रारंभ कर दिया था। देश टुकड़ों में बंटता जा रहा था और सभी राज्य परस्पर द्वेष से जर्जर हो रहे थे।

अंग्रेजों के आगमन के समय खड़ी बोली अंतर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। खड़ी बोली का प्रथम प्रयोग लल्लू लाल जी तथा सदल मिश्र ने “चंद्रावती” में किया है। वे उर्दूदां मुंशियों की सहकारिता में काम कर रहे थे। गिरी पड़ी रेखने अर्थात् मिश्रित या गिरी-पड़ी बोली के वजन पर खड़ी बोली नाम दे दिया गया।<sup>1</sup>

अंग्रेजों का आगमन तुरंत ही हिन्दी भाषा प्रदेश को प्रभावित नहीं कर सका था। अंग्रेजों का हिन्दी प्रदेश पर अधिकार प्लासी के युद्ध के बाद से धीरे-धीरे प्रारंभ

हुआ। हिन्दी प्रदेश में अंग्रेजी जाति का प्रभाव 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ हो गया। हिन्दी समाज पर अंग्रेजों का प्रभाव खान-पान, मनोरंजन की सामग्री, खिलौने, दवा इत्यादि ऊपर और बाह्य बातों तक ही सीमित था। लेकिन ये सीमित संबंध हमारे तौर तरीके को धीमे-धीमे प्रभावित कर रहा था। 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद हिन्दी साहित्यकारों का संपर्क अंग्रेजी से हुआ था। मैकाले के समय 1830 ई. से अंग्रेजी शिक्षा एवं शासन की भाषा बनने लगी। अंग्रेज यहाँ शासक बन गये इसलिए अपनी भाषा अंग्रेजी को समस्त चकाचौंध से इस प्रदेश के जीवन पर प्रसारित कर दिया।<sup>7</sup>

“1884 ई. में बलिया के ददरी मेले में नागरी प्रचार से संबंधित ‘देवाक्षर चरित्र’ नामक प्रहसन लिखा गया था। ग्रामीणों की परेशानी को ध्यान में रख कर लिखा गया एक संवाद द्रष्टव्य है – अब तो हमन के करम में अदालत लिखले बाय। हाईकोर्ट, विलाइत, जहाँ तक होई घर दुआर बेच के सतुवा-नून खाय-खाय लड़ल जाई। देखले नाही ऊँ जंगी सिंह वाला मोकदमवा में कैसन अंधाधुंध अदालत भइल रहल। हुए बलसूटर के सात-सात सौ रूपया फीज देवैक परल रहे और जौन हजारन रूपैया वकील मुरुतार और अमला लोगन के मूसी दच्छिना दीहल गइल अथवा स्टाम, तलबाना में खरच भइल ओकर कौनो हिसाब नाही।”<sup>8</sup>

उपरोक्त संवाद से साफ-साफ परिलक्षित होता है कि किस प्रकार हमारी भाषा ने आगत विदेशी शब्दों को आत्मसात कर अपना रूप बदल लिया।

### सादृश्य

सादृश्य का भी भाषा परिवर्तन में बहुत बड़ा हाथ है। यह बाह्य और आभ्यंतर किसी वर्ग में नहीं रहता है। दोनों पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। क्योंकि एक भाषा दूसरी भाषा के सान्निध्य के कारण वाक्य रचना में परिवर्तन कर लेती है। जैसे अनेक हिन्दी के लेखकों की वाक्य रचना पर अंग्रेजी वाक्य रचना का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है – “भाषा में परिवर्तन का अर्थ यह नहीं है कि भाषा अच्छी और ऊँची होती जाय बल्कि परिवर्तन का अर्थ है केवल आगे बढ़ना। इस क्रम में यह ऊँचा भी उठ सकती है तथा नीचे भी जा सकती है। इतना अवश्य है कि भाषा सरलीकृत होती जाती है।”<sup>9</sup>

डार्विन के विकासवाद की तरह परिवर्तन का परिणाम प्रगति ही होता है। इसी तरह भाषा में परिवर्तन भी प्रगति ही हैं, ऊँचाई-निचाई के बीच तटस्थ रह कर आगे बढ़ने के क्रम को जोड़ने के लिए भी भाषा में परिवर्तन होता है। वस्तुतः स्थिरता अगति है, अग्रसारिता-किसी भी दिशा में प्रगति है। भाषा का सरलीकृत होना भी उसकी प्रगति है, विकास है। संस्कृत को परिवर्तन के अभाव के कारण तथा स्थिरता आ जाने के कारण कूप जल कहा गया था।<sup>10</sup>

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भाषा अपना स्वरूप परिवर्तित कर रही है। विगत वर्ष एवं वर्तमान में पूरा विश्व वैश्विक महामारी कोविड-19 से जूझ रहा है। जिसका असर हमें देश, समाज के साथ-साथ भाषा पर भी देखने को मिल रहा है। चिकित्सा के क्षेत्र में विशेषकर के प्रयुक्त होने वाले शब्द अब हमारी आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त हो रहे हैं। समाज का हरेक व्यक्ति इन शब्दों का घड़ल्ले से प्रयोग कर रहा है। इससे साफ पता चलता है कि भाषा ऐसी प्रवाहमान धारा है जो आगत शब्दों को अपने अंदर समाहित करते हुए निरंतर प्रवाहित होते जा रही है एवं निर्वाध गति से होते रहेगी।

**निष्कर्ष :-** उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भाषा परिवर्तलशील है। समाज, देश, काल के सापेक्ष भाषा में परिवर्तन संभव है। यह परिवर्तन या बदलाव और किन-किन कारणों से हो सकते हैं ये शोध का विषय है। मनुष्य अपनी इच्छा के अनुरूप तो नहीं वरन् आवश्यकता के अनुरूप भाषा में परिवर्तन तो कर सकता है परन्तु ये परिवर्तन एक लंबे काल के बाद परिलक्षित होता है। ध्यातव्य है कि किसी भाषा का मरना और जीना समाज पर निर्भर करता है। अगर भाषा में परिवर्तन हो रहा है तो यह समझ लेना चाहिए कि समाज के साथ-साथ भाषा भी जीवित है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी, डॉ. भोलानाथ, भाषा विज्ञान, पृ. सं. - 01-02
2. पाठक, डॉ. रवीन्द्र कुमार, भाषा : संरचना, ठहराव और बहाव, विश्व हिन्दी पत्रिका, 2018, पृ. सं.- 3-4
3. जोशी, हेमचन्द्र, भाषा विज्ञान पर भाषण ले. एफ. मैक्समूलर के एम अनुवाद, प्रकाशन हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1964 पृ. सं.- 41

4. रानी, डॉ. विद्या, हिन्दी में अंग्रेजी से आगत शब्दों का अध्ययन, समीक्षा प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, पृ. सं.- 26-38
5. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, प्रकाशक केदार नाथ सिंह, उदयांचल संस्करण द्वितीय, 1962, पृ. सं.- 489
6. बी. ए., ब्रजरत्नदास, खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.- 10
7. बाहरी, डॉ. हरदेव, हिन्दी उदभव, विकास और रूप, प्रकाशक किताब महल, पुनर्मुद्रण 2020, पृ. सं.- 255-256
8. कनोडिया, ले. डॉ. कमला, भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, प्रयाग विश्वविद्यालय, पृ. सं.- 198
9. तिवारी, भोलानाथ, भाषा विज्ञान, पृ. सं.- 55 - 56
10. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, प्रकाशक राधाकृष्ण, ग्यारहवाँ संस्करण, 2020, पृ. सं.- 15-21

# स्त्री विमर्श की वैचारिकी

रश्मि नरताम

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

इतिहास की यदि बात की जाये तो बहुत कुछ है जो लिखा नहीं गया पर लिखा जाना था, पढ़ा नहीं गया पर पढ़ा जाना था। वर्तमान में स्त्री-विमर्श सहयोग के साथ आरोपों और असमंजस की स्थितियों का सामना आये दिन करता है। स्त्री विमर्शिकाओं को पुरुष-विरोधी, पूर्वाग्रह-ग्रसित और अश्लीलता फैलाने वाली, समाज को दिशाभ्रमित करने वाली नारियों का समूह तक समझा जाता है। जिसका कारण शिक्षा, समझ, और ज्ञान की कमी है जो स्त्री और पुरुषों में समान रूप से व्याप्त है परन्तु जागरूकता शिक्षा और तर्क के आधार पर हम स्त्री-विमर्श की सही स्थिति से समाज का परिचय करा सकते हैं। सही मायने में तर्कपरायण व्यक्ति उसके अनुभवों को प्रायः तर्क की कसौटी पर कस कर ही व्यक्त करने में विश्वास रखता है। आदर्श स्थितियों में कौन और कितने लोग हैं? वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और विचारकों का तो कहना है, कि आदर्श अवस्था में एक समान बने रहना नामुमकिन है परन्तु मनुष्य की महत्त्वाकांक्षाओं और जिद्द का कोई अंत नहीं।

**संकेताक्षर :** स्त्री-विमर्श, पितृसत्ता, अस्मितावादी विमर्श, हिन्दू कोड बिल, डॉ. आंबेडकर, आरक्षण, जेंडर इक्वेलिटी।

**म**नुष्य और उसके सार तत्व की बात की जाये तो मनुष्य वह व्यक्ति है जो अपने मूल रूप में कोई व्यक्ति विशेष न होकर एक ऐसी अमूर्तन इकाई है जो प्रकृति से भेद करने के आधारों, प्रकृति प्रदत्त उपक्रमों, समाज से उसके संबंधों और संबंधों के स्वरूप की संरचना, मानवीय आत्मपरकता के वस्तुगत एवं वस्तुपरक आधार और मनुष्य के क्रियाकलापों के क्षेत्र को इंगित करता हुआ उसे एक पूर्ण अस्तित्व प्रदान करता है। यह प्रकृति से उसके भेदों और समाज में उसके व्यवहार तथा समाज द्वारा दी गई प्रतिक्रिया और प्रभावों द्वारा मनुष्य का अपने व्यक्तित्व के प्रति एक आत्मनिष्ठ सम्बन्ध बनाता है जिसे समाज एक वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान करता है 'स्त्री', 'पुरुष' के रूप में। आज मनुष्य के अस्तित्व और सार तत्व का स्वरूप और भी व्यापक हो गया है जिसमें समलैंगिक और उभयलिंगी अभिव्यक्तियों को समाज में न केवल स्वीकृति मिली है, स्थान मिला है, बल्कि विधि द्वारा स्वतंत्र अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। मनुष्य के शरीर और उसके मन मस्तिष्क पर किसी अन्य का स्वामित्व दर्ज नहीं किया जा सकता चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। स्त्री स्वामित्व प्रायः आर्थिक घटना पर आधारित नजर आते हैं परन्तु इसका प्रभाव स्त्री के आत्म और उसके अंतर्वस्तुगत स्वभाव को भी विरूपित करता है। स्त्री-विमर्श, स्त्री पर समाज और पुरुष के इसी अनाधिकृत और अनावश्यक स्वामित्व की अवहेलना कर उसके मूल अस्तित्व स्वरूप को सामने लाने की जाँच-पड़ताल करता है।

खलील जिब्रान कहते हैं कि- "मैं आज जो भी हूँ उसके लिए मैं नारी का कर्जदार हूँ। बचपन से ही नारी ने मेरी आँखें खोली, और मेरी आत्मा को जागृत किया। यदि मेरी माँ, मेरी बहन और मेरी दोस्त नहीं होती, तो मैं आज आराम चाहने वालों के साथ नींद में खरटि लेता होता।" स्त्री की महत्ता को अपने जीवन में उजागर करते हुए अपनी उन्नति का श्रेय, उनके जीवन में स्त्री द्वारा निभाई प्रत्येक भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते हुए देते हैं। स्त्री की बराबर भागीदारी जीवन में उतनी ही आवश्यक है जितना की पुरुष का स्वयं का अस्तित्व यदि इस बात को पुरुष समाज मान ले तो फिर स्त्री विमर्श की आवश्यकता ही ना पड़े। निसंदेह अरबी कवि, लेखक खलील जिब्रान ने स्त्री के प्रति जो उदार

दृष्टिकोण रखा है यदि यह दृष्टिकोण सभी पुरुषों का होता तो सामाज आज़ाद और भी समृद्ध संवेदनशील और व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए होता। मनुष्य मानवीयता के जिस तत्त्व से दिन ब दिन दूर होता जा रहा है। कार्ल मार्क्स के शब्दों में—“मानवीय सारतत्त्व कोई अपकर्षित तत्त्व नहीं है जो पृथक व्यक्तित्व में अंतर्निहित हो। अपनी यथार्थता में वह सामाजिक संबंधों का साकल्य है।’ मानव, मनुष्य और मानवीयता यह समाज के अन्तर्निहित तत्त्व हैं जिनका निर्धारण किसी एक अकेली व्यक्ति मात्र की इकाई से नहीं हो सकता इसके लिए सभी इकाईयों की समान उपस्थिति आवश्यक है। जिसमें पुरुष के अलावा स्त्री की भी समान भागीदारी होनी चाहिए जो की अभी भी गौण है। यह बदलाव वर्तमान स्त्री विमर्श की अवधारणा से संभव तो नजर आता है परन्तु अभी इस बदलाव हेतु समय लगेगा जिसकी कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है। इस्मत चुगताई का कहना है ‘अगर औरत आज़ाद नहीं हो सकती तो मर्द कभी आज़ाद नहीं हो सकता।’

स्त्री एक माँ के रूप में बच्चे की पहली शिक्षक होती है जब तक माँ और उस माँ के विचार, उसका अस्तित्व, स्वतंत्र नहीं होगा तब तक उसके विचारों की गुलामी बच्चे में स्वाभाविक रूप से स्थानान्तरित होती रहेगी। जिसमें यह बात ध्यान देने योग्य है, कि स्वभाव या विचारों की गुलामी बच्चे का लिंग या समुदाय नहीं देखती वह तो उस वाहक द्वारा निर्वहित होती रहती है, जो उसका निर्वहन कर रहा होता है। चूंकि शैशव काल से लेकर 10-12 वर्ष तक की आयु के बच्चे का लालन पालन पोषण करने का दायित्व सामान्यतः माता का होता है इसलिए उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ना स्वाभाविक है वह माँ, जो कि पहले एक स्त्री है वह तो निश्चित ही पितृसत्ता के आधीन है। विश्व की अन्य सभी ‘स्त्रियों’ की तरह। विश्व का कोई भी धार्मिक समुदाय क्यों न हो? उसमें स्त्री की जो भूमिका और स्थान निर्धारित किया गया है, यदि उसे हम देखें तो निश्चित ही पितृसत्ता की वास्तविकता को समझ सकते हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं, नारी अशुभ है, सारे अमंगल का कारण है—“कन्या दुःखद है। (1/159/11)। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा—नारी से बढ़कर अशुभ कुछ भी नहीं। नारी के प्रति पुरुष के मन में कोई स्नेह या ममता रहना उचित नहीं है। (12/40/1)। पिछले जन्म के पापों के कारण इस जन्म में ‘नारी जन्म’ होता है। (6/33/32)। स्त्री साँप

की तरह है, इसलिए पुरुष को कभी इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। (5/37/29)। त्रिभुवन में एसी कोई नारी नहीं जो स्वतंत्रता पाने के योग्य हो (12/20/20)। जो छह वस्तुएँ एक क्षण की असर्कता से भी नष्ट हो जाती हैं, वे हैं— गर्भ, सैन्य, कृषि, स्त्री, विद्या एवं शुद्र के साथ संबंध। (5/33/90)।”<sup>2</sup> —“स्त्री तुम्हारे अनाज का खेत है। इसलिए तुम लोग अपने उस खेत में जैसे मर्जी गमन कर सकते हो। (सूरा बकारा, आयतः 223)।”<sup>3</sup> —“स्त्री, संतान, ढेर सारे सोना— चाँदी और चिन्हित घोड़े, गाय, पशु एवं खेत—खलिहान के प्रति मोह को मनुष्य के लिए मनोरम बताया गया है। यह सब इस जीवन की भोग्य वस्तुएँ हैं। (सूरा अल इमरान, आयतः 14)।”<sup>4</sup> धर्म ही नहीं कानून में भी स्त्री को उसके मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया था जिससे स्त्री के सम्पत्ति, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति के अधिकार का हनन हो रहा था। जिसके फलस्वरूप ‘हिन्दू कोड बिल’ जैसे अत्यंत आवश्यक बिल को पास करते वक्त इतना विरोध सहना पड़ा 11 अप्रैल 1947 को यह बिल डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने संविधान सभा के सामने पेश किया था। इसे पारित होने में 1955-56 मतलब 8 वर्ष का समय लग गया था। बहुविवाह पद्धति को समाप्त करना, पिता की संपत्ति में पुत्रियों का हिस्सा, मृतक की विधवा को उसकी संपत्ति में अधिकार, विवाह विच्छेद हेतु सात आधारों का प्रावधान था—परित्याग, धर्मांतरण, रखैल रखना या रखैल बनाना, आसध्य मानसिक रोग, असाध्य व संक्रामक कुष्ठ रोग, संक्रामक यौन रोग व क्रूरता जैसे आधार पर कोई भी व्यक्ति तलाक ले सकता था। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू दत्तक ग्रहण, पोषण अधिनियम, हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम लागू हुए। यह सभी कानून महिलाओं को समाज में बराबरी देने के लिये लाये गये थे। इसके तहत पहली बार महिलाओं को संपत्ति में अधिकार दिया गया लड़कियों को गोद लेने पर जोर दिया गया।

यह सभी कानून तथा कानूनों के पारित होने में आने वाली बाधाएँ यह इंगित करती है, कि स्त्रियों को सम्मान और बराबरी की बात तो दूर जीवन जीने हेतु मौलिक आवश्यकताओं, स्वास्थ्य, सुविधाओं एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए इतनी लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी और इसमें काफी समय लगा। यह सभी बातें इस तर्क का समर्थन करती हैं कि, सच में उन पर वह अन्याय हो रहा था जिसके कारण कानून बनाने पड़े। अफसोस

की बात है, कि स्त्रियों के हक के कानून बनाने के लिए भी एक पुरुष ही लड़ रहा था और कई पुरुष इस कानून का विरोध कर रहे थे। स्त्रियों को तो अधिकार तक नहीं था अपनी बात कहने का, डॉ. आंबेडकर के अथक प्रयासों का ही नतीजा था 'हिन्दू कोड बिल'। -“घायल री गत घायल जाण्यां”<sup>5</sup> गाते वक्त मीरा का यही भाव रहा होगा, पीड़ित अपनी पीड़ा की व्याख्या जितने अच्छे तरीके से कर सकता है वो कोई और नहीं कर सकता। फिर भी स्वयं स्त्री, स्त्री के अधिकारों के लिए अपनी बात रखने योग्य नहीं मानी जाती थी। हालाँकि आज भी स्थितियों में कोई खास बदलाव नहीं आया है। 'विधानसभा' में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण आज भी दूर का खेल सुहावना बना हुआ है। मुस्लिम समुदाय की औरतों के लिए तो यह संघर्ष आज तक जारी है तीन तलाक पर प्रतिबन्ध भले ही लग गया हो परन्तु हलाला जैसी घृणित प्रथाए आज भी कायम हैं। बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के लिए कठोर दण्ड और त्वरित न्याय की प्रक्रिया तक पहुँचने के लिए हमें निर्भया जैसे विभत्स और बर्बर कांड की भयावहता को सहना पड़ा बावजूद इसके हम और हमारा समय बैंगलूर की डॉक्टर प्रियंका के बलात्कार और हत्या, हाथरस कांड जैसी अमानवीय, घटनाओं के गवाह हैं। एक महीने की बच्ची हो या सत्तर साल की औरत, उनका बलात्कारी, हत्यारा आज भी ऐसे निर्मम अपराधों को करने से पीछे नहीं हट रहा है। हमारे समाज और समाज के मानसिक स्वास्थ्य में आई विकृतियों को दूर करने की एक पुरजोर कोशिश का हिस्सा है, विभिन्न अस्मिताओं का 'अस्मितावादी-विमर्श' जिसमें स्त्री विमर्श सबसे पहला अस्मितावादी विमर्श रहा है।

'सही मायने में बुद्धिपूर्ण विचार हजारों दिमागों में आते रहे हैं लेकिन उनको अपना बनाने के लिए हम को भी उन पर गहराई से तब तक विचार करना चाहिए जब तक कि वे हमारी अनुभूति में जड़ ना जमा लें।' - 'गोथे' जैसे महान विचारक जो अपनी सूक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं उन्होंने जब यह सूक्ति निर्माण की तब निश्चित ही उनका उद्देश्य मानव सभ्यता के विकास में मनुष्य के विचारों की महती भूमिका को विश्लेषित करने का रहा होगा। निश्चित ही मनुष्य होने के नाते दिन भर में सैकड़ों, हजारों, विचार सभी मनुष्यों के मस्तिष्क में आते रहते हैं परन्तु वास्तविक रूप में उसे एक सही या अर्थपूर्ण विचार की संज्ञा तभी दी जा सकती है जब वह

विचार तर्क की कसौटी पर कसा गया हो, गोया की एक तर्क भी विचारों की क्रमबद्ध शृंखलाओं से ही निर्मित होता है परन्तु यह विचार अनुभूतियों के गहनतम, चिन्तनशील पक्ष द्वारा विवेचित एवं विश्लेषित होते हैं। जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों या विचारों से किसी सामान्य नियम या सिद्धांत का निर्माण करता है जो, कि आगमन तर्क की पद्धति कहलाती है। वही दूसरी ओर जब व्यक्ति दूसरों के अनुभवों विश्वासों व सिद्धांतों का प्रयोग करके जब सत्य का परिक्षण करता है तो वह तर्क की निगमन पद्धति कहलाती है। इन दोनों पद्धतियों का प्रयोग करके अपने अनुभवों की व्याख्या करने वाला व्यक्ति तर्कपरायण व्यक्ति कहलाता है। सोच-विचार, विचार-विमर्श इन शब्दों का प्रयोग सामान्यतः किया जाता रहा है परन्तु 'विमर्श' यह शब्द जब 'डिस्कोर्स' के रूप में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने लगा तब उसकी उपयोगिता और महत्ता बढ़ गई है।

विमर्श यह साहित्य में 'अस्मितावादी' अवधारणा का परिचायक है। स्त्री के संदर्भ में यह स्त्री की अस्मिता और उसके पुरुष से भिन्न स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना एवं विचारणा इन दोनों की भूमिकाओं को निभाता है। स्त्री को केवल एक मनुष्य के रूप में देखते हुए जेंडर इक्वेलिटी के प्रश्नों और अधिकारों को समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करता है। स्त्रियोचित गुणों को आधार बनाकर कसी गई पितृसत्ता की बेड़ियों से मुक्ति और स्त्रियोचित गुणों को स्त्री की दासता का नहीं अपितु स्त्री की सशक्त अभिव्यक्ति और सशक्त स्थिति का माध्यम बनाने की दिशा में आधारभूमि तैयार करता है 'स्त्री-विमर्श'। विमर्श यह शब्द अंग्रेजी के डिस्कोर्स शब्द का परिचायक है।

डिस्कोर्स शब्द लैटीन भाषा के डिस्क्यूरेरे शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है दसों दिशाओं में चकराते दौड़ना है- प्रायः अव्यवस्थित वक्तव्यों, सहचार्यों और रूपकों की ऐसी बुनावट जिसमें वह कभी ठीक से संसक्त नहीं होते। भाषिकी में डिस्कोर्स का अर्थभाषा का केवल अमूर्त तंत्र नहीं बल्कि उसका व्यवहारगम्य और व्यवहारजन्य रूप है। विमर्श की विषयवस्तु में सामान्य वार्तालाप, नेता का भाषण, अभिनेता का संवाद, चिह्नी, व्रतकथा, पॉप और पल्प किस्मों के साहित्य से लेकर गंभीर शुद्ध साहित्य तक के आलावा इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, समाज कार्य, भाषा-शास्त्र, नृत्य, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, मानवीय भूगोल, सम्प्रेषण विज्ञान

अनुवाद शास्त्र आदि अकादमिक अनुशासन वगैरह सब कुछ विषय वस्तु के साथ संबंध होकर विमर्श में उद्धरणीय हो सकता है। 'विमर्श' शब्द की एक अन्य वर्तनी 'विमर्श' भी है जिसके अर्थ में विचारणा, आलोचना के अलावा उद्देश्य, क्षोभ, व्याकुलता, भी शामिल हैं, और ये मनोदशाएँ विमर्श यानी बहस-मुबाहिसे में शामिल होने के कारण से इस शब्द को और व्यंजनापूर्ण बनाती हैं।

मूलतः 'स्त्री-विमर्श' की अवधारणा पुरुष से, उसके अस्तित्व से नकार, दुत्कार, या तिरस्कार की बात नहीं करती बल्कि पुरुष के साथ स्त्रियों के सह अस्तित्व को स्वीकारने और उसे भी सामान रूप से सम्मान देने की बात करती है। 'जो सुनि पड़े सो सबद है, समुझि पड़े सो अर्थ'<sup>2</sup> अर्थात्- जो सुना जाता है वह शब्द है और जो समझा जाता है वह 'अर्थ' है। यानि अर्थ का अस्तित्व 'भाषा' में होता है उसे बोलने के लहजे में होता है यदि भाषा बदल दी जाये तो अर्थ भी बदल जायेगा। दुनियाभर में समय के अलग-अलग कालखंडों में, अलग-अलग परिस्थितियों से गुजरते हुए भी सारी स्त्रियों में एक बात आम थी और वो थी दमन, पीड़ा, शोषण, की एक समान अनुभूतियाँ। जब स्त्रियाँ अपनी अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त नहीं कर पाती थी, उस दौर में जब पहली बार किसी स्त्री ने अपनी बात किसी के सामने रखने की कोशिश की होगी, जब पहली बार भोगा हुआ सत्य लिखकर अभिव्यक्त करने की कोशिश की होगी या तब उस पहली स्त्री, पहली औरत, पहली लड़की ना जाने कौन रही होगी वो? उसने जब उसकी बातों को उसके मन में दोहराकर, उसने खुद को तैयार किया होगा, तब उसे लगा तो होगा, कि क्या ये उसी के अपने शब्द हैं जो कानों तक नहीं पहुँच पा रहे थे? क्या ये उसी कि अपनी आवाज है, जो गले में घुट कर रह जाती है? उसकी दुविधा भी तो अनजानी रही होगी या लम्बे समय तक सही एहसास क्या है? यही समझ नहीं आया होगा? लगता तो होगा कुछ गलत है। पर सामने कुछ नजर नहीं आता होगा। ये वही डर था जो उसके जैसी नई शुरुवात करती हर एक 'स्त्री' को लगा होगा पर उन सब ने कोशिश की।

किसी ने अपनी माँ से कहा होगा, किसी ने अपनी सहेली से, किसी ने कागज पर लिखा होगा। वे पुरुष ही थे जिन्होंने इतिहास से स्त्रियों को उनके विचारों को गायब कर दिया उन्हें इतिहास में कभी दर्ज ही नहीं

होने दिया। इसी डर से की अगर सब बराबरी में होंगे तो उनकी गुलामी कौन करेगा? उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान बिना पारिश्रमिक लिए कौन रखेगा? कौन उनकी सेवा-सुश्रुमा को ही अपना धर्म मानेगा? एक दार्शनिक हुए सुकरात नाम से कुछ लोग उन्हें सोक्रेटीज के नाम से पुकारते हैं, किसी ने अफलातून का नाम कहीं सुना होगा ये दार्शनिक, दार्शनिकों की परंपरा के आदि गुरु या पितामह कहे जाते हैं। इनके शिष्य हुए प्लेटों और प्लेटों के शिष्य हुए अरस्तू। ज्ञात हो, कि अरस्तू विश्व विजेता सिकंदर के गुरु थे तो इस गुरु-शिष्य परंपरा के प्रवर्तक थे, सुकरात। हाँ तो वही बता गए की वो 'कुछ नहीं' जानते हैं। बड़े और महान लोगों की यही तो खासियत होती है, कि अपने आप को बड़ा मानते ही नहीं। अपनी अज्ञानता को स्वीकार करना ही बड़े ज्ञानियों की निशानी है।

जब आप जानते ही न हो, कि 'आप क्या नहीं जानते' तो नया सीखेंगे क्या? अपनी 'अज्ञानता का जिसे ज्ञान ही न हो, वह ज्ञान को पाने का प्रयत्न ही क्यों करेंगे'? तो यही से शुरू हुई ज्ञान इकट्ठा करने की परंपरा और वो परंपरा शुरू हुई दुनिया के पश्चिमी हिस्से में यूनान में, यानि की उस समय जिसे लोग 'यूनान' के नाम से जानते थे और आज ज्यादातर 'ग्रीक' नाम से संबोधित करते हैं, सुकरात वहाँ के रहने वाले थे। कालांतर में बुद्धिवाद के नाम से जिसे हम सब ने जाना इसी परंपरा की देन थे 'रेने देकार्त', 'हिगल' और हमारे समय के 'नीत्शे' भी जिन्होंने महामानव के सिद्धांत की परिकल्पना प्रस्तुत की और कहा कि 'ईश्वर मर चूका' है। इन सभी ने हमें याद दिलाया कि आदमी कितना बड़ा सोच सकता है, कितना बड़ा हो सकता है। इन सभी में एक बात समान थी वो ये कि ये सभी पुरुष थे।

इतनी लम्बी भूमिका बांधने की क्या आवश्यकता थी? सिर्फ ये बताने के लिए की कैसा लगता है जब सदियों तक आप पृष्ठभूमि से ही गायब हो? मन में सवाल उठता है यूनान की चौथी सदी से 18 वीं सदी तक का समय यानि चार सौ साल लग गए क्या? कि, किसी औरत के मन में भी सवाल उठे वो भी सोचे की वो क्या-क्या सोच सकती है? क्या-क्या कर सकती है? क्या-क्या सीख सकती है? जबकि आदमी और औरत दोनों के पास दिमाग है, दोनों के पास दृष्टि है, भावनाएँ हैं, दोनों आते तो मनुष्य की ही श्रेणी में हैं

फिर जिज्ञासाएँ क्या केवल पुरुषों के मन में उठती होंगी? स्त्रियों के मन में नहीं? जवाब है, नहीं! वो बोल रही थी, लिख रही थी पर अकेली थीं, उनमें संगठन नहीं था उन्होंने मिलकर कभी कोई आवाज नहीं उठाई थी।

स्त्री-अस्तित्व को पहचान दिलाने की कोशिश के रूप में स्त्री विमर्शात्मक आन्दोलनों की शुरुवात हुई। पश्चिम में स्त्री आन्दोलन, आर्थिक स्वतंत्रता और समान श्रम पर समान वेतन को आधार बनाकर किया गया। भारत में स्त्री- आन्दोलनों का स्वरूप अलग था क्योंकि यहाँ कि सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना पश्चिम से कई अर्थों एवं आयामों में भिन्न थी। यहाँ परिवार और धर्म की जटिल संरचनाएँ स्त्री आन्दोलन के भारतीय स्वरूप को पश्चिम से अलगती थी। पश्चिम में लेखन द्वारा 1792 में मेरी वोल्टसनक्राफ्ट की पुस्तक 'ए विंडिकेशन आफ द राइट्स आफ विमेन' पुस्तक के प्रकाशन के साथ संभवतः स्त्री-विमर्श की शुरुवात हुई। संभवतः लिखने का कारण है, कि साहित्य में और समाज में स्त्री-विमर्श और स्त्री-आन्दोलनों की शुरुवात अलग-अलग मालूम पड़ती है।

साहित्य में जहाँ इसे स्त्री विमर्श का नाम दिया गया है वही समाज में स्त्री आन्दोलन का नाम प्रचलित है। प्रायः दोनों के उद्देश्यों में समानता है। भारत में स्त्री-सशक्तिकरण की नींव पुरुषों ने रखी जिसमें 'राजा राम मोहन राय', 'ईश्वर चंद विद्यासागर', 'ज्योतिराव फुले', 'महादेव रानाडे', 'गोपाल हरी', 'गणेश आगरकर', बेहराम जी एम मालाबारी', 'डी के कर्वे', आदि महत्त्वपूर्ण समाज-सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने हेतु कई आन्दोलनों की अगुवाई की। सती प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा जैसी कुप्रथाओं को समाप्त करने और स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह और दहेज-प्रथा की समाप्ति जैसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्यों के प्रारंभ के साथ भारत में स्त्री विमर्शात्मक आंदोलनों की नींव पड़ी।

इस क्रम में पहली लहर 1857 की स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई के साथ शुरू होती है जहाँ महाराष्ट्र में 'सावित्रीबाई फुले' 'पंडिता रमाबाई', 'ताराबाई शिंदे', 'काशीबाई कानितकर', 'आनंदीबाई जोशी' और बंगाल में 'स्वर्णकुमारी देवी', 'सरला देवी घोशाल' जैसी कई महिलाएँ स्त्री-सशक्तिकरण, स्त्री-शिक्षा की दिशा में बड़े उत्साह के साथ कार्यरत थी। वही स्वतंत्रता संग्राम

में 'लक्ष्मीबाई', 'झलकारीबाई', 'उदा-देवी' जैसी कई साहसी महिलाएँ बड़े साहस के साथ पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर देश को आजादी दिलाने के लिए लड़ रही थी। यदि पश्चिम और पूर्व सब को साथ लेकर क्रमवार रूप से चले तो यह इतिहास लेखन के समकक्ष होगा क्योंकि यह विषय अत्यंत विस्तृत एवं विशिष्ट है। इसलिए हम स्त्री-विमर्श के केंद्र, इसके मूल-स्वरूप, आयाम और इसके उद्देश्य को समझते हुए विषय की 'गंभीरता' से परिचय कराने हेतु प्रयासरत हैं। इस दिशा में यह एक छोटा सा परिचय था स्त्रियों के उन शुरुवाती प्रयासों के क्रम का जो इतिहास में दर्ज है। इसी क्रम में भारत में तीन लहरें और चली जो चिपको आन्दोलन, दहेज विरोधी कानून, यूनिवर्सल बहनापा, सती आत्मकथा से होते हुए आज स्त्री विमर्श के अस्तित्ववादी आन्दोलन के रूप में हमारे सामने है। पश्चिम में मुख्यतः चार लहरें चली जिसका आधार मुख्य रूप से स्त्री के आर्थिक-सक्षमीकरण एवं सबलीकरण पर आधारित था। पश्चिम के स्त्री विमर्श की बात की जाये तो 'सीमोन द बोउवार' का नाम प्राथमिकता से लिया जाता है परन्तु उनके समान और भी स्त्री-विमर्शिकाएँ, लेखिकाएँ थी। मेरी वोल्टसन, जूलिया क्रिस्तोवा, वर्जिनिया वुल्फ आदि और भारत में महादेवी वर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, रेखा कस्तवार, अनामिका, निर्मला पुचुल, ममता कालिया, रमणिका गुप्ता, सुजाता आदि।

वो सूर्य जो रोज समय से उगता है जिसके प्रकाश और तेज से सारी पृथ्वी पालित-पोषित हो रही है। ऋतुएँ बदलती है ना जाने कितने छोटे सूर्य उसमें हर रोज बनकर अथाह-असीम ऊर्जा निस्तारित कर आप ही नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया द्वारा विसर्जित हो जाते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है एक दिन वो सूर्य भी अपने क्षरण को पूर्णता देते हुए खत्म हो जायेगा उसका विकल्प तक मनुष्य आज ही से बनाने के प्रयत्न में है। 6 दिसंबर-2020 के कुछ अखबारों की खबर थी चाइना ने कृत्रिम सूरज बना लिया है। विश्व के कई वैज्ञानिक इस दिशा में कई वर्षों से प्रयासरत थे निरंतर अध्ययन, मनन और ज्ञानार्जन कर रहे थे चाइना के प्रयास शायद थोड़े अधिक थे। ठीक वैसे ही, जैसे इतनी सारी महिलाओं के बीच भी हमें कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, पिटी उषा, मलाला जैसी कुछ स्त्रियों के नाम याद रह गए शायद उनके प्रयास भी कुछ अधिक थे। परन्तु स्त्री-विमर्श कोशिश करता है,

कि हर एक स्त्री के, उसके अस्तित्व और समाज के हित में किये गए, छोटे से छोटे प्रयास को, उसकी अभिव्यक्ति को, उसके अस्तित्व को, सम्मान, स्वतंत्रता और सुरक्षा मिले।

### **संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. जिब्रान, खलील- (काव्य संकलन-3), (अनुवादक-डॉ. नगेन्द्र चौधरी), पीकॉक बुक्स 7/22, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, प्रथम संस्करण-2013, पृ. XXXIII
2. नसरीन, तसलीमा-औरत के हक में, (अनुवाद-मुनमुन सरकार), वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, अठारवाँ संस्करण-2011, पृ. 71
3. वही पृ. 159
4. वही पृ. 159
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ-मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, संस्करण-2015, पृ. 116

# एल. जी. बी. टी. समुदाय :- एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. नीलम जोशी

सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में अद्वितीय और प्रकृति का अभिन्न हिस्सा हैं। अतः एल-लेस्बियन, जी-गे, बी-बाईसेक्सुअल, टी.-ट्रांसजेन्डर भी हमारे प्रकृति का हिस्सा हैं। भारतीय समाज में समलैंगिकता एक निषेध या सामाजिक कलंक माना जाता रहा है। हालांकि यह समलैंगिकता भारत के लिए नयी नहीं है। भारतीय समाज में समलैंगिकों के सामाजिक मुद्दों की लगातार अनदेखी होती रही है। फ्रायड ने मनोविश्लेषण के आधार पर पहली बार स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया और यह सिद्ध किया कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी सभी सिद्धांत स्त्री-पुरुष के काम सम्बन्धों पर आधारित यौन सम्बन्ध में आनन्द प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक स्त्री पुरुष को है। इसी अधिकार के तहत एक समुदाय जिसे हम समलैंगिक समुदाय कहते हैं अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पास गुहार लगाता है और अन्ततः 6 सितम्बर 2018 को “समलैंगिक समुदाय” को उनके अथक प्रयासों से समाज में सम्मान मिला। लेकिन बराबरी के अधिकार का हक पाने के लिए लम्बी लड़ाई लड़ने के बाद अभी भी इस समुदाय को सामाजिक मान्यता पाने के लिए बहुत दूर तक चलना होगा। यह एक विवरणात्मक पत्र है जिसको पत्र व पत्रिकाओं व इन्टरनेट के माध्यम से द्वितीयक तथ्यों की सहायता से लिखा गया है।

**संकेताक्षर :** एल.जी.बी.टी., समलैंगिकता, यौन अभिविन्यास।

**स**मलैंगिकता एक ही लिंग के दो व्यक्तियों में कामेच्छ की पूर्ति समलिंग कामुकता अथवा समजाति लैंगिकता कहलाती है। जो दूसरे पुरुषों की तरफ आकर्षित होते हैं उन्हें ‘पुरुष समलिंगी’ या ‘गे’ और जो महिला किसी अन्य महिला के प्रति आकर्षित होती है उसे ‘महिला समलिंगी’ या ‘लेस्बियन’ और जो महिला व पुरुष के प्रति आकर्षित होते हैं उन्हें ‘उभयलिंगी’ कहा जाता है। अतः समलैंगिक, उभयलिंगी और लिंग परिवर्तित लोगों को मिलाकर एल जी बी टी समुदाय बनता है। भारतीय समाज में समलैंगिकता एक निषेध या सामाजिक कलंक माना जाता रहा है। हालांकि यह समलैंगिकता भारत के लिए नयी नहीं है। इसका अस्तित्व हमारे इतिहास में भरपूर है। प्राचीन काल से ही भारत में समलैंगिक सम्बन्धों को मान्यता थी। भारतीय हिन्दू समाज में यौनाचार या काम भावना की अभिव्यक्ति के बारे में कभी कुंठित विचार नहीं थे। हमारे हिन्दू धर्म शास्त्रों या पौराणिक कथाओं में भी इन्हें सहज स्वीकृत रूप में लिया है जैसे महादेव शिव का अर्धनारीश्वर रूप, विष्णु का मोहिनी रूप, महाभारत काल में अर्जुन का पौरुष वृहन्मला बनने से कलंकित नहीं होता। शिखण्डी का लिंग परिवर्तन सम्भवतः सेक्स असाइनमेन्ट का पहला उदाहरण है। हमारे पुरातात्विक स्थल खजुराहों की मूर्तियां व ओडिशा की दिवारों पर जो मूर्तियां बनाई गयी वे समलैंगिक गतिविधियों का चित्रण हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हिन्दू ग्रन्थ हैं जिसमें समलैंगिकता को प्रतिबन्धित किया गया है। जैसे नारद संहिता और सुश्रुत संहिता। समलैंगिकता का अस्तित्व सभी संस्कृतियां व समाजों में पाया जाता है। जो पहली समलैंगिक नारी मानी जाती है। वह लेसबोस द्वीप की निवासी थी, इसी से लेस्बियन शब्द की उत्पत्ति हुई, उसने अपनी भावनाओं को कविता में कहा। इससे पता चलता है कि समलैंगिकता आधुनिक समाज की देन नहीं बल्कि ईसामसीह के जन्म के पूर्व भी यह प्रचलित थी। सन् 1904 में रेनी विवियन

नामक समलैंगिक महिला लेखिका ने अपने जीवन पर आधारित पुस्तक लिखी। जिसका नाम था-ए वोमेन अफेयर्ड टू।<sup>2</sup>

विदेशों में समलैंगिक स्त्री पुरुषों से घृणा नहीं की जाती बल्कि उनकी सुविधाओं के लिए अनेक समाजसेवी सस्थाएँ खोली गयी हैं। आज भारत में भी उनके अधिकारों व उनकी सुविधाओं के लिए कई संस्थाएँ काम कर रही है हमसफर ट्रस्ट 1994, ट्राइकोन भारत 1986, उडान ट्रस्ट 1992, नाज फाउण्डेशन इण्डिया, नजरिया, मान फाउण्डेशन, हार्मलेस हग्स, क्वेरिथम, सप्पो फार इक्विलिटी आदि।

समकालीन भारत में कई स्थानों पर समलैंगिक विवाह की खबरे आती रही है। छत्तीसगढ़ में पहला समलैंगिक विवाह सरगुजा में जिला अस्पताल की नर्स तनुजा चौहान और जया वर्मा में रचाया था। 27 मार्च 2001 को दोनों ने वैदिक रीति से विवाह किया था। छत्तीसगढ़ के ही दुर्ग जिले में डाक्टर नीरा रजक और नर्स अंजलि निशाद ने समलैंगिक विवाह के लिए आवेदन भी दिया, लेकिन जिला प्रशासन ने इसे अस्वीकृत कर दिया परन्तु उन्होने इस अस्वीकृत की परवाह नहीं की।<sup>3</sup> भारत में इस तरह के विवाहों व व्यवहारों को शोभनीय नहीं माना जाता। परन्तु आज कई शिक्षित स्त्री व पुरुष इस प्रवृत्ति को स्वच्छंद रूप से अपनाते है। विदेशों में इस तरह के विवाह को मान्यता है। विश्व में 25 देश ऐसे है जहाँ समलैंगिकों को विवाह करने की अनुमति है नीडरलैण्ड, नार्वे, बेल्जियम, स्पेन, दक्षिणी, अफ्रिका, ताइवान, ब्राजील, अर्जेन्टीना, फ्रांस, आयरलैण्ड, पूर्तगाल, डेनमार्क, अमेरिका, जर्मनी, माल्टा, न्यूजीलैण्ड यूनाइटेडकिंगडम, मेक्सिको, उरुग्वे, फिनलैण्ड, कनाडा, कोलंबिया आइसलैण्ड, स्वीडन, लक्जमबर्ग, आदि। नीडरलैण्ड सबसे पहला देश है जिसमें 2001 में समलैंगिकों को विवाह की अनुमति दी परन्तु विश्व में भी कई देश ऐसे है जो इस तरह सम्बन्धों की इजाजत नहीं देते। ईरान, सउदीअरब और सूडान जैसे देशों में समलैंगिकता को लेकर मृत्युदण्ड का प्रावधान है। भारत के पड़ोसी देशों अफगानिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मारीशस और सिंगापुर जैसे देशों में भी समलैंगिकता अपराध है। जुडिथ बटलर द्वारा बताया गए लिंग प्रदर्शन सिद्धांत के अनुसार, जो समाज के मानदण्डों का पालन

करने में विफल रहता है या अपने लिंग के अधिकार का पालन करने में विफल रहता है उसे सामाजिक रूप से दण्डित किया जाता है।<sup>4</sup> फ्रायड और उसके अनुयायी बिल्कुल स्पष्ट कहते हैं कि “समजाति लैंगिकता एक मनः स्नायु विकृति है यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। समकामी परित्याग, तिरस्कार, प्रतियोगिता में पराजय और विपरीत लिंग से निराश होने के भय से पीड़ित रहते है। कुछ समलैंगिकता को समाज विरुद्ध पाप और मर्यादाओं पर आघात मानते हैं तो समलैंगिकता के पक्षधर मानव अधिकार मानते हैं। माइकल फोकाल्ट के अनुसार “यदि सेक्स का दमन किया जाता है या यदि निषेध की निंदा की जाती है तो बोलने वाले को अपराध का आभास होता है। ऐसी जगह में, वह सत्ता की पहुँच के बाहर एक निश्चित सीमा तक पहुँच गया है, उस पर विश्वास किया जाना चाहिए क्योंकि उसने आने वाली स्वतन्त्रता को गैर कानूनी घोषित कर दिया है और उसकी आशा करता है। “फौकाल्ट, (1978)<sup>5</sup>

समलैंगिकता एक निषेध या अधिकार इस पर कई वर्षों से चर्चा चली आ रही है। नए युग के विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता ने एल.जी.बी.टी के अधिकारों के लिए विभिन्न आन्दोलनों को जन्म दिया, ये लोग आर्थिक व सामाजिक वर्गों से परे अपने मौलिक अधिकारों की लड़ाई में एक साथ शामिल हुए भारत भी इस विश्व व्यापी उत्साह से अप्रभावित नहीं रहा। हमारे देश में समाज अधिकारों की लड़ाई में 377 को हटाना एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था।

**धारा 377:-** 1857 की क्रान्ति के बाद ब्रिटिश शासन द्वारा यह अधिनियम किया गया व 1861 में अंग्रेजों ने भारत में समलैंगिकता के बीच शारीरिक सम्बन्धों को अपराध मानते हुए उनके लिए 10 साल से लेकर उम्रकैद तक की सजा का प्रावधान किया गया जबकि भारत में इससे पहले समलैंगिक गतिविधियों में शामिल लोगों को दण्डित नहीं किया जाता था। परन्तु उस समय ईसाइयत में समलैंगिकता को अपराध माना जाता था। अतः उन्होने अपने धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर धारा 377 लागू की थी। 158 वर्ष बाद 6 सितम्बर 2018 को भारतीय सर्वोच्च न्यायलय ने इसे अप्रासंगिक एव असंवैधानिक करार देते हुए अमान्य घोषित कर दिया गया है। दरअसल 2001 में नीडरलैण्ड में समलैंगिक विवाह कानून को

पारित करते ही समलैंगिकों के अधिकारों व समानता की चर्चा पूरी दुनिया में फैल गयी। उसी वर्ष भारत में समलैंगिकों के एक गैर सरकारी संगठन नाज फाउण्डेशन ने दिल्ली उच्च न्यायलय में याचिका दायर की। जिस पर 9वर्ष तक सुनवाई चली। वर्ष 2009में अपना फैसला सुनाते हुए दिल्ली उच्च न्यायलय ने समलैंगिक सम्बन्धों को अपराध की श्रेणी में आने वाली धारा 377 को अवैध घोषित कर दिया। 4 साल बाद यानी वर्ष 2013 में सर्वोच्च न्यायलय ने दिल्ली उच्च न्यायलय के फैसले को अमान्य करार देते हुए पुनः धारा 377 को लागू कर दिया। इसके बाद एक बार फिर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के 30 विद्यार्थियों एवं नाज फाउण्डेशन की सहायता से माननीय सर्वोच्च न्यायलय के समक्ष पुनर्विचार याचिका दायर की गयी जिसे नवतेज सिंह भर बनाम भारतीय संघ के नाम से जाना जाता है। इस मामले पर सुनवाई करते हुए 2 फरवरी 2016 को सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों वाली खण्डपीठ ने इसे 5 जजों वाली बड़ी खण्डपीठ को सौंप दिया। वर्ष 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय में 5 अप्रैल को ट्रांसजेण्डरों को तीसरे लिंग का दर्जा प्रदान किया साथ ही उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग में रखते हुए आरक्षण का लाभ दिए जाने की भी घोषणा की। इसके बाद 2017 में एक ऐतिहासिक फैसला आया जिसमें निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया। साथ ही सेक्स ओरिएन्टेशन को निजता के दायरे में लाया गया। इसी प्रक्रम में भारत के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अगुवाई में जस्टिस खानविलकर तथा जस्टिस डी.वाई. चन्द्रचूड, जस्टिस आर.एस. नरीमन तथा जस्टिस इन्दु मल्होत्रा वाली पीठ ने समलैंगिकता और धारा 377 के विषय पर अपना फैसला सुरक्षित रख लिया। 6 सितम्बर 2018 को अपने ही पुराने निर्णय को पलटते हुए सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐतिहासिक निर्णय सुनाया, जिसमें धारा-377 को संविधान के मूल अधिकार के विरुद्ध करार देते हुए अवैध घोषित कर दिया गया। न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पाँच न्यायाधीश की पीठ ने फैसले को पढ़ते हुए कहा कि, “शारीरिक संभोग को अपराध बनाना तर्कहीन मनमाना और स्पष्ट रूप से असंवैधानिक है।”

एक अन्य न्यायाधीश इन्दु मल्होत्रा ने कहा कि उनका मानना है कि एल.जी.बी.टी लोगों को बहिष्कृत करने के लिए इतिहास माफी मागता है। “न्यायमूर्ति डी वाई

चन्द्रचूड ने कहा कि राज्य को निजी जीवन को नियन्त्रित करने का कोई अधिकार नहीं है। और यौन अभिविन्यास के अधिकार से इन्कार करना निजता के अधिकार को नकारने के समान है। न्यायलय ने यह भी स्पष्ट किया कि धारा-377 पूर्णतया खत्म नहीं की जाएगी। बच्चों व पशुओं से तथा असहमति से बनाये गये अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध अब भी अपराध की श्रेणी में बने रहेंगे।”

इस फैसले पर एलजीबीटी कार्यकर्ता हरीश अय्यर ने बी.बी.सी को बताया, “मैं पूरी तरह उत्साहित हूँ। यह एक दुसरे स्वतन्त्रता संग्राम की तरह है, जहाँ आखिरकार हमने इस देश से एक ब्रिटिश कानून को हटा दिया है--मुझे लगता है अगला कदम भारत में भेदभाव विरोधी कानून लाना होगा या धमकाने-विरोधी कानून।” इस बात का संकेत है कि इस न्यायिक सफलता के बाद भी इस समुदाय को अभी भी भेदभाव से गुजरना पड़ता है। एल.जी.बी.टी समुदाय के सदस्यों के सम्मान हत्याओं, हमलों, यातनाओं और पिटाई की रिपोर्ट भारत में असामान्य नहीं हैं। भेदभाव और अज्ञानता विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद हैं जहाँ एल.जी.बी.टी लोगों को अक्सर अपने परिवारों से अस्वीकृति का सामना करना पड़ता है और विपरित लिंग विवाह के लिए मजबूर किया जाता है। समुदाय के खिलाफ भेदभाव अधिक प्रचलित है लोगो के पूर्वाग्रह उन्हें सोचने के लिए प्रेरित करते हैं कि एलजीबीटी लोग अजीब और बहुत अलग है। आज समलैंगिकता पहचान पहले से कही अधिक भारतीय युवाओं को स्वीकार्य हो सकती है। लेकिन परिवारों घरों स्कूलों की सीमाओं के भीतर एल.जी.बी.टी लोगों के लिए स्वीकृति अभी भी निरन्तर एक संघर्ष है।

All Indians (2011 census)	Percentage estimate	Population 1,210,854,977
All females		586,469,294
Bisexual	2.2	12,902,324
Lesbian	1.1	6,451,162
All males		623,724,368
Bisexual	1.4	8,732,144
Gay	2.2	13,721,941
Transgender	0.3	3,632,565
<b>Total (all LGBT)</b>	<b>3.8</b>	<b>45,440,136</b>

LGBT – Lesbian, gay, bisexual, and transgender

Table 1 shows the estimated population of LGBT India 2011 (based on GATES, WILLIAM INSTITUTE ESTIMATES)

भारतीय जनगणना 2011 में पहली बार एल.जी.बी.टी की जनसंख्या का पता लगाया गया। भारत में 3.8

प्रतिशत लोग इस समुदाय से हैं।<sup>१</sup> यह यौन अल्प संख्यक समुदाय कई सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझ रहा है।

हर साल बड़ी संख्या में एल.जी.बी.टी. लोगों को हिंसा, बेरोजगारी, भेदभाव, गरीबी और स्वास्थ्य देखभाल की कमी से सम्बन्धित भारी मुद्दों का सामना करना पड़ता है। इस समुदाय का सीमान्तीकरण हो जाता है इनको सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया जाता है, जिससे वे अकेलेपन के शिकार हो जाते हैं। देश में कानूनी ढाँचा भले ही बदल गया हो, लेकिन समलैंगिक व ट्रांस भारतीयों के दिन प्रतिदिन के जीवन में इसका कोई मतलब नहीं है। (प्रत्युष दयाल, 2020)<sup>१</sup>

इस ऐतिहासिक निर्णय से एल.जी.बी.टी समुदाय के लोग प्रसन्न हैं परन्तु अभी उनकी यह लड़ाई पूरी नहीं हुई है क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को सामाजिक स्वीकृति मिलना बाकी है। वही इस समुदाय को शादी करने, बच्चे गोद लेने तथा सम्पत्ति के अधिकारों का न्यायिक रूप में मिलना बाकी है। अभी इस समुदाय को लम्बी लड़ाई लड़नी होगी।

**निष्कर्ष** – मानव होने के नाते समलैंगिक समुदाय को सम्मान से जीने का अधिकार होना चाहिए। इसे लेकर लोगो को अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए। हालांकि लड़ाई में सामाजिक बदलाव का प्रयास लाने में मीडिया भी योगदान दे रही है। इस समुह पर आधारित फिल्में हमारे भारतीय सिनेमा बना रही है जैसे:—‘एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा’, बोम्बे टाकीज, अलीग्रा, फायर, माई-ब्रदर निखिल आदि। जब सर्वप्रथम फायर 1996 बनी जो दीपा मेहता द्वारा निर्देशित थी। भारत में उनके विरुद्ध नारे लगाए गए जान से मारने की धमकियाँ दी गईं। अब सर्वोच्च न्यायालय के फैसले व समय के साथ लोगों की सोच बदल रही हैं।

आत्माभिव्यक्ति से इन्कार करना मौत को आमन्त्रित करना है; व्यक्तित्व को बदला नहीं जा सकता वह खुद को परिभाषित करता है कि व्यक्तित्व का गौरवशाली रूप है। व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसके गुण है। अन्ततः एक लम्बे संघर्ष के बाद इस समुदाय को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. [www.wikipedia.org](http://www.wikipedia.org):- समलैंगिकता
2. कुमार, आशीष-समकालीन भारतीय समाज मुद्दे और चुनौतियाँ, (श्रियांशी प्रकाशन, आगरा) पृ.सं 04।
3. जायसवाल, रुमी- समकालीन भारतीय समाज मुद्दे और चुनौतियाँ, (श्रियांशी प्रकाशन, आगरा) पृ.सं 12।
4. बटलर जे- जेन्डर टूबल :फेमिनिज्म एण्ड द सबवर्सिव आइडेंटिटी; (न्यूयॉर्क एवें लन्दन: रुटलेज प्रकाशन (1990)।
5. फोकोल्ट. एम-, कामुकता का इतिहास, अनुवादक: हर्ले। (आर:-फैथियन किताबे,न्यूयॉर्क(1978)।
6. [www.bbc.Comindia-45429892](http://www.bbc.Comindia-45429892):- समलैंगिकता पर 6 सितम्बर 2018 का फैसला।
7. भारत में समलैंगिकता और धारा 377, सिविल हिन्दी पीडिया, 13 सितम्बर 2018।
8. Census India. The office of the registrar & census commissioner, India, Ministry of home affairs, Government of India 2011. Available from : <http://www.censusindia.gov.in>
9. दयाल, प्रत्युष (2020), [www.xtra magazine](http://www.xtra magazine) दोपहर 1:13 बजे EDT द्वारा 9 नवम्बर 2020

# रामविलास शर्मा और शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक तुलनात्मक अध्ययन (प्रगतिशील सामाजिक चेतना के काव्यकार के संदर्भ में)



shodhshree@gmail.com

डॉ. नेमीचंद कुमावत

सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, रायपुर (भीलवाड़ा)

## शोध सारांश

रामविलास शर्मा और शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने 1936 ई. में स्थापित 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़कर और मार्क्सवादी चिंतन के अनुरूप युगीन ठोस यथार्थ-बोध से सम्पृक्त काव्य-सृजन किया, जिसे प्रगतिशील सामाजिक चेतना का काव्य कहा जाता है। हिंदी समीक्षकों ने केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन को प्रगतिवादी काव्य में वृहन्नयी के रूप में स्वीकारा है। इस संदर्भ में डॉ. शर्मा और डॉ. 'सुमन' का सृजन भी प्रगतिवाद के शीर्षस्थ कवियों के साथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है, को उल्लेखित करना इस शोध आलेख का ध्येय है। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का विरोध, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाएँ, क्रांतिकारी जन-संघर्ष, आशा-आस्था और परिवर्तन का स्वर तथा आजाद भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन से जुड़ा व्यापक यथार्थ प्रगतिशील कविता का कथ्य है। इस शोध-पत्र में मैंने उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों, जो देश-समाज केंद्रित हैं, को दृष्टि में रखकर दोनों कवियों की संवेदनात्मक समानता और विशिष्टता का तुलनात्मक अध्ययन किया है। डॉ. शर्मा देश की आजादी के बाद कविता-कर्म छोड़कर आलोचक बन जाते हैं और 'सुमन' जी चार कविता-संग्रह रचकर अपनी पृष्ठभूमि में बने रहते हैं। ये कविताएँ आजादी के बाद देश और समाज से जुड़ी विभिन्न ज्वलंत समस्याओं पर केंद्रित हैं, जो 'सुमन' के अनवरत प्रगतिशील कर्म का परिचय देती हैं और उन्हें शर्मा से ऊँचे स्थान पर स्थापित करती हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दोनों कवि प्रगतिशील सामाजिक चेतना से संपृक्त हैं। डॉ. शर्मा मुख्यतः ग्राम्य किसान-मजदूर वर्ग के कवि हैं, जबकि 'सुमन' जी के काव्य-आयाम देहात से शहर तक व्याप्त है। 'सुमन' जी की प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य की रोमैंटिक प्रवृत्तियों को लक्षित कर कुछ समीक्षकगण उन्हें विभाजित मानसिकता या रोमैंटिक कवि ठहरा देते हैं। वस्तुतः उनका अधिकांश सृजन प्रगतिशील सामाजिक चेतना से आप्लावित है, जो उन्हें भी एक सशक्त प्रगतिशील कवि ही सिद्ध करता है। अतः मेरी स्थापना है कि प्रगतिवाद की वृहन्नयी के समकक्ष ही 'सुमन' को भी उसी पंक्ति में रखा जाना चाहिए।

**संकेताक्षर :** साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, शोषक-शोषित, रावणराज, सर्वहारा वर्ग, सामाजिक यथार्थ, मार्क्सवादी, समाजवादी, भौतिकवाद, प्रगतिशील, साम्प्रदायिकता, रोमैंटिक, स्वच्छंदतावादी, राष्ट्रीय-चेतना आदि।

**प्र**गतिशील सामाजिक चेतना के समानधर्मा कवियों- केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, 'मुक्तिबोध' और शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि ने 1936 ई. में स्थापित 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़कर और मार्क्सवादी चिंतन के अनुरूप युगीन पल्लवित हो रहे यथार्थ-बोध को सामाजिक विचारधारा से जोड़कर ठोस रचनात्मक जमीन पर खड़ा करने का ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया, जिसे प्रगतिशील सामाजिक चेतना का काव्य कहा जाता है। हिंदी समीक्षकों ने केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन को प्रगतिवादी काव्य में वृहन्नयी के रूप में स्वीकारा है। इस संदर्भ में अन्य प्रगतिशील कवियों का योगदान भी इनसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। डॉ. शर्मा और डॉ. 'सुमन' जी का सृजन भी प्रगतिवाद के शीर्षस्थ कवियों के साथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है, जिसे इस तुलनात्मक अध्ययन द्वारा रेखांकित करने का एक प्रयास है। सामाजिक चेतना की दृष्टि से डॉ. शर्मा और डॉ. 'सुमन' जी का क्या योगदान है, प्रगतिशील साहित्य के मूल्य उनके

काव्य में किस हद तक और किस रूप में व्यक्त हुए हैं तथा ये दोनों कवि एक दूसरे से किस रूप में भिन्न, समकक्ष या विशिष्ट हैं? आदि को इस शोध में दर्शाया गया है।

साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का विरोध, शोषकों से घृणा, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाएँ, क्रांतिकारी जन-संघर्ष, आशा-आस्था और परिवर्तन का स्वर तथा आजाद भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन से जुड़ा व्यापक यथार्थ प्रगतिशील कविता का कथ्य है। विषय-वैविध्य के साथ ही डॉ. शर्मा और डॉ. 'सुमन' जी ने वैयक्तिक और जन-जीवन से जुड़े साधारण विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं। अतः एक शोध-पत्र में उनके समग्र काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करना असंभव और दुष्कर कार्य है। मैंने उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों, जो देश-समाज केंद्रित हैं, को दृष्टि में रखकर दोनों कवियों की तुलना की है। दोनों कवियों के काव्य में व्यक्त संवेदनात्मक समानता और विशिष्टता पर ध्यान केंद्रित रखा है, ताकि दोनों कवियों की प्रगतिशील सामाजिक चेतना की परख हो सके और इस काव्य धारा में केंद्रीय-कवियों के साथ उनको उचित स्थान दिया जा सके, जिसके वे वास्तविक हकदार हैं।

हिंदी साहित्य-जगत् में मार्क्सवादी आलोचक के रूप में प्रख्यात डॉ. शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर, 1912 को उन्नाव जिले के ऊच गाँव सानी में हुआ। उच्च शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से, सन् 1932 में बी.ए., 1934 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. और वहीं 1938 तक पी-एच. डी. के उपरांत 1938 से 1943 तक अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। 1971 से 1974 तक आगरा विश्वविद्यालय के हिंदी संस्थान में निदेशक। 1981 से दिल्ली में स्वतंत्र लेखन। स्मृति शेष 30 मई, 2000। सन् 1949 से 1953 तक डॉ. शर्मा ने 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' के महामंत्री रहकर प्रगतिशील चेतना का उन्वयन किया।

डॉ. शर्मा एक समाजवादी विचारक हैं। 'प्रेमचंद', 'भारतेंदु युग', महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'निराला', 'भाषा और समाज', 'प्रगति और परंपरा', 'आस्था और सौंदर्य' जैसी उनकी अनेक समीक्षात्मक कृतियाँ मार्क्सवादी दृष्टि और मार्क्सवादी आदर्शों का प्रतिमान हैं। वे एक अच्छे गद्य लेखक के साथ आरंभ में कवि भी रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में-“कविता लिखने की ओर मेरी रुचि बराबर रही है, लेकिन लिखा है मैंने कम। जिसे

साहित्य में उतरना कहते हैं।.....कविता में शाश्वत सत्यों की मैंने खोज की हो, यह भी दिल पर हाथ रखकर नहीं कह सकता।.....पता नहीं कविता पढ़कर अपरिचित मित्र मेरे बारे में किस तरह की कल्पना करेंगे।.....कविता लिखने में बड़ी मेहनत पड़ती है और उनकी नकल करने में और भी ज्यादा।”<sup>2</sup> उक्त वक्तव्य से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि वे कवि न होकर एक आलोचक हैं। उन्हें अपने कवि-कर्म पर संदेह है, किंतु उनकी रचित 116 कविताओं से गुजरने पर यह शंका भी दूर हो जाती है, जिनमें वे एक प्रगतिशील कवि हैं। उनका चिंतन भी मार्क्सवादी वैज्ञानिक भौतिकवाद पर आधारित है। वे मुख्यतः ग्राम्य जीवन के कवि हैं। उन्होंने ग्रामीण किसानों और मजदूरों पर जितना लिखा उतना 'सुमन' जी भी नहीं लिख पाए। कारण यह है कि दोनों ही कवि बैसवाड़ा अंचल की उपज हैं। डॉ. शर्मा का “बचपन गाँव के खेतों में बीता है और वह संपर्क कभी नहीं छूटा।<sup>3</sup> जबकि 'सुमन' जी बैसवाड़े में अधिक नहीं रहे।

उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर गाँव में 16 अगस्त, 1916 ई. को जन्मे शिवमंगल सिंह 'सुमन' अध्यापन कर्म से संपृक्त रहे हैं। उनके 'हिल्लोल' (1939ई.), 'जीवन के गान' (1941ई.), 'प्रलय-सृजन' (1945ई.), 'विश्वास बढ़ता ही गया' (1955ई.), 'पर आँखें नहीं भरीं' (1956ई.), 'विंध्य-हिमालय' (1966ई.), 'मिट्टी की बारात' (1972ई.), 'वाणी की व्यथा' (1980ई.), 'कटे अँगूठों की बंदनवारें' (1991ई.) आदि नौ काव्य-संग्रह हैं। 'सुमन' जी के काव्य-आयाम डॉ. शर्मा की तुलना में व्यापक हैं, क्योंकि उन्होंने किसानों, मजदूरों के साथ ही निम्न-मध्य वर्ग पर भी सृजन किया है।

डॉ. शर्मा की काव्य रचनाएँ-(i) अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943ई.) में छठे प्रयोगवादी कवि के रूप में डॉ. शर्मा की आरंभिक 20 कविताएँ प्रकाशित हुईं। (ii) 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' (1956ई.) के प्रथम भाग में 1935 से 1956 के बीच रचित 66 कविताएँ हैं, जिनमें 'तार सप्तक' की 19 कविताएँ भी शामिल हैं। इसके दूसरे भाग में 'निकोला वप्सरोव' की 26 कविताओं का अनुवाद है तथा तीसरे भाग में 'प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' से जुड़े तरह निबंध संकलित हैं, जो उनके प्रगतिशील आलोचक रूप का परिचय देते हैं। यह संग्रह शर्मा जी के कवि-रूप और उनकी सामाजिक

यथार्थ दृष्टि का परिचय देता है। (iii) 'सदियों के सोए जाग उठे' (1988ई.) शर्मा जी का दूसरा काव्य-संग्रह है। इसमें कुल 45 कविताएँ संगृहीत हैं, जो 1945-47 के बीच लिखी गई थीं। यह संग्रह तद्युगीन देश-व्यापी जन-उभार और कम्युनिष्ट पार्टी की राजनीति को प्रतिबिंबित करता है।<sup>4</sup> इसमें कम्युनिष्ट पार्टी और कांग्रेस के आरोप-प्रत्यारोप, अंग्रेजों व कांग्रेस की समझौता परक नीतियाँ, अंग्रेजों और देशी शासकों के संबंध, मिल-मालिक व मजदूर संघर्ष, जमींदार-किसान संघर्ष, जनांदोलन, शहीदों को श्रद्धांजलि, साम्प्रदायिकता, आजादी आदि से जुड़ा यथार्थ है। कवि ने 'अगिया बेताल' और 'भजनदास' उपनाम से हास्य-व्यंग्य भी किया, जो 'लाठी-पुराण', 'लंका-विजय', 'साँई या संसार में मतलब का व्यवहार' जैसी कविताओं में प्रत्यक्ष हुआ है। कुछ कविताएँ संवाद शैली में हैं तथा कुछ कविताएँ- ('हा-हा भारत की दशा न देखी जाई', 'बसों मेरे नैनन में भोपाल', 'अँधेर नगरी' आदि) पुरानी कविताओं को आधार बनाकर लिखी गई हैं। कवि का 'रूपतरंग' संग्रह से कहीं अधिक प्रगतिशील रूप इस संग्रह में व्यक्त हुआ है।

'आशा' (1930ई.) शर्मा जी की प्रथम कविता है, जो उन्होंने 17 वर्ष की अवस्था में लिखी थी, इसमें प्रगतिशीलता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं; यथा-

**“त्रस्त सभी हों दुष्ट, क्रूरता दूर हो।/  
साम्य समक्ष असीम विषमता दूर हो।**

**कायरता हो दूर, दासता दूर हो।/  
दुखी सुखी हों सभी, देश भरपूर हों।”<sup>5</sup>**

'सुमन' जी ने 1932 ई. में प्रकृति-सौंदर्य पर अपनी प्रथम कविता लिखी थी। यहाँ स्पष्ट है कि 'सुमन' जी का प्रथम काव्य-संग्रह 'हिल्लोल' 1939 ई. प्रकाशित हुआ, जिसमें वे प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य की स्वच्छंदतावादी संवेदनाओं से जुड़े हुए हैं और शर्मा जी ने आरंभ से ही प्रगतिशील सामाजिक चेतना को कवि-कर्म बनाया। डॉ. शर्मा सन् 1956 तक कवि-कर्म से जुड़े रहे और बाद में एक आलोचक के रूप में प्रख्यात हो जाते हैं, जबकि 'सुमन' जी 1990 तक बदले हुए परिवेश में देश और समाज-चिंतन से जुड़े रहकर प्रतिबद्धता का सृजन करते रहे हैं। 'सुमन' जी की कविताएँ 400 से अधिक हैं, जबकि डॉ. शर्मा की 116 के आस-पास हैं। 'सुमन' जी की एक चौथाई प्रणयपरक कविताओं को छोड़ भी दें तो भी शेष कविताओं में व्यक्त प्रगतिशील

सामाजिक चेतना डॉ. शर्मा की तुलना में अधिक सशक्त और व्यापक संदर्भों से जुड़ी हुई लक्षित होती है, तुलनात्मक अध्ययन से इसकी पुष्टि हो जाती है।

डॉ. शर्मा के काव्य का बहुत बड़ा हिस्सा प्रकृति चित्रण से जुड़ा है। उन्होंने अपने समय के संघर्षों, विसंगतियों, उत्पीड़न आदि को प्रकृति के सहारे व्यंजित करने की कोशिश की है। प्रभाकर श्रोत्रिय इस संदर्भ में लिखते हैं कि “प्रकृति को तो खैर, उनकी कविता से अलग करना, अर्थ को शब्द से अलग करने की तरह होगा।”<sup>6</sup> यहाँ स्पष्ट है कि उनकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति से संपृक्त हैं। इसी संदर्भ में डॉ. रणजीत ने भी लिखा है- “अपने अँचल बैसवाड़ा के किसान-जीवन और प्रकृति के चित्र उनकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रगतिशील कविता में ग्रामीण किसानों का इतने व्यापक स्तर पर चित्रण निराला, पंत और केदार के बाद रामविलास शर्मा की कविताओं में ही मिलता है। पर प्रकृति और कृषक जीवन के यथातथ्य वर्णन की ओर झुकाव उनका इतना है कि उनकी कई कविताएँ मात्र ग्राम्य जीवन की रिपोर्ट या प्रकृति का एक सीधा-सादा चित्र मात्र बनकर रह गई हैं।”<sup>7</sup> उनकी समस्त कविताओं का अवलोकन करने के उपरांत मुझे भी दोनों कथन सत्य ही प्रतीत होते हैं। 'रूप तरंग' की 'चाँदनी', 'प्रत्यूश के पूर्व', 'कतकी', 'शारदीया', 'सिलहार', 'दिवा स्वप्न', 'बैसवाड़ा', 'कुहरे के बादल' जैसी कविताओं में ग्राम्य प्रकृति का सुरम्य चित्रांकन है। 'डलमऊ में गंगा', 'खजुराहों', 'केमासिन', 'केरल एक परिदृश्य', 'समुद्र किनारे', 'कृष्णा तट पर विजयवाड़ा', 'महाबलिपुरम का समुद्र तट', 'पीर पंजाल', 'चिंदबरम' जैसी कविताएँ स्थान विशेष के रेखाचित्र से अधिक कुछ भी नहीं है। प्रकृति की सामाजिक उपादेयता का रूप डॉ. शर्मा-'सुमन' जी दोनों के काव्य में है। हर्ष-उल्लास के साथ प्रकृति का प्रेरक रूप डॉ. शर्मा की तुलना में 'सुमन' जी के काव्य में अधिक मुखरित हुआ है।

डॉ. शर्मा ने सामाजिक यथार्थ के अंकन में जिन जीवन संदर्भों को वर्णित किया, उनमें धरती के पुत्र किसान-मजदूर का यथार्थ उपस्थित हुआ है। यहाँ डॉ. शर्मा-'सुमन' जी के काव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं, जिनमें दोनों की संवेदनाओं का अंतर स्पष्ट होगा। डॉ. शर्मा के अनुसार-

**“छोट-सा सूरज सिर पर बैसाख का/  
काले धब्बों से बिखरे वे खेत में**

फटे अंगोछों में, बच्चे भी साथ ले/  
ध्यान लगा सीला चमार हैं बीनते  
खेत कटाई की मजदूरी, इन्हीं ने/  
जोता बोया सींचा भी था खेत को।”<sup>9</sup>

‘सुमन’ जी के शब्दों में-

“धकधकाती धरणि थर-थर/उगलता अंगार अंबर/  
भुन रहे तलवे, तपस्वी-सा

खड़ा वह आज तनकर/शून्य-सा मन चूर है तन.....  
/जल रहा संसार धू-धू

कर रहा वह वार कह हूँ/साथ में संवेदना के/  
स्वेद कण पड़ते कभी चू।”<sup>9</sup>

दोनों कविताओं में मार्क्सिय चिंतन का सर्वहारा वर्ग यंत्रवत् रूप में श्रमरत् है। दोनों में अन्न उपजाकर मानवता का पोषण करने वाले धरती-पुत्रों का यथार्थ चित्रित है। एक में वैशाख और दूसरे में ज्येष्ठ माह की गर्मी, किंतु डॉ. शर्मा की तुलना में ‘सुमन’ जी का श्रमरत् वर्ग पाठक संवेदना को छूने में अधिक समर्थ प्रतीत होता है।

साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के दुष्परिणामों से त्रस्त जन-जीवन का करुण यथार्थ और उसके प्रति सहानुभूति, शर्मा जी की तुलना में ‘सुमन’ जी के काव्य में अधिक मुखरित है। डॉ. शर्मा की ‘गुरुदेव की पुण्यभूमि’, ‘विश्व शांति’, ‘कलियुग’ आदि श्रेष्ठ कविताओं से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाएगा। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

“कंकाल/हड्डियों के रक्तहीन माँसहीन कंकाल  
मंसल बलिष्ठ नहीं भुजाएँ,  
रक्ताभा नहीं है कपोलों पर  
परतंत्र देश के युवक हैं।.....  
हड्डियों का संघर्षण ही जीवन है  
युग के ये नर कंकाल,  
हड्डियों के ताप से अशांत हैं!  
गालों की सूखी हुई हड्डियों में/  
धँसी हुई आँखों की पुतलियों में  
बसी है भावना विद्रोह की।”<sup>10</sup>

दोनों कवियों ने शोषित वर्ग को ‘नर-कंकाल’ के रूप में चित्रित किया है। इस दृष्टि से ‘सुमन’ जी की ‘हाय! नहीं यह देखा जाता’, ‘यह किसका कंकाल पड़ा है’, ‘बे-घरबार’ जैसी कविताएँ देखी जा सकती हैं, जिसमें शोषित वर्ग पर हुए अन्याय, अत्याचार का मार्मिक

यथार्थ उपस्थित हुआ है। कवि ने शोषित समाज को ‘पूँजीवादी समाज के जुल्मों का जंजाल’ कहकर कटु यथार्थ को वाणी दी; यथा-

“भरी जवानी में ही इसके/वेहरे पड़ गई झुरियाँ  
पीब पीचपीचाती शरीर में/  
भनन-भनन कर रही मक्खियाँ  
क्या मानव इस तरह निराश्रित/  
धरती पर बेहाल पड़ा है।”<sup>11</sup>

1943 ई. में बंगाल में पड़े भीषण अकाल को लक्षित कर शर्मा जी ने ‘गुरुदेव की पुण्यभूमि’ और ‘सुमन’ जी ने ‘कलकत्ते का अकाल-1943’ शीर्षक कविताएँ लिखकर अपनी सामयिक चेतना का सघन परिचय दिया। दोनों कवियों ने अकाल के हृदय द्रावक रूप का न केवल अंकन किया, बल्कि इस नारकीय जीवन के विरुद्ध देशवासियों को ललकारा भी है, डॉ. शर्मा के अनुसार-

“सिर पर सरकार मौत-सी बेदम बैठी है/  
चुपचाप मौत-सी पस्त निकम्मी कायर  
दुर्भिक्ष, महामारी से दुष्ट लुटेरों से/  
आओ यह अपना प्यारा देश बचाओ।”<sup>12</sup>

उक्त कविताओं से गुजरने पर स्पष्ट होता है कि दोनों कवियों में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा, नफरत, आक्रोश तो एक जैसा लक्षित होता है, किंतु बंगवासियों को ललकार कर उसे कर्तव्य-बोध कराने में ‘सुमन’ जी अपना सानी नहीं रखते हैं; यथा-

“देशवासियों! तुम्हें शपथ उन/माँ बहनों की आज...  
../मानवता की शपथ ले रहे  
हैं यह कहकर आज...../  
उलट तुम्हारी सड़ी व्यवस्था/डालेंगे वह नींव  
फिर न बिसूर-बिसूर कर मरे/  
नर-तन धारी जीव।”<sup>13</sup>

‘सुमन’ जी ने सोवियत रूस को जनशक्ति का प्रतीक बनाकर, उसकी प्रशस्तिपरक 4-5 कविताएँ लिखीं और शर्मा जी ने ‘जल्लाद की मौत’ शीर्षक कविता लिखी, जो उनकी साम्यवादी आस्था को प्रकट करती है। दोनों कवियों ने रूस और जर्मनी के संघर्ष को वाणी दी, नाजियों के अत्याचारों का विरोध करके रूसी लाल सेना की प्रशंसा की। डॉ. शर्मा के अनुसार (जर्मनों से)-

“देख लौट आया है तेरा काल/  
रूस का लाल सिपाही!

**ओ जल्लाद ! कहाँ है अब तेरा साथी टिड्डी  
दल ?/तू होगा बर्बाद..... !”<sup>14</sup>**

‘सुमन’ जी ने ‘बढ़ी जा रही है बढ़ी लाल सेना’ में रूसी सेना की प्रशंसा की और ‘मास्को अब भी दूर है’ में फासिस्टों को ललकारा कि-“ये भाड़े के सैनिक लड़ने/का क्या इन्हें शरूर है/दस हफ्ते दस साल बन गए/मास्को अब भी दूर है।”<sup>15</sup> साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के अन्याय, अत्याचारों का तीव्र विरोध, ओज आक्रोशमयी वाणी में उसकी तीव्र भर्त्सना, निंदा जितनी ‘सुमन’ जी के काव्य में लक्षित होती है, उतनी शर्मा जी के काव्य में नहीं। ‘सुमन’ जी ने ब्रिटिश साम्राज्य को विश्वभर के अन्याय, दमन और नृशंसता का प्रतिनिधि माना।<sup>16</sup> तथा बहुत-सी कविताओं में उसके शोषण के नग्न यथार्थ को बेनकाब कर उसे चुनौती दी; यथा-

**“ठहर आततायी, हिंसक पशु/रक्त-पिपासु प्रवंचक....  
क्रूर कुटिल विध्वंशक.....**

**जर्जर कंकालों पर वैभव/का प्रसाद बनाया/  
भूखे मुख से कौर छीनते**

**तू न तनिक शरमाया...../  
तुझे देखना तक हराम है।”<sup>17</sup>**

ऐसे चित्र शर्मा जी के काव्य में बहुत कम हैं। गुलामी के विरुद्ध जन-संघर्ष को दोनों कवियों ने अपनी हार्दिक सहानुभूति दी, क्रांति के लिए जनता को संगठित होने की प्रेरणा दी और बलिदान का आह्वान किया। आशा, आस्था, विश्वास और परिवर्तन के ओजस्वी स्वर दोनों ने मुखरित किए हैं; यथा (डॉ. शर्मा के शब्दों में)-

**“रोटी की आजादी की/इनके भीतर की चाह  
नहीं रोक सकता अब कोई मजदूरों की राह।”<sup>18</sup>**

**“अपने घर में आप करेंगे न्याय/  
जाकर देख और दूसरा ठँव**

**जल्दी भारत से तुम करो पयान/  
यह चाहता है सब हिंदुस्तान।”<sup>19</sup>**

इनके अतिरिक्त ‘आजाद पताका’, ‘पंजाब हत्याकांड’, ‘और भी ऊँचा उठे झंडा हमारा’, ‘मातृतीर्थ : चिरुच्चिरापल्ली’, ‘सदियों के सोए जाग उठे’, ‘नई जिंदगी की किरण फूटती है’, ‘शहीद लाल मोहन सेन’, ‘वायलार’ आदि कविताओं में राष्ट्रीय चेतना मुखरित है, जिनका लक्ष्य है-स्वाधीनता प्राप्ति।

‘सुमन’ जी की राष्ट्रीय चेतना ‘जागरण’, ‘यह तो विप्लव की वेला है’, ‘विद्रोह करो-विद्रोह करो’, ‘लो आज बज उठी रणभेरी’, ‘पथ भूल न जाना पथिक कहीं’, ‘परीक्षा दो’, ‘आज देश की मिट्टी बोल उठी है’ जैसी कविताओं में देखी जा सकती है। तुलना से यह स्पष्ट होता है कि दोनों के काव्य में क्रांति-चेतना, आंदोलनकारी जोश, आक्रोश, युगीन यथार्थ लगभग एक जैसा ही है। आजादी के पक्ष में ‘सुमन’ जी ने लिखा है; यथा-

**“आज खून के लिए खून/गोली का उत्तर गोली  
हस्ती चाहे मिटे/न बदलेगी बेबस की बोली।”<sup>20</sup>**

वर्गीय विषमता का अंकन भी दोनों कवियों की कविताओं में हुआ है। डॉ. शर्मा की ‘प्रत्यूष के पूर्व’<sup>22</sup> कविता में एक तरफ जमींदार महफिल में रंगरेलियाँ मना रहा है तो दूसरी तरफ किसान सिसकती जिंदगी जी रहा है, का यथार्थ अंकन हुआ है। ‘सुमन’ जी की ‘बे-घरबार’<sup>23</sup> कविता में एक तरफ पूँजीपति वर्ग वैभव-विलास में मग्न है तो दूसरी तरफ अभावग्रस्त श्रमिक वर्ग फुटपाथों पर अपनी रातें व्यतीत कर रहा है, का दारुण यथार्थ चित्रित हुआ है, जो डॉ. शर्मा की तुलना में कहीं अधिक मार्मिक है।

आधुनिक रावणराज यानी शोषक-शोषित के संघर्ष को पौराणिक कथा-प्रसंगों के माध्यम से डॉ. शर्मा ने अपनी लंबी कविता ‘लंका-विजय’ में और ‘सुमन’ जी ने ‘जल रहे हैं दीप जलती है जवानी’ में साकार किया है। डॉ. शर्मा ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम से जुड़े संदर्भों को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से उभारा है, जबकि ‘सुमन’ जी की दृष्टि विश्व व्यापक साम्राज्यवाद पर केंद्रित है। दोनों कविताएँ मार्क्सवादी चिंतन को तर्कसंगत ढंग से उद्घाटित करती हैं। दोनों का लक्ष्य है-शोषण-विहीन, वर्ग-विहीन समाजवादी शासन की स्थापना करना, जिसमें दोनों कवियों को सफलता मिली है। डॉ. शर्मा की उक्त कविता 12 पृष्ठों में है, जिसकी चर्चा साहित्य जगत में प्रायः नहीं हुई है। मेरी दृष्टि में दोनों कविताएँ प्रगतिशील सामाजिक चेतना की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान हैं और उनकी अतिरिक्त उपलब्धि के रूप में स्वीकारी जानी चाहिए। शोषक-शोषित के संघर्ष-उपरांत शोषित की विजय मार्क्स चिंतन का सार है; यथा (डॉ. शर्मा के शब्दों में)-

**“हो गया अस्त साम्राज्य-सूर्य,  
रावण की शेखी भंग हुई**

जनता की सेना जीत गई,  
डटकर ऐसी यह जंग हुई।

लंका पर झंडा गाड़ दिया,  
जनता ने आजादी पायी  
बँट गई जमीन किसानों में,  
फिर सबमें खुशहाली छायी।”<sup>23</sup>

लगभग यही संवेदना ‘सुमन’ जी के शब्दों में; यथा—

“बहुत दिनों बाद दलितों की हँसी की आज पारी थी  
फिर से मुक्त था मानव कि फिर से मुक्त नारी थी  
छिनी धरती मिली फिर से/ नये सपने संजोए थे  
सभी ने खेत जोते थे/सभी ने बीज बोए थे।”<sup>24</sup>

अंग्रेजी साम्राज्य की ‘फूट डालो राज करो’ की नीति के कारण देश में भड़के साम्प्रदायिक दंगों पर डॉ. शर्मा ने ‘पंजाब का हत्याकांड’ शीर्षक कविता लिखी, जिसमें कवि ने विश्वास प्रकट किया कि एक दिन अवश्य ही भारत इस समस्या से उभरेगा; यथा—

“नई फसल देगी फिर धरती लपटों से झुलसायी  
खाद बनेंगे लूट और हत्या के ये व्यवसायी  
पाँचों नदियाँ एक साथ सींचेंगी यह हरियाली  
लपटों के बदले होगी उगते सूरज की लाली।”<sup>25</sup>

डॉ. शर्मा की उक्त कविता और ‘सुमन’ जी की ‘मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझाने वाला’ में भाव-साम्य लक्षित होता है। ‘सुमन’ जी ने इन दंगों को शोषकों के छल-छंदों की संज्ञा दी तथा सर्वहारा वर्ग में आस्था प्रकट की कि तेरी एकता ही देश को राह दिखाएगी।<sup>26</sup> कवि ने गाँधी-हत्या, जो साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि में हुई थी, पर छह कविताएँ लिखीं, जिसमें कवि की करुणा, आक्रोश, संकल्प और सक्रियता डॉ. शर्मा की तुलना में कहीं अधिक सशक्त रेखांकित की जा सकती है।

डॉ. शर्मा जी देश की आजादी के बाद कविता-कर्म छोड़कर आलोचक के रूप में सक्रिय हो जाते हैं और ‘सुमन’ जी ‘विंध्य-हिमालय’, ‘मिट्टी की बारात’, ‘वाणी की व्यथा’, और ‘कटे अँगूठों की बंदनवारें’ आदि कविता-संग्रह रचकर अपनी पृष्ठभूमि में बने रहते हैं। इन संग्रहों की कविताएँ आजादी के बाद देश और समाज से जुड़ी विभिन्न ज्वलंत समस्याओं पर केंद्रित हैं, जो ‘सुमन’ जी के अनवरत प्रगतिशील कर्म का परिचय देती हैं और उन्हें शर्मा जी से ऊँचे स्थान पर स्थापित करती हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि दोनों कवि प्रगतिशील सामाजिक चेतना से संपृक्त हैं। डॉ. शर्मा मुख्यतः ग्राम्य किसान-मजदूर वर्ग के

कवि हैं, जबकि ‘सुमन’ जी के काव्य-आयाम देहात से शहर तक व्याप्त है। अतः मेरी स्थापना है कि प्रगतिवाद की वृहन्नयी के समकक्ष ही ‘सुमन’ जी को भी उसी पंक्ति में रखा जाना चाहिए।

‘सुमन’ जी के काव्य में सामाजिक चेतना के ऐसे कई अत्यंत तीखे, मर्मस्पर्शी और कलात्मक चित्र प्रस्तुत हुए हैं, जो ओज और पौरुष में निराला जी के तुल्य हैं तथा नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत चित्रों से भी अधिक प्रभाव छोड़ते हैं। तुलना से इसकी पुष्टि होती है कि ‘सुमन’ जी ने नागार्जुन-केदारनाथ अग्रवाल-त्रिलोचन की वृहन्नयी और अन्य प्रगतिवादी कवियों की भाँति सृजन के जरिए प्रगतिशील कविता को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया है, जिसकी आज भी प्रासंगिकता है। यह सच है कि ‘सुमन’ जी ने प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य की रोमैंटिक प्रवृत्तियों को भी अपनी अनुभूति का अंग बनाया, किंतु बहुत अल्प समय के लिए, जिसे लक्षित कर समीक्षकगण उन्हें विभाजित मानसिकता या रोमैंटिक कवि ठहरा देते हैं। उनका अधिकांश सृजन प्रगतिशील सामाजिक चेतना से आप्लावित है, जो उन्हें भी एक सशक्त प्रगतिशील कवि ही सिद्ध करता है।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सदियों के सोए जाग उठे (प्लेप से) : डॉ. रामविलास शर्मा, द्वि.सं. 2006 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. तार सप्तक (वक्तव्य से) : सं. अज्ञेय, पृ. 189-190, आठवाँ सं. 2009 ई., भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. तार सप्तक (वक्तव्य से) : सं. अज्ञेय, पृ. 189, आठवाँ सं. 2009 ई., भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. सदियों के सोए जाग उठे (भूमिका से) : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 05, द्वि.सं. 2006 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 56, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कवि परंपरा तुलसी से त्रिलोचन : प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 240, प्र.सं. 2006 ई., भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि : डॉ. रणजीत, पृ. 143, साहित्य रत्नालय, कानपुर, सं. 2001 ई.

8. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि ('सिलहार') : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 56, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. प्रलय-सृजन (चल रही उसकी कुदाली), सुमन समग्र-1, पृ. 161, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1997 ई.।
10. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि ('हड्डियों का ताप') : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 38, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. जीवन के गान (यह किसका कंकाल पड़ा है), सुमन समग्र-1, पृ. 134, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि. सं. 1997 ई.।
12. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि ('गुरुदेव की पुण्यभूमि') : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 47, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. प्रलय-सृजन (कलकत्ते का अकाल-1943), सुमन समग्र-1, पृ. 211-212, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1997 ई.।
14. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि ('जल्लाद की मौत') : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 49, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. प्रलय-सृजन (मास्को अब भी दूर है), सुमन समग्र-1, पृ. 201, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1997 ई.।
16. विश्वास बढ़ता ही गया (नई आग है, नई आग है), सुमन समग्र-1, पृ. 237, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1997 ई.।
17. वही (आज देश की मिट्टी बोल उठी है), सुमन समग्र-1, पृ. 245-247, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1997 ई.।
18. सदियों के सोए जाग उठे (लपटों के उठने पर यह कैसी पानी की माँग ?) : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 45, द्वि.सं. 2006 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
19. वही (तीन सयाने और नेता) : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 58, द्वि.सं. 2006 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
20. विश्वास बढ़ता ही गया (आज देश की मिट्टी बोल उठी है), सुमन समग्र-1, पृ. 247, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1997 ई.।
21. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि ('जल्लाद की मौत') : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 30, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
22. प्रलय-सृजन (बे-घरबार), सुमन समग्र-1, पृ. 149-150, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1997 ई.।
23. सदियों के सोए जाग उठे (लंका विजय) : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 145, द्वि.सं. 2006 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
24. विश्वास बढ़ता ही गया (जल रहे हैं दीप जलती है जवानी), सुमन समग्र-1, पृ. 295-296, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1997 ई.।
25. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 75, प्र.सं. 1990 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
26. विश्वास बढ़ता ही गया (मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला), सुमन समग्र-1, पृ. 256, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1997 ई.।

# रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन : एक विवेचन



shodhshree@gmail.com

**डॉ. प्रमिला**

एसोसिएट प्रोफेसर, आर.आर.पी.जी. कालेज, अमेठी (उत्तर प्रदेश)

**डॉ. सुभाष सिंह**

एसोसिएट प्रोफेसर, आर.आर.पी.जी. कॉलेज, अमेठी (उत्तर प्रदेश)

## शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिन्तन पर आधारित है। इस पत्र में रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक चिन्तन के विभिन्न पक्षों को उकेरने का प्रयास किया गया है। अनेक विद्वान रवीन्द्र नाथ टैगोर को एक क्रान्तिकारी शिक्षाशास्त्री के रूप में देखते हैं। उनका शिक्षा दर्शन और शिक्षण विधि इतना अर्थपूर्ण एवं उपयोगी है कि उन्हें अलग से भी देखा जाये तो उनका महत्व कम नहीं होता है। शिक्षा सम्बन्धी रवीन्द्रनाथ टैगोर के मूल विचार से यदि अवगत होना हो तो उनके 'तपोवन' को गंभीरता से पढ़ना चाहिए। ऐसा व्यक्ति जो अपनी बाल्यावस्था से ही तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से असन्तुष्ट रहा हो और आगे चलकर शिक्षा में क्रान्ति ला दिया हो विश्व में विरले ही उदाहरण के रूप में मिलते हैं।

**संकेताक्षर :** रवीन्द्रनाथ टैगोर, शिक्षा, दर्शन, जीवन, विद्यार्थी, शिक्षा शास्त्री।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई, 1861 को कलकत्ता में हुआ। रवीन्द्र नाथ अपने माता-पिता के तेरहवीं संतान थे। बचपन में उन्हें प्यार से 'रबी' नाम से बुलाया जाता था। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी, सोलह साल की उम्र में उन्होंने कहानियां और नाटक लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा सेंट जेवियर स्कूल से पूरी की थी। टैगोर को बैरिस्टर बनाने की चाहत में इनके पिता जी ने इनका नाम 1878 में इंग्लैण्ड के ब्रिजटोन पब्लिक स्कूल में दर्ज कराया। लेकिन बैरिस्टरी में इनकी रुचि न होने के कारण ये 1880 में बिना डिग्री हासिल किये ही भारत वापस आ गये। इनका विवाह सन् 1883 में मृणालिनी देवी के साथ हुआ था। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी पहली कविता महज आठ वर्ष की अवस्था में लिखी थी। इन्होंने लगभग 2230 गीतों की रचना की थी। टैगोर ने 1901 में पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में शांतिनिकेतन में एक प्रायोगिक विद्यालय की स्थापना की थी। टैगोर को उनकी रचना 'गीतांजलि' के लिए वर्ष 1913 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। वैसे रवीन्द्र नाथ टैगोर एशिया के प्रथम ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया। रवीन्द्र नाथ टैगोर 1878 से लगातार 1930 तक सात बार इंग्लैण्ड गए। सन 1915 में अंग्रेजों द्वारा टैगोर को 'सर' की उपाधि दी गई थी। लेकिन अप्रैल 1919 में हुए जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अंग्रेज सरकार द्वारा प्रदान की गई सर की उपाधि का त्याग कर दिया था। वे एक मात्र कवि थे जिनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं। भारत का राष्ट्र-गान 'जन गण मन' और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान 'आमार सोनार'। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियों में - गीतांजलि, गीताली, गीतिमाल्य, कथा ओ कहानी, शिशु, शिशु भोलानाथ, कणिका, क्षणिका, खेया आदि प्रमुख हैं। उन्होंने कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने ही गांधी जी को सबसे पहले 'महात्मा' कहकर पुकारा था। भारत के इस होनहार व्यक्ति की मृत्यु 7 अगस्त, 1941 को कलकत्ता में हुई थी।

## जीवन दर्शन

वैसे तो रवीन्द्र नाथ टैगोर आदर्शवाद के अनुयायी थे। अपने परिवार में इन्हें वेदों और उपनिषदों के अध्ययन का अवसर मिला था। जिसकी छाया इन पर पड़ी थी। रवीन्द्र नाथ टैगोर परम पुरुष में आस्था रखते थे और उस

परमपुरुष को विश्व की सर्वोच्च शक्ति मानते थे। उनके लिए परमपुरुष सत्यम्, शिवम् एवं अद्वैतम् का प्रतीक है। अद्वैतवादी एवं ब्रम्हवादी होते हुए भी वे सर्वोच्च सत्ता को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। वे परम तत्व को सूक्ष्म मानते हैं और उपास्य के रूप में उसे स्थूल मानते हैं। उन्हें उच्च कोटि का मानवतावादी कहा जा सकता है क्योंकि वह मानव में आस्था रखते थे। मानवमात्र की सेवा को वे सबसे बड़ा धर्म मानते थे। वे भौतिक जीवन की वास्तविकता को स्वीकार करते थे। उनका मानना था कि आध्यात्मिक व्यक्तित्व की अनुभूति के लिए जंगल में जाकर तपस्या करना जरूरी नहीं है। देश सेवा का महत्वपूर्ण कार्य ग्राम सेवा है। ग्राम सेवा में भी ग्रामीण को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। ग्राम एवं शहर की खाई को पाटना चाहिए। रवीन्द्र नाथ टैगोर जाति-पात एवं अस्पृश्यता का विरोध करते थे। रवीन्द्र नाथ टैगोर व्यक्ति के सम्मान एवं उसकी स्वतंत्रता में आस्था रखते थे।

### रवीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी चिन्तन

रवीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा चिन्तन को उनके द्वारा बताये गये शिक्षा के अर्थ, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या, विद्यालय, शिक्षण - विधि, गुरु - शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन आदि से जाना जा सकता है।

### शिक्षा का अर्थ

टैगोर ने शिक्षा को विकास की एक प्रक्रिया माना है और शिक्षा के व्यापक अर्थ को स्वीकार किया है। रवीन्द्र नाथ टैगोर का विचार है कि शिक्षा विकास का ऐसा साधन है जिससे व्यक्ति की मानसिक, भावात्मक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताएँ बाह्य रूप में अभिव्यक्त होती हैं। टैगोर के शब्दों में - सर्वोत्तम शिक्षा वह है जो हमारे जीवन का समस्त सृष्टि से सामंजस्य स्थापित करती है।

### शिक्षा के उद्देश्य

टैगोर के अनुसार शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य होने चाहिए -

**1. शारीरिक विकास :** टैगोर शिक्षा के लिए स्वस्थ शरीर को अधिक महत्व देते थे। अतः उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक विकास माना है। शारीरिक विकास हेतु उन्होंने खेलकूद, व्यायाम एवं पौष्टिक भोजन आदि को आवश्यक बताया है।

**2. मानसिक या बौद्धिक विकास :** शारीरिक विकास के साथ-साथ उन्होंने मानसिक या बौद्धिक विकास पर बल दिया। उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक विकास करना बताया परन्तु बौद्धिक विकास के लिए उन्होंने पुस्तकीय शिक्षा का विरोध किया और प्रकृति तथा जीवन से प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बताया। उनका कथन था कि इस प्रकार की शिक्षा से स्वतन्त्र चिन्तन एवं ज्ञानार्जन करने की क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है। उनका विश्वास था कि बौद्धिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जब कि वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त किया जाय।

**3. संवेगात्मक विकास :** रवीन्द्र नाथ टैगोर का मत था कि कविता, संगीत, चित्रकला, नृत्यकला इत्यादि के द्वारा बालकों को संवेगात्मक प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए, जिससे उनमें सौन्दर्य प्रेम, सहानुभूति आदि की स्वस्थ भावनाओं का विकास हो सके।

**4. सामाजिक विकास :** रवीन्द्र नाथ टैगोर व्यक्तिवादी होने के साथ-साथ समाजवादी भी थे। वे शिक्षा द्वारा व्यक्ति को एक ऐसे सामाजिक बन्धन में बाँधना चाहते थे जिससे व्यक्ति में सामाजिक गुणों का विकास हो और वह सामाजिक विकास हेतु प्रयत्नशील रहे।

**5. सामंजस्य की क्षमता का विकास :** रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार बालकों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों और सामाजिक वातावरण का ज्ञान कराना चाहिए, जिससे उसमें सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास हो सके।

**6. नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास :** रवीन्द्र नाथ टैगोर आदर्शवादी थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों का विकास करना माना है। अपने लेखों में उन्होंने अनेक नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की विवेचना की है और इसकी प्राप्ति हेतु आन्तरिक स्वतन्त्रता, आन्तरिक शक्ति, आत्मानुशासन एवं ज्ञान आवश्यक बताया है।

**7. व्यावसायिक उद्देश्य :** रवीन्द्र नाथ टैगोर का विचार था कि शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य भी बनाए कि वह अपनी जीविका स्वयं कमा सके और आत्मनिर्भर बनकर अपना जीवन व्यतीत कर सके।

**8. सांस्कृतिक उद्देश्य :** उक्त के साथ-साथ रवीन्द्र नाथ टैगोर मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य देश की संस्कृति की सुरक्षा और विकास करना है।

**9. अन्तर्राष्ट्रीयता का उद्देश्य :** रवीन्द्र नाथ टैगोर समस्त विश्व में शान्ति स्थापित करना चाहते थे । उन्होंने शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी बताया कि वह व्यक्तियों में अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व की भावना का विकास करे । इसीलिये उनका नारा था - 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ।

**पाठ्यक्रम :** रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने शिक्षा-दर्शन के अन्तर्गत ऐसा पाठ्यक्रम लिया है जो जीवन के सभी पक्षों का विकास करे । उन्होंने इतिहास, विज्ञान, प्रकृति अध्ययन, भूगोल, साहित्य आदि को पाठ्य विषय बनाया और नाटक, भ्रमण, बागवानी, क्षेत्रीय अध्ययन, प्रयोगशाला कार्य, डाइंग, मौलिक रचनाएँ, संग्रहालय आदि क्रियाओं के साथ खेलकूद व समाज सेवा आदि पर पर्याप्त बल दिया ।

### शिक्षण विधि

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने सहज स्वाभाविक रूप से क्रिया द्वारा सीखना, भ्रमण, वाद-विवाद, प्रयोग विधि आदि को शिक्षण विधि के रूप में प्रयोग कर विषयवस्तु को समझाने पर जोर दिया । उन्होंने दण्ड व्यवस्था के प्रचलन को समाप्त किया ।

### विद्यालय

कहते हैं कि अपने पढ़ाई के दिनों से ही तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से उबकर टैगोर के मन में परम आनन्दमयी विद्यालय की कल्पना हिलोरे मार रही थी, जहाँ कोई बन्धन न हो और अधिगमार्थी अपनी मेधा को तरासने के लिए सदैव बैचैन रहते हों। प्राकृतिक सुरम्यता के बीच बना विद्यालय न केवल अधिगमार्थियों को सुःखद अनुभूति प्रदान करता अपितु ऐसे स्थल पर ग्रहण किया गया ज्ञान सदैव मानस पटल पर तैरता रहता है अर्थात् सदैव याद रहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर बड़े-बड़े भवनों में स्थापित नीरस किस्म के विद्यालयों के घोर विरोधी थे। वे ऐसे प्राकृतिक वातावरण के पक्षधर थे जहाँ जाने के लिए विद्यार्थियों का मन सदैव मचलता रहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मेरा विद्यालय नामक निबन्ध में शान्ति निकेतन में स्थापित अपने विद्यालय के कार्यक्रम और उसकी योजना का वर्णन किया है आवासी शिक्षा, प्रकृति में और प्रकृति के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था और आध्यात्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार इस निबन्ध में दुहराए गए हैं। उन्होंने बताया है कि स्कूल में आदर्श वातावरण का श्रेय मेरे किसी नए शिक्षा सिद्धान्त को नहीं अपितु मेरे स्कूली दिनों की स्मृति को है। टैगोर ने पहले किसी सिद्धान्त का प्रचार करके उसके आधार पर विद्यालय की स्थापना

नहीं की थी। उन्होंने अनुभव किया कि कुछ किया जाना आवश्यक है। उन्हें सूझा और इसको रूप दे दिया। उनका कहना था कि बच्चों को वास्तविक सुख, स्वतन्त्रता, स्नेह और सहानुभूति से अब और अधिक देर तक वंचित नहीं रखना चाहिए। रवीन्द्रनाथ ने अपने विद्यालय में अधोलिखित तत्वों पर विशेष जोर दिया -

- विद्यालय प्राकृतिक वातावरण में स्थापित किया जाय ।
- विद्यालय का संचालन प्राचीन तपोवन की व्यवस्था की तरह किया ।
- विद्यालय में छात्रों को आध्यात्मिक मूल्यों का प्रशिक्षण दिया जाय ।
- विद्यालय में प्रकृति तथा प्राकृतिक तत्वों के प्रति संवेदना की भावना का विकास किया जाए ।
- विद्यालय में छात्रों के लिए स्वतन्त्रता का वातावरण प्रदान किया जाए ।
- विद्यालय छात्रों में वातावरण के लिए जागरुकता का विकास करे ।
- विद्यालय छात्रों को इस प्रकार के वातावरण में शिक्षित करे जो जीता-जागता हो तथा अध्यापक व छात्र के परस्पर प्रभावी सम्पर्क पर आधारित हो ।
- विद्यालय छात्रों को उनकी मातृभाषा में शिक्षण दे ।
- प्रभावी आत्मीय छात्र-अध्यापक सम्पर्क के लिए आवश्यक है कि कक्षा में छात्रों की संख्या कम हो ।
- विद्यालय में शारीरिक श्रम के लिए प्रावधान किया जाय ।
- विद्यालय में समृद्ध पुस्तकालय हो ।

### शिक्षक

रवीन्द्र नाथ टैगोर अपने शिक्षा दर्शन में शिक्षक को उच्च स्थान प्रदान करते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा केवल शिक्षक के द्वारा ही दी जा सकती है, क्योंकि मानव मानव से ही सीख सकता है। शिक्षण विधियों से कदापि नहीं सीख सकता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बालक को जीवन की गति और मस्तिष्क के बन्धन से मुक्ति प्रदान करे। प्रेरणादायी और शिक्षाप्रद अनुभव प्रदान करे। शिक्षक और बालक को सत्य की खोज और

समान रूप से सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुसरण करना चाहिए। शिक्षा का कोई भी कार्य बालकों को हतोत्साहित करने वाला और रचनात्मक शक्ति का दमन करने वाला नहीं होना चाहिए। शिक्षक को क्रिया प्रधान ज्ञान बालकों के समक्ष रखना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों के साथ प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करे।

### विद्यार्थी

रवीन्द्रनाथ टैगोर का विद्यार्थियों के प्रति दृष्टिकोण व्यावहारिक था। वे छात्रों की सादगी पर अत्यधिक बल देते थे। धनी परिवार में जन्म लेने के कारण वे विलासितापूर्ण जीवन की बुराई से अच्छी तरह परिचित थे। सादगी को वे पूर्ण शिक्षा की अभिव्यक्ति मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने लड़के को सादगी के रास्ते पर चलने की सलाह दी। टैगोर का विद्यार्थी आश्रम पद्धति जैसे विद्यार्थी गुणों से युक्त हैं - यथा ब्रम्हचर्य, विनम्रतापूर्ण, सादगीपसंद, स्वच्छताप्रिय, अनुशासनप्रिय, मातृभाषा, उच्च अभिलाषा, सौन्दर्य प्रेमी व वैज्ञानिक दृष्टिकोण इत्यादि। विद्यार्थी को न केवल पुस्तकीय ज्ञान अपितु समस्त बाह्य ज्ञान भी रखना चाहिए।

### गुरु-शिष्य सम्बन्ध

रवीन्द्र नाथ टैगोर बहुत हद तक आदर्शवादी थे। अतः शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानी, संयमी और आदर्श गुरुओं की आवश्यकता पर बल देते थे। शिक्षार्थी गुरुओं के मनोभावों एवं आचरण से बड़ा प्रभावित होता है। अतः गुरु को चरित्रवान व उचित आचरण वाला होना चाहिए। शिष्य में दैवीय प्रकाश होता है। गुरु को अपनी क्षमता से इस प्रकाश को देखना चाहिए। गुरु को मनोविज्ञान का पंडित होना चाहिए और प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। शिष्य के प्रति गुरु का व्यवहार प्रेम व सहानुभूति का होना चाहिए। रवीन्द्र नाथ टैगोर चाहते थे कि शिष्य ब्रम्हचर्य का पालन करे अर्थात् उसे मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए। शिष्य को नित्य कर्म से निवृत्त होना चाहिए। आज्ञा का पालन करना चाहिए। व्यवहार में विनम्र होना चाहिए। सौन्दर्य प्रेमी होना चाहिए। विश्व-बन्धुत्व की भावना में विश्वास रखने वाला होना चाहिए। सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्ति के प्रति उत्सुक दिखने वाला होना चाहिए। बच्चों के स्वाभाविक विकास पर बल देने वाला होना चाहिए। रवीन्द्र नाथ टैगोर प्राचीन मान्यताओं के पोषक और उनके आधार पर नवीन

मान्यताओं के समर्थक थे।

### अनुशासन

शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की आवश्यकता को रवीन्द्र नाथ टैगोर स्वीकार करते हैं तथा आन्तरिक अनुशासन पर बल देते हैं। दण्ड व्यवस्था का वह विरोध करते हैं। दरअसल गुरुदेव अनुशासन के पक्षधर होने के साथ इस बात पर जोर देते हैं कि इसकी प्राप्ति सामाजिक पर्यावरण, आदर्श अध्यापक, प्रेम, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं के आयोजन व कार्य करने की स्वतन्त्रता मुहैया कराया जाय।

### शिक्षाशास्त्री के रूप में रवीन्द्रनाथ टैगोर का योगदान

पूरे समाज को प्लेटो ने जहां शिक्षा को पूर्णता की ओर अग्रसर किया, वहीं हरबार्ट स्पेन्सर ने शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने का प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा को आध्यात्मिकता और भौतिकता से जोड़ कर अधिक व्यावहारिक रूप देने का कार्य किया। जीवन की पूर्णता के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जो विधान बताया है वह भारतीय एवं पश्चिमी दोनों जीवन को छूता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जीवन की पूर्णता का माध्यम 'शिक्षा' को माना और उसके लिए विद्यालय में प्रेम और सहानुभूति पूर्ण वातावरण का अनुमोदन किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे प्रथम शिक्षाशास्त्री हैं जिन्होंने राष्ट्रीयता की परिधि से निकलकर विश्व के समस्त मानव के हित की चिन्ता की और ऐसी शिक्षा का प्रारूप तैयार किया जिससे सम्पूर्ण मानव जाति एक सूत्र में बंध सके। इसलिए कहा जाता है कि टैगोर बहुत बड़े मानवतावादी हैं जिन्होंने लोगों के अन्दर विश्व-बन्धुत्व की भावना का विकास किया और कहा कि कोई भी देश बिना किसी दूसरे देश की सहायता लिए अपनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता। इसलिए लोगों में विश्वबन्धुत्व की भावना होनी चाहिए। रवीन्द्रनाथ टैगोर को भारतीय संस्कृति का दूत माना गया है, जिसे उन्होंने विश्वभर में फैलाया। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया जिसमें आदर्शोन्मुख पूर्णता व यथार्थता की संगति है, पूर्व व पश्चिम का मिलन भी है। विश्वभारती में टैगोर ने भारतीय संस्कृति की मूल धारा को अक्षुण्ण रखते हुए भी पाश्चात्य संस्कृति और आदर्शों को उससे मिलाने का प्रयास किया। इसलिए विश्व के किसी भी देश से आया हुआ छात्र विश्वभारती में बड़े अच्छे ढंग से अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर का

योगदान सौन्दर्य-बोध की शिक्षा प्रस्तुत करने में भी हैं। विहंगम दृष्टि डाले तो यूनान की शिक्षा योजना में सौन्दर्य-बोध की शिक्षा मिलती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सौन्दर्य-बोध की शिक्षा के लिए ललित कलाओं – संगीत, चित्रण, पेंटिंग, नृत्य, कविता, अभिनय आदि को विशेष स्थान दिया है। टैगोर एक महान कलाकार थे, इसलिए औपचारिक अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ चित्रकला, संगीत, नाट्यकला का समावेश अपने विश्वभारती के पाठ्यचर्या में प्रमुखता से शामिल किया और स्वयं सक्रिय प्रतिभाग करते थे। टैगोर का यह विचार पैस्तालाजी, प्रोबेल व जॉन डी.वी. के विचार से मिलता जुलता है।

टैगोर ने प्रकृति के माध्यम से शिक्षा देने पर जोर दिया है, यह भी उनकी एक अपनी विशेषता है। इसका मूल कारण यह है कि टैगोर एक कवि ही नहीं बल्कि महान कवि थे। इसलिए प्रकृति प्रेम और भावना उनके अंग-प्रत्यंग में भरी हुई थी। उन्होंने प्रकृति को सबसे पहले और सबसे बड़ा शिक्षक स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि प्रकृति में इतनी क्षमता है कि वह व्यक्ति का हर दृष्टिकोण से विकास कर सकती है। टैगोर का मानना है कि प्रकृति के सहयोग से व्यक्ति को पूर्णता प्रदान किया जा सकता है। शिक्षा को प्रकृति से प्रभावित करना तथा जीवन आनन्दयुक्त बनाना टैगोर की बहुत बड़ी देन है।

### प्रासंगिकता

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा को प्राकृतिक वातावरण में दिये जाने पर जोर दिया। उनका मानना था कि बालक को पुस्तक के स्थान पर जहाँ तक संभव हो सके प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इन्होंने सर्वोच्च शिक्षा उसे कहा है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है। अध्ययन-अध्यापन के लिए ये स्वतंत्र व प्राकृतिक वातावरण को उपयुक्त एवं श्रेष्ठ समझते थे। इसीलिए इन्होंने 1901 में बोलपुर नामक स्थान पर शांति निकेतन नाम से एक विद्यालय की स्थापना की जो आज विश्वभारती विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। आज रवीन्द्रनाथ टैगोर की संस्थाएँ शिक्षण पद्धति में विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनका शिक्षा के क्षेत्र में यह योगदान उनके काव्य की भाँति ही अभूतपूर्व है। उनकी मृत्यु के समय कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट ने कहा था कि – उनके द्वारा भारत ने मानव मात्र को उनके साहित्य,

दर्शन, शिक्षा तथा कला के अध्ययन से संदेश दिया है। उनके द्वारा अमर कीर्ति प्राप्त की है और भारत के स्तर को विश्व में ऊँचा उठाया है। स्पष्ट है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर का दार्शनिक चिन्तन व शिक्षा सम्पूर्ण मानव जाति को अपने कैनवास में समेटे है। उनकी शिक्षा सार्वभौमिक तथा उन मानवीय मूल्यों को प्रतिपादित करती है, जिनकी उपायदेयता सभी के लिए बराबर है। टैगोर का मानना है कि यदि बालक को एक आदर्श नागरिक बनाना है तो हमें उसमें अच्छे संस्कार, विचारों में परिवर्तन, परिमार्जन तथा परिवर्धन अवश्यमेव लाना होगा और इसके लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर के दार्शनिक चिन्तन को अपने शैक्षिक पृष्ठभूमि में आत्मसात् करना होगा।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर, हुमायूँ (1956) : एजूकेशन इन न्यू आइडिया, जार्ज एलेन एण्ड अनविन, लन्दन।
2. कबीर, हुमायूँ (1961) : सोशल एण्ड प्रैक्टिकल आइडियाज ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर, रवीन्द्रनाथ टैगोर सेन्टेनरी वैल्यूम, 1861-1961।
3. किलपैट्रिक डब्लू. एच. (1952) : फिलासफी ऑफ एजूकेशन, मैकमिलन, न्यूयार्क।
4. गुड, एच.जी. (1948) : ए हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न एजूकेशन, मैकमिलन, न्यूयार्क।
5. ग्रोवेश, एफ.पी. (1925) : ग्रेट एजूकेटर ऑफ दि सेन्चुरी, मैकमिलन, न्यूयार्क।
6. गाँधी, महात्मा (1959) : सच्ची शिक्षा, अनुवादक-श्री रामचौधरी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।
7. चटर्जी, रामानन्द (1931) : दि गोल्डेन बुक ऑफ टैगोर, दि गोल्डेन बुक ऑफ टैगोर कमेटी, कलकत्ता।
8. चक्रवर्ती, अमिया (1961) : सम आसपेक्ट ऑफ टैगोर्स फिलॉसफी ऑफ लाइफ, रवीन्द्रनाथ टैगोर सेन्टेनरी वैल्यूम, 1861-1961।
9. जोशी, चन्द्रा (1956) : विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, भारतीय विद्याभवन, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
10. भट्टाचार्य बी. भूषण (1964) : रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन, जिज्ञासा प्रकाशन, कलकत्ता।
11. भट्टाचार्य, एम.एम. (1961) : रवीन्द्रनाथ टैगोर, किताबमहल, इलाहाबाद।

# महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार और उनकी वर्तमान प्रासंगिकता



shodhshree@gmail.com

डॉ. अंकिता कमल पुरोहित

सहायक प्राध्यापक, लोक महाविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

## शोध सारांश

महात्मा गांधी को जब प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का ज्ञान हुआ तो उन्होंने न केवल स्वयं के जीवन में इसे आत्मसात किया वरन् दुसरो को भी इस हेतु प्रेरित किया। गांधीजी ने स्वयं भी इस हेतु कई प्रयोग किए तथा इन प्रयोगो को समाचार पत्रों व पुस्तकों के माध्यम से लोगों के साथ साझा किया। ताकि दुसरे भी इससे स्वास्थ्य लाभ ले सके। गांधीजी चाहते थे कि देश का प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर स्वावलंबी बन सके। ये विचार आज वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मन से ही स्वस्थ देश का निर्माण संभव है। एक बार प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति द्वारा आहार, विहार, नियम को जानकर और जीवन में उसका अनुसरण कर व्यक्ति फिर बीमार नहीं पड़ता। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा मात्र चिकित्सा नहीं वरन् जीवन जीने की एक कला है। वर्तमान में शरीर को स्वस्थ रखने और नई-नई बीमारियों से बचने हेतु तथा इन बीमारियों के इलाज हेतु प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व और बढ़ गया है।

**संकेताक्षर :** मिट्टी का पुतला, कुदरत, निर्विषयी, आरोग्य, अद्वैत चिकित्सा, जीने की कला, गीली मिट्टी, स्वाभिमान, सटीक इलाज, स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक आहार।

**प्रा**कृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) इलाज की दवामुक्त प्रणाली हैं, जहां शरीर की स्वआरोग्य क्षमता, अविषाक्ता के अलावा सेहतमंद जीवन के सिद्धांतों के आधार पर प्राकृतिक तत्वों से इलाज किया जाता है। इस चिकित्सा में उपवास चिकित्सा, आहार संबंधी सुधार, गीली मिट्टी चिकित्सा, जल चिकित्सा, मालिश चिकित्सा, योग इत्यादि शामिल है। गांधीजी स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा के बहुत बड़े समर्थक थे उन्होंने न केवल इस चिकित्सा को जीवन में स्वयं अपनाया अपितु अन्य लोगों को भी इस हेतु प्रेरित किया। गांधी जी के अनुसार जो व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा को अपने जीवन में अपनाता है उसे कभी किसी की मदद की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्वयं की मदद करने से स्वाभिमान बढ़ता है। गांधीजी ने इस चिकित्सा पद्धति में कई प्रयोग भी किए हैं और रोग के निदान हेतु सटीक इलाज ढूंढने की कोशिश भी की है। वे चाहते थे कि भारत का हर एक व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करे ताकि वह इस क्षेत्र में भी स्वावलंबी बन सके। प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को बताते हुए एक स्थान पर गांधीजी ने कहा भी है कि 'मिट्टी का पुतला, मिट्टी से ठीक करो'।

## अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचारों और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता का अध्ययन व विश्लेषण करते हुए यह ज्ञात करना कि आज तक इस दिशा में हमारे देश में कितना कार्य तथा विकास हुआ है। क्या सरकार द्वारा इस दिशा में कोई प्रयास किया गया है। इस चिकित्सा संबंधी कौन-कौन से कोर्स चलाए जा रहे हैं। साथ ही इस चिकित्सा का वर्तमान में क्या महत्व है इस संबंध में ज्ञान प्राप्त करना।

## शोध प्रविधि

1. इस अध्ययन के लिए प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।
2. स्वयं अवलोकन व साक्षात्कार विधि द्वारा प्राथमिक आकड़े एकत्रित किए गए हैं।

3. प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

### महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार

गांधीजी लिखते हैं कि जिन पंच तत्वों से यह शरीर बना है अर्थात् पृथ्वी (मिट्टी), पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायु। ये तत्व ही इस शरीर के उपचार के साधन हैं।<sup>1</sup>

गांधीजी का कहना था कि प्रकृति के नियमों की अनदेखी करने से बीमारियां फैलती हैं तथा समय रहते उन नियमों का पालन करने से प्रकृति पुनर्जीवित हो जाती है। जो लोग प्राकृतिक नियमों का पालन नहीं करते उन्हें प्रकृति के प्रकोप से बचने के लिए फिजीशियन, डॉक्टर या सर्जन का सहारा लेना पड़ता है। जो प्रकृति को नकारता है उसे पछताना पड़ता है।<sup>2</sup> महात्मा गांधी का मानना था कि यदि हम प्राकृतिक नियमों के विपरीत जाकर कार्य करें तो प्राकृतिक चिकित्सा या अन्य चिकित्साओं की आवश्यकता पड़ती है। यदि प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए जीवन बिताए तो किसी चिकित्सा की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

जोहानस्वर्ग में रहते हुए गांधीजी को कब्ज एवम् सिरदर्द की समस्या का सामना करना पड़ता था। आहार में कुछ परिवर्तन के बाद सिरदर्द में कुछ आराम मिला किंतु कब्ज की परेशानी सदा रही।<sup>3</sup> गांधीजी ने जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' नामक पुस्तक का अध्ययन किया था। उसके बाद से ही वे प्राकृतिक चिकित्सा को अपने जीवन में उतारने लगे। 1901 तक गांधीजी कब्ज से बहुत परेशान रहते थे और समय-समय पर फ्रुट साल्ट लेते थे कई बार न चाहते हुए भी उन्हें दवा का प्रयोग करना पड़ता था।<sup>4</sup> किंतु इस पुस्तक को पढ़ने के बाद उन्हें कभी कब्ज हेतु फ्रुट साल्ट या अन्य दवा का प्रयोग नहीं किया।

### मिट्टी

जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' पुस्तक में मिट्टी के उपचार के बारे में पढ़कर, यह उपचार तुरंत शुरू किया। उपचार की विधि - खेत या स्वच्छ स्थान की लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें जरूरत के अनुसार पानी डालकर साफ, पतले कपड़े में उसे लपेट कर पेट पर रखकर उसपर पट्टी बांध दी। गांधीजी यह पट्टी रात में प्रयोग किया करते थे। इससे उन्हें धीरे-धीरे कब्ज से मुक्ति मिल गई।<sup>5</sup> उसके बाद से वे मिट्टी के उपचार स्वयं पर और अपने मित्रों पर करते रहे। जिसमें वे अधिकांशतः सफल ही रहे।

गांधीजी ने सिर दर्द, फोड़े, फुन्सी, बुखार, बिच्छु के डंक तथा टाइफाइड इत्यादि के इलाज हेतु मिट्टी पट्टी का प्रयोग किया था। इस प्रयोग में सिर्फ इस बात का ध्यान रखना होता था कि मिट्टी, साफ, कंकर रहित, छनी हुई, सूखी तथा रेशम के समान होनी चाहिए।<sup>6</sup> इस तरह कई रोगों के निदान हेतु यह मिट्टी पट्टी कारगर सिद्ध हुई।

गांधीजी के इन्हीं विचारों को आगे बढ़ाते हुए INO (अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संगठन) द्वारा लोगों को योग व मिट्टी स्नान का ज्ञान व लाभ समझाने हेतु 21 जून 2020 को 73 लाख लोगों के द्वारा सामूहिक योगाभ्यास करने व मिट्टी स्नान का विश्व रिकार्ड बनाया गया।<sup>7</sup> इस तरह गांधीवादी विचारों को फैलाने का कार्य आज भी विभिन्न संस्थाओं द्वारा जारी है।

### पानी

प्राचीन काल से ही पानी द्वारा भी रोग का इलाज किया जाता रहा। इस संबंध में गांधीजी के समय में प्रचलित क्युने की पुस्तक हिंदुस्तान में बहुत प्रसिद्ध हुई थी। उसका अनुवाद भी भारतीय भाषाओं में हुआ था। गांधीजी लिखते हैं कि क्युने के सर्वाधिक अनुयायी आंध्र प्रदेश में मिलते हैं।<sup>8</sup> उक्त कथन से स्पष्ट है कि गांधीजी के पूर्व भी आंध्र देश के क्षेत्र अर्थात् दक्षिण भारत में कई लोगों ने पानी के उपचार को अपनाया था।

ठंडे पानी से दिए जाने वाले स्नान में कटि स्नान, घर्षण स्नान, टब स्नान (टबबाथ), गीली चद्दर की लपेट इत्यादि आते हैं। इस स्नान का प्रयोग, बुखार, घमोरी, पित्ती (Prickly Heat) खुजली, चर्म रोग, चेचक इत्यादि रोगों के निदान हेतु गांधीजी ने स्वयं किया था।<sup>9</sup> इसमें कटि व घर्षण स्नान का वर्णन क्युने की पुस्तक में भी है। गीली चद्दर लपेट का प्रयोग भारत में सर्वप्रथम गांधीजी द्वारा प्रारंभ किया गया ऐसा प्रतीत होता है।

राष्ट्रपिता इस लपेट की सराहना करते हुए नहीं अघाते थे। एक बार उन्होंने यंग इंडिया में इस संबंध में बताया था कि इस लपेट के द्वारा उन्होंने अपने बड़े बेटे मणिलाल गांधी को काला ज्वर जैसे भयंकर रोग से मुक्त किया था।<sup>10</sup> इसी तरह गांधीजी गर्म पानी द्वारा भी उपचार किया करते थे।

गांधीजी कहते हैं कि गर्म पानी के प्रयोग द्वारा भी कई रोगों में राहत प्राप्त होती है। जैसे शरीर के सूजन वाले

हिस्से में गर्म पानी की पट्टी रखकर, दर्द वाले स्थान पर गर्म पानी की पिचकारी का प्रयोग कर राहत मिल सकती है। यहां इस इलाज हेतु आयोडीन का उपयोग भी किया जाता रहा है किंतु आयोडीन महंगी चीज है। गरीब के घर में इलाज हेतु आयोडीन नहीं होता किंतु पानी अवश्य होता है।<sup>11</sup> इस तरह गांधीजी देश के आर्थिक रूप से असक्षम लोगों को प्राकृतिक इलाज लेने हेतु भी प्रेरित करते हैं।

इसी तरह बिच्छु के काटे हुए भाग पर भी गर्म पानी का प्रयोग कर कुछ आराम तो प्राप्त किया जा सकता है। सर्दी लगे या कंपकंपी चढ़े तो भी भाप दी जा सकती है। गठिया में, बलगम होने पर, गला दर्द होने पर भी भाप द्वारा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।<sup>12</sup> गांधीजी के ये विचार आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। गले की पट्टी तथा भाप लेने की विधि का प्रयोग अब बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। प्रमुख रूप से कोरोना काल के दौरान इसका प्रयोग बढ़ गया है।

## हवा

हवा शरीर के लिए सबसे जरूरी चीज है। हवा का कार्य रक्त शुद्ध करना है। मगर हमें फेफड़ों में हवा भरना और उसे बाहर निकालना ठीक तरह से नहीं आता इसलिए हमारे रक्त की शुद्धि भी पूरी तरह नहीं हो पाती। गांधीजी मुंह से साँस लेने वाले को नाक से श्वास लेने हेतु प्रेरित करते हैं। क्योंकि नाक से श्वास लेना एक स्वतः क्रिया है। यदि लोग मुंह बंद करके सोये तो नाक अपना कार्य स्वतः करेगी। इसके अलावा गांधीजी लोगों को स्वस्थ रहने हेतु प्राणायाम सिखाने तथा जलेनति करने हेतु भी कहते हैं। कुछ लोग पूरा मुंह ढककर सोते हैं उसके लिए भी गांधीजी मना करते हुए कहते हैं कि मुंह ढककर सोने से नाक को शुद्ध हवा प्राप्त नहीं हो पाती है इसलिये ऐसे स्थान पर सोये जहां शुद्ध हवा हो तथा चादर गले तक ही ओढ़ें, साथ ही सिर को यदि ठंड बरदास्त न हो तो उस पर एक रुमाल बांध लेना चाहिए।<sup>13</sup> इस तरह गांधीजी हवा के जीवन में महत्व को बताने के साथ सही तरह से श्वास लेने हेतु भी लोगों को प्रेरित करते थे।

## सूर्य स्नान

जैसे आकाश, हवा, पानी आदि तत्वों के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता, वैसे ही तेज (सूर्य के प्रकाश) के बिना भी नहीं हो सकता। सूर्य स्नान का महत्व बताते हुए गांधीजी लिखते हैं, सूर्य स्नान करके भी साफ और तंदुरुस्त हो सकते हैं। दुर्बल मनुष्य या जिसका खून सूख गया हो वह यदि प्रातः काल के सूर्य

की किरण ले तो उसके चेहरे का फीकापन और दुर्बलता दूर हो जाएगी और पाचन क्रिया यदि मंद हो तो वह जाग्रत हो जाएगी। प्रातः काल सूर्य स्नान लेना चाहिए। इसे लेने से कैंसर जैसे रोग भी ठीक हो सकते हैं। शरीर में यदि घाव हो तो उसे भरने में भी सूर्य स्नान लाभप्रद है। इस क्रिया में बस एक सावधानी यह रखे कि सिर पर धूप कभी न लें।<sup>14</sup> सूर्य स्नान से हमें कैल्शियम भी स्वतः ही मिल जाता है। इन विभिन्न लाभों के कारण गांधी जी प्रातः सूर्य स्नान हेतु लोगों को प्रेरित करते थे।

## आहार

स्वास्थ्य हेतु आहार अत्यंत महत्वपूर्ण है। गांधीजी लिखते हैं कि भोजन सामान्यतः तीन बार खाना चाहिए। शहरों में कुछ लोग समय-समय पर कुछ न कुछ खाते रहते हैं। यह आदत कष्टदायक हो सकती है। पाचनतंत्र को आराम देना भी आवश्यक है।<sup>15</sup> अर्थात् तीन बार से अधिन खाने पर पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। जो स्वास्थ्य हेतु अहितकर है।

आहार लेते समय भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। एक बार में एक ही तरह का आहार लेना चाहिए। आमतौर पर लोग साग, सब्जी, फल के अलावा चपाती, चावल, दाल, दूध, घी, गुड़ और तेल का प्रयोग भोजन में करते हैं। यह सब एक साथ खाना अहितकर है। भोजन के साथ कच्चे सलाद का प्रयोग करना चाहिए। मीठे पकवान जहां तक संभव हो नहीं खाने चाहिए। इसके स्थान पर गुड़, दूध का प्रयोग किया जा सकता है।<sup>16</sup> गांधीजी गेहूं तथा चावल से प्राप्त चोकर को भी भोजन में किसी न किसी रूप में शामिल करते हेतु लोगों से कहते थे। ताकि लोगों को कब्ज व इससे जुड़ी अन्य कई बीमारियों से मुक्ति मिल सके।<sup>17</sup> गांधीजी चोकर को स्वास्थ्य हेतु बेहद लाभदायक मानते थे। यह सर्वदा सत्य है कि कई बीमारियां पेट से ही पैदा होती हैं। इसलिए यदि ऐसे आहार को खाने में महत्व दिया जाय जो स्वास्थ्यवर्द्धक हो और पेट भी साफ रखे तो चोकर एक महत्वपूर्ण विकल्प साबित हो सकता है।

दिन में कम से कम खटाई का सेवन अच्छा होता है। नींबू का रस ठंडे या गर्म पानी के साथ लेना चाहिए।<sup>18</sup> मलेरिया और कब्ज दूर करने हेतु भी गांधीजी ने इमली प्रयोग में लायी जिससे अच्छे परिणाम प्राप्त हुए थे।<sup>19</sup> वर्तमान में नींबू के महत्व को देखते हुए इसका प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया है। मोटापा कम करने के लिए भी लोग खाली पेट नींबू पानी पीते हैं।

गांधीजी हरी पत्तेदार सब्जियों को महत्व देते थे। वे स्वयं सरसो और सोवा की पत्तियां, शलगम, गाजर, मूली और मूंगफली के पत्तो का प्रयोग करते थे। कच्चे सलाद को स्वास्थ्य हेतु हितकर मानते थे।<sup>20</sup> स्वास्थ्य वर्धन हेतु गांधीजी सब्जियों को कच्ची खाने पर जोर देते थे जिससे गर्म करने से सब्जियों के तत्व नष्ट न हो और लोगों को पूरा पोषण मिल सके।

6 अक्टूबर 1946 के हरिजन में गांधीजी ने 14 जून 1946 के हरिजन पत्रिका में दातार सिंह द्वारा वनस्पति पर रोक लगाए जाने का महात्मा गांधी ने समर्थन किया। गांधीजी लिखते हैं कि वनस्पति घी शब्द पर किसी को आपत्ति क्यों नहीं हुई जबकि वनस्पति का अर्थ होता है सब्जियां, फूल, पत्तियां और फल। किंतु वनस्पति घी जहर है। वनस्पति कभी घी नहीं हो सकता। व्यापारियों को ऐसे उत्पादों को घी के नाम से नहीं बेचना चाहिए।<sup>21</sup> गांधीजी चाहते थे कि बाजार में वनस्पति घी के नाम से बिकने वाले इस नकली घी पर रोक लगाई जाए।

चीनी की अपेक्षा गुड़ अधिक स्वास्थ्य वर्धक है। लोग गुड़ के स्थान पर चीनी देकर बच्चों को पौष्टिक आहार से वंचित कर रहे हैं। गांधीजी ने देश के इस पौष्टिक आहार के उत्पादन को ग्रामीणों द्वारा बंद न किए जाने पर जोर दिया।<sup>22</sup> गांधीजी का मानना था कि यदि इस पौष्टिक आहार का उत्पादन बंद हो गया तो भविष्य में यह आहार विलुप्त हो सकता है। उनकी दृष्टि में गुड़ चीनी और मिठाई का सबसे अच्छा विकल्प था। वर्तमान में भी प्राकृतिक चिकित्सकों के द्वारा गुड़ को इसके गुणों के कारण अधिक महत्व दिया जाता है।

अधिकांश बुखार या बीमारियां पेट की गड़बड़ी से उत्पन्न होते हैं। इसलिए गांधीजी सबसे पहले मरीज को उपवास करने के लिए कहते थे। जिसमें फलों का रस व फलाहार इत्यादि लिया जा सकता है।<sup>23</sup> इस दौरान पेय पदार्थों के अधिक सेवन पर जोर दिया जाता है ताकि पेट साफ हो सके और मरीज को जल्द स्वास्थ्य लाभ हो सके। वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा भी इस पर बल दिया जाता है।

### मसाज

जिन मरीजों को पैर में दर्द रहता हो या जिनका रक्त संचार सही न हो। ऐसी दशा में बर्फ की मसाज करने से काफी आराम मिलता है। इस प्रकार की इलाज गर्मियों के दिनों में काफी फायदेमंद होता है। सप्ताह में एक दिन मरीज को बर्फ की मसाज देने से ठंड में होने वाली

परेशानियों से भी काफी हद तक बचा जा सकता है।<sup>24</sup> गांधीजी के एक बार बीमार पड़ने पर डॉ. एलिनसन ने भी उन्हें सलाह दी कि वे गुनगुने पानी से नहाएँ। और शरीर के प्रभावित अंगों पर तेल की मसाज कर और खुली हवा में 15-30 मिनट पैदल चला करें।<sup>25</sup> वर्तमान समय में आधुनिकता ने लोगों को अधिकतर बैठे-बैठे या खड़े-खड़े कार्य करने पर मजबूर कर दिया। जो कि अधिकतर कंपनी में कार्य करने वालों तथा महिलाओं की परेशानी है। इन्हें शरीर के विभिन्न अंगों में दर्द की समस्या सदैव बनी रहती है। इस दर्द को मसाज के द्वारा आसानी से दूर किया जा सकता है। जो आज विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सालयों में सिखाया भी जाता है।

### पैदल चलना

गांधीजी पैदल चलने को स्वास्थ्य हेतु अत्यंत लाभदायक मानते थे। उनके जीवन में आनंद का अनुभव शाक सब्जी के आहार और खुली हवा में व्यायाम करने से आता था। वे रोजाना 8 किमी. चलते थे। दिन में 3 समय चलते थे सुबह, भाम और रात में।<sup>26</sup> इस तरह गांधीजी की दिनचर्या व्यायाम से शुरू होती थी। जिसमें पैदल चलना सबसे महत्वपूर्ण था।

### प्रार्थना

आनंद टी. हिंगोरानी को लिखे एक पत्र में गांधीजी प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ बताते हुए लिखते हैं कि वह चिकित्सा जो इंसान को लाभ पहुंचाती है। गांधीजी का कहना था कि हमारा शरीर पंच तत्वों हवा, मिट्टी, पानी, आकाश और सूरज से मिलकर बना है। अतः इसके इलाज हेतु राम नाम चिकित्सा ही सही रूप में प्राकृतिक इलाज है। यह इलाज कभी व्यर्थ नहीं जाता। ईश्वर, अल्लाह, खुदा सभी एक ही ईश्वर के नाम है। व्यक्ति अपनी आस्था के अनुसार उसका नाम ले सकता है। विश्व की बड़ी जनसंख्या के द्वारा इस चिकित्सा को अपनाया जाना चाहिए। यहां गांधीजी मात्र कुछ ही लोगों द्वारा इस चिकित्सा पद्धति को अपनाए जाने पर चिंता व्यक्त करते हैं।<sup>27</sup> अर्थात् इस चिकित्सा के दौरान यदि ईश्वर का नाम भी मनुष्य जपता रहे तो इंसान के स्वास्थ्य में दुगुना लाभ होगा। और इस तरह लोग बड़े-बड़े अस्पतालों व डॉक्टर के हाथ से बच जायेंगे। प्राकृतिक चिकित्सा में प्रार्थना को शामिल करने वाले गांधीजी ही थे।

### अपराधियों के लिए प्राकृतिक चिकित्सा

गांधीजी का मानना था कि अपराधी भी किसी

कारणवश अपराध करते हैं इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उनकी चिकित्सा करने के साथ ही गुनाह को एक बीमारी के तौर पर इलाज कर गुनाहगार को सुधारा जा सकता है। गुनाह सामाजिक अस्वस्थता का लक्षण हैं जबकि प्राकृतिक चिकित्सा पर उसने विचार बना लिया तो शरीर, मन, आत्मा का इलाज हो सकता हैं। यदि व्यक्ति के कार्य में, मन और आत्मा के इलाज का भी सम्मिलन हो तो स्वस्थ समाज का गठन संभव हो सकेगा।<sup>28</sup> सभी अपराधियों को यदि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सही रास्ते पर ना भी लाया जा सके किंतु बाल अपराधियों को गांधीजी द्वारा बताए गए इस तरीके से अवश्य सुधारा जा सकता हैं।

### महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी प्रयोग

महात्मा गांधी ने प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मात्र इलाज नहीं किया वरन् स्वयं पर, अपने परिवार के लोगों और नजदीक सहयोगियों पर कुछ प्रयोग भी किए। धीरे-धीरे उन्हें इस क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त होता गया और मरीजों पर भी इसका सफल प्रयोग उन्होंने किया।

गांधीजी 'रिटर्न टू नेचर' पुस्तक से बड़े प्रभावित थे। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए गांधीजी ने अपने कुछ सहयोगियों के साथ मिलकर मड पैक का प्रयोग बोअर युद्ध में जख्मी सैनिकों के इलाज के लिए किया था। जिसके बाद भारत वापस लौटकर उन्होंने इसका प्रयोग भारत में भी किया। आहार संबंधी भी गांधीजी ने कई प्रयोग किए जो अद्वैत चिकित्सा के नाम से उन दिनों में काफी लोकप्रिय हुआ था। गांधीजी मिट्टी के प्रयोग के एक प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जहाज से दक्षिण अफ्रीका जाते समय उनके बेटे रामदास जो कि 8 साल का था, उसका हाथ टुट गया। तो डॉक्टर ने हड्डी बैठा दी और गांधीजी ने उसका हाथ लकड़ी की पट्टियों के बीच बांध रूमाल की गलपट्टी में लटका दिया। स्टीमर के डॉक्टर ने सलाह दी कि घाव को किसी डॉक्टर से साफ करा कर पट्टी बंधवा ली जाए। किंतु इस दौरान गांधीजी मिट्टी और पानी के प्रयोग करते रहते थे। तो उन्होंने पुत्र रामदास की अनुमति से घाव साफ कर मिट्टी की पट्टी बनाकर उस घाव पर बांध दी। रोज यह क्रिया की जाती और घाव 1 महीने में बिल्कुल ठीक हो गया। जितना समय स्टीमर के डॉक्टर ने भी बताया था। इस तरह गांधीजी के घरेलु उपचार पर विश्वास और बढ़ गया। घाव, बुखार, अर्जीण, पीलिया इत्यादि रोगों के लिए मिट्टी, पानी और उपवास के प्रयोग गांधीजी ने कई छोटे, बड़े और अनेक

स्त्री-पुरुषों पर किये। उनमें से अधिकतर सफल भी हुए।<sup>29</sup>

14 दिसंबर 1934 के हरिजन अंक में गांधीजी ने खुर्जा निवासी श्री शर्मा के सन एण्ड लाइट हास्पिटल (सूर्य और प्रकाश अस्पताल) बंद कराने के पीछे अपना हाथ होते हुए लिखा था कि जब तक किसी चिकित्सा की पूर्ण जानकारी न हो जाए अस्पताल खोलना या चिकित्सा संबंधित पुस्तके लिखना गलत हो सकता है। साथ ही वे लिखते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सक बनने की सच्ची लगन हो तो हम निश्चित ही बन सकते हैं। गांधीजी यहां स्वयं को भी एक अधकचरा प्राकृतिक चिकित्सक कहते हैं।<sup>30</sup> यहां गांधीजी प्राकृतिक चिकित्सक बनने के पूर्व, उसके संबंध में पूर्ण ज्ञान लेने की बात कहते हैं। वर्तमान में भी प्राकृतिक चिकित्सा के और कालेज व विश्वविद्यालय खोलकर इस ज्ञान को पूरे देश में फैलाने की आवश्यकता है।

3 अक्टूबर 1935 को पं. जवाहर लाल नेहरू को लिखे पत्र में गांधीजी कमला नेहरू की बीमारी के संबंध में लिखते हैं कि उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इलाज दिया जाना ही उचित है साथ ही वे उदाहरण देते हुए नेहरू जी को समझाते हैं कि कई चीड़ फाड़ के काबिल (अर्थात् आपरेशन द्वारा) बताए गए रोग भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अच्छे हुए हैं। चूंकि इस समय नेहरू जी जर्मनी में थे जहां सेनेटोरियम में उनका इलाज चल रहा था। इस संबंध में गांधीजी ने नेहरू जी को सुझाव दिया कि जर्मनी में अनेक प्राकृतिक चिकित्सालय हैं। कमला नेहरू का इलाज वे इन्हीं प्राकृतिक चिकित्सालयों में कराए।<sup>31</sup>

स्वास्थ्य संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी पोलैंडवासी प्रोफेसर महोदय ने गांधी जी को दी थी कि कई बीमारियों की जड़ तो चिंता ही है। अगर स्वास्थ्य रहना है निरोग रहना है तो सब ईश्वर पर छोड़ कर चिंता भी ईश्वर पर छोड़ दे।<sup>32</sup>

19 अक्टूबर 1935 के हरिजन में छपे लेख में गांधीजी ने श्री एम. एस. नारायण द्वारा बिच्छु के डंक के इलाज के एक सरल उपाय के रूप में साधारण नमक के प्रयोग का, वर्णन कर गांधी जी ने लोगों से इसके प्रयोगों के परिणाम सूचित करने का आग्रह लोगों से किया था।<sup>33</sup> इस प्रकार गांधीजी समाचार पत्रों के माध्यम से भी प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न प्रयोगों को भी लोगों से साझा करते रहते थे।

हिंद स्वराज में गांधीजी लिखते हैं कि हमारे शरीर को संभालने का काम हमारा है न कि डाक्टर का। हम

शरीर में रोग होने पर अपने शरीर को संभालने का काम डाक्टर को देते हैं। वे रोगों को दूर कर देते हैं। गांधीजी का कहना था कि यदि व्यक्ति बहुत खाता है उससे बदन बड़ा, अजीर्ण हो जाए तो डाक्टर दवा देता है, व्यक्ति दवा खाकर ठीक हो जाता है और फिर से अपनी दिनचर्या बिगाड़ कर बहुत खाने लगता है। फिर रोग को आमंत्रित करता है फिर डाक्टर से दवा लेता है। यदि यहाँ डाक्टर बीच में न आए तो कुदरत (अर्थात् प्रकृति) स्वयं अपना काम करती और व्यक्ति निर्विषयी (व्यसन मुक्त) होकर सुखी हो जाता।<sup>34</sup> यहाँ गांधीजी लोगों को प्रकृति के अनुरूप जीना सीखने की बात समझाना चाहते हैं। अर्थात् बीमार होने पर यदि व्यक्ति गोली न ले तो स्वतः ही ठीक हो जाए या सजा भुगतकर आगे भविष्य में सतर्क रहे और अत्यधिक न खाये, किंतु दवा लेकर वह अपनी दिनचर्या को वैसा ही बनाये रखता है।

रायपुर (छ.ग.) के सबसे प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सालय गुरुगोस्वामी प्राकृतिक चिकित्सालय के डा. प्रणेश गोस्वामी का भी कहना है कि वर्तमान में प्राकृतिक चिकित्सालयों की जरूरत ही इसलिए पड़ती है क्योंकि व्यक्ति प्रकृति के अनुरूप जीवन व्यतीत नहीं करते। वर्तमान में मोबाइल, टी.वी., लैपटॉप, फास्टफूड, गलत समय पर सोना, गलत समय पर उठना इन सभी चीजों ने इंसान के स्वास्थ्य को बिगाड़ दिया है। यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा अपनाए तो स्वयं, रोग का इलाज कर सकते हैं। साथ ही जब प्रकृति आवाज दे तभी हम सुन ले तो बीमार ही न पड़े। अर्थात् जब नींद आए तब सोना, जब भूख लगे तब खाना (सही भोजन न कि फास्ट फूड), जब व्यास लगे तब पानी पीना न कि कोल्ड्रिंक। पहले कठिन परिश्रम से नींद आती थी आज इंसान मानसिक रूप से थक कर सोता है। इसलिए आज प्रकृति के अनुरूप जीवन बिताने की नितांत आवश्यकता है।<sup>35</sup> जिससे हमें डाक्टर की जरूरत ही न पड़े।

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य छगनलाल सोनवानी का भी इस संबंध में कहना है कि प्राकृतिक चिकित्सा जीने की एक कला है जिस तरह चिड़िया को कोई उठाता नहीं है। वे शाम होते ही सो जाती है। पेट भरने पर वह नहीं खाती है। किंतु मनुष्य प्रकृति के अनुरूप नहीं चलता इसलिए रोग उत्पन्न होते हैं।<sup>36</sup> अर्थात् हम प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जीवन कैसे जीना, यह भी सीखते हैं।

गांधीजी ने देश की जनता के आरोग्य की समस्या को हल करने हेतु अप्रैल 1946 को उरुली कांचन (जि.

पुणे) में देश के प्रथम प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की थी। गांधीजी के प्रयास से ही पूरे देश में प्राकृतिक चिकित्सा का व्यापक प्रचार-प्रसार संभव हो सका।<sup>37</sup> इसके पश्चात ही संपूर्ण भारत देश में विभिन्न स्थानों पर प्राकृतिक चिकित्सालय व कुछ प्रदेशों में इस चिकित्सा पर आधारित कालेज भी खुले।

महात्मा गांधी की प्रेरणा से कई लोगों ने प्राकृतिक चिकित्सालय खोले व इस प्राचीन चिकित्सा पद्धति को पुनर्स्थापित करने का कार्य किया। इस क्षेत्र में गांधी से प्रेरित प्रमुख व्यक्तियों में संत विनोबा भावे, भारत रत्न मोरारजी भाई देसाई, डा. बालेश्वर प्रसाद, डा. महावीर प्रसाद पोद्दार, डा. शरण प्रसाद, श्री बाल्कोवा भावे, महात्मा जगदीश्वरानंद जी, डा. श्री मन्नारायन अग्रवाल तथा अन्य हजारों लोग हैं जिन्होंने गांधीजी से प्रेरित होकर इस क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2003 से ही INO (International Naturopathy Organisation) कोर कमेटी ने निर्णय लिया था कि केंद्र सरकार द्वारा विधिवत प्राकृतिक चिकित्सा दिवस की घोषणा करने तक 2 अक्टूबर को INO द्वारा स्वयं घोषित 'नैचुरोपैथी डे' का आयोजन किया जायेगा।<sup>38</sup> इस हेतु हस्ताक्षर अभियान भी चलाया गया था। फलस्वरूप 2018 में केंद्र सरकार द्वारा 18 नवंबर को राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा दिवस मनाने की घोषणा की गई। आज INO भी इस पद्धति का ज्ञान घर-घर पहुंचाने हेतु अग्रसर हैं।

1995 में भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी विभाग का गठन किया गया था। यह विभाग स्वास्थ्य की इलाज संबंधी विभिन्न पद्धतियों के विकास हेतु काम करता था। आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी सिद्ध और होम्योपैथी के क्षेत्रों में शिक्षा और अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित करने के साथ इसका नाम बदलकर 2003 में आयुर्वेद योग, और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी सिद्ध और होम्योपैथी विभाग किया गया। 9 नवंबर 2014 को इसका विस्तार कर आयुष मंत्रालय का गठन किया गया है।<sup>39</sup> प्राकृतिक चिकित्सा को बढ़ावा देने हेतु भी यह मंत्रालय प्रयासरत है।

वर्तमान में इस पद्धति के प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण व प्रशिक्षण हेतु BNYS (बैचलर इन नैचुरोपैथी एंड योगा) तथा डिप्लोमा कोर्स (डिप्लोमा इन नैचुरोपैथी एंड योगा) चलाया जा रहा है। किंतु इस डिप्लोमा कोर्स को भी मान्यता नहीं दी गई है।<sup>40</sup> तथा स्नातकोत्तर कोर्स के पूरे देश में मात्र 3 संस्थान ही हैं।

**परास्नातक तथा स्नातक आयुष कालेज (प्राकृतिक चिकित्सा)  
संस्थान की देश में संख्या और प्रवेश क्षमता, 1.04.2018**

	पहले से रजिस्टर्ड चिकित्सक	स्नातक कोर्स		स्नातकोत्तर कोर्स	
		संस्थानों की संख्या	प्रवेश क्षमता	संस्थानों की संख्या	प्रवेश क्षमता
प्राकृतिक चिकित्सा	2485	26	1730	3	47

स्रोत : Central Council of Indian Medicine (CCIM)  
(ii) UG/PG Colleges, Ministry of Ayush, 2018

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्तमान में स्नातक व परास्नातक कालेज की संख्या व प्रवेश क्षमता अत्यंत सीमित है। इस दिशा में लोगों को अधिक से अधिक जागरूक करने तथा कालेज की संख्या बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

### निष्कर्ष

यह युग प्रतिस्पर्धा व ज्ञान का युग है। जिसमें मानव, तनाव, मानसिक असंतुलन व इनसे संबंधित अन्य रोगों का शिकार हो रहा है। ऐसे में इन विभिन्न रोगों की एक दवा मात्र प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग ही है। तत्कालीन समय में जबकि रोग थे, डाक्टर भी थे, दवा भी थी किंतु लोगों के पास इलाज हेतु पैसे न थे, गरीब व्यक्ति के पास तो थोड़ी सी दवा खरीदने हेतु भी आवश्यक पैसे नहीं होते थे। इसलिए गांधीजी ने मिट्टी के लेप, कटि स्नान, मालिश, संतुलित भोजन, उपवास अर्थात् हवा, पानी, व मिट्टी से संबंधित इलाज लोगों को बताया ताकि गरीब व्यक्ति भी आवश्यक चिकित्सीय सुविधा के अभाव में कष्ट न झेले और जो हवा, मिट्टी व पानी हमारे पास मुफ्त में उपलब्ध हैं। उससे ही स्वयं इलाज कर स्वस्थ हो सके।

गांधीजी ने ही इस चिकित्सा पद्धति को संपूर्ण देश में फैलाया और कई लोगों के प्रेरणा स्रोत बने। इस पद्धति में प्रार्थना का विचार अर्थात् इस चिकित्सा के दौरान जो राम नाम (अपने धर्म के अनुरूप भगवान का नाम लेना) लेने संबंधी विचार, गांधीजी से पूर्व किसी अन्य ने नहीं दिया। ये कार्य केवल यही महात्मा कर सकते थे। निः संदेह इसका स्वास्थ्य पर अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही गांधीजी ने जो आहार संबंधी प्रयोग कर अपने विचार दिए हैं उन्हें आज स्वास्थ्य लाभ हेतु आत्मसात किये जाने की नितांत आवश्यकता है। गांधीजी के अपराधियों के लिए

प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार को बाल अपराधियों पर अवश्य प्रयोग करना चाहिए। वर्तमान समय में भी समाज, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा देश के विकास हेतु गांधीजी के ये विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं।

आज के बच्चे, कल का भविष्य है। इस कारण शिक्षा के साथ-साथ उनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य हेतु भी प्राकृतिक चिकित्सा व योग अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः विद्यालयों में योग के साथ ही स्वस्थ रहने हेतु एक सप्ताह का कोर्स चलाया जा सकता है जिससे बच्चे स्वयं के शरीर के बारे में ज्ञान प्राप्त कर, स्वस्थ रखने के तरीके जान सकें। ताकि उनका व दुसरो का भविष्य भी रोग मुक्त हो सके। यदि बचपन से ही बच्चों को प्राकृतिक चिकित्सा अर्थात् प्रकृति के अनुरूप जीने की कला सिखाई जाए तो वे कभी बीमार ही न पड़े। आज आयुष मंत्रालय के अंतर्गत प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में भी कार्य किए जा रहे हैं तथापि आज ऐसे कालेज व विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है जो इस विषय का एक निश्चित कोर्स के अंतर्गत पूर्ण ज्ञान विद्यार्थियों को दे सके। ये कोर्स हर राज्य व हर जिले में अब तक उपलब्ध नहीं है। इस क्षेत्र में अभी और कार्य किया जाना आवश्यक है। आज प्रत्येक राज्य के प्रत्येक जिले में प्राकृतिक चिकित्सालय खोले जा चुके हैं। तथापि सरकार की ओर से भी प्राकृतिक चिकित्सालय हर राज्य में खोले जाने चाहिए ताकि कम आय वाले लोगों की पहुंच में भी यह चिकित्सा आ सके। गांधीजी भी यह चाहते थे कि हमारे देश में ही ऐसे संस्थान, कालेज व विश्वविद्यालय हो जो इस विषय की शिक्षा दे सकें ताकि हमारे देश का भविष्य स्वस्थ व उज्ज्वल हो सके। स्वस्थ शरीर से ही स्वस्थ देश का निर्माण संभव है। यदि इस क्षेत्र में सही तरीके से काम किया जाए तो निश्चित ही गांधीजी के सपनों के स्वस्थ भारत का निर्माण संभव हो पाएगा और हमारा देश अपने स्वर्णिम भविष्य की ओर अग्रसर होगा।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गांधीजी, आरोग्य की कुंजी, (अनु. सुशीला नय्यर), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1948, पुनर्मुद्रण, 2013, पृ. 34
2. हरिजन, 15.09.1946
3. गांधी, मोहनदास करमचंद, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, (अनु. काशीनाथ त्रिवेदी), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1947, पुनर्मुद्रण 2012, पृ. 242
4. गांधीजी, आरोग्य की कुंजी, पूर्ववत्, पृ. 34
5. गांधी, मोहनदास करमचंद, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पूर्ववत्, पृ. 242
6. गांधीजी, कुदरती उपचार, (संपादक - भारतरत्न कुमारप्पा), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1954, पृ. 11-12
7. www.inosurya.com, retrieved at 4 pm on 3 August 2021
8. गांधीजी, आरोग्य की कुंजी, पूर्ववत्, पृ. 38
9. गांधीजी, कुदरती उपचार, पूर्ववत्, पृ. 15
10. जिंदल, राकेश, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर (उ.प्र.), 2005, पृ. 268
11. गांधीजी, कुदरती उपचार, पूर्ववत्, पृ. 15
12. गांधीजी, आरोग्य की कुंजी, पूर्ववत्, पृ. 44-45
13. वही, पृ. 5
14. गांधीजी, कुदरती उपचार, पूर्ववत्, पृ. 18-19
15. महात्मा गांधी और प्राकृतिक चिकित्सा, (संकलन-सत्यलक्ष्मी, अवंतिका, पवन कुमार), राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 7
16. गांधी, मोहनदास करमचंद, शाकाहार के मूल तत्त्व, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1959, पृ. 32
17. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-62, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1975, पृ. 27
18. गांधी मोहनदास करमचंद, आरोग्य की कुंजी, पूर्ववत्, पृ. 13
19. गांधी, मोहनदास करमचंद, आहार और आहार नियम, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1949, पृ. 35
20. गांधी, मोहनदास करमचंद, शाकाहार के नैतिक तत्त्व, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1959, पृ. 30
21. हरिजन, 6.10.1946
22. हरिजन, 1.2.1935
23. गांधी, मोहनदास करमचंद, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पूर्ववत्, पृ. 292
24. महात्मा गांधी और प्राकृतिक चिकित्सा, पूर्ववत्, पृ. 12
25. गांधी, मोहनदास करमचंद, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पूर्ववत्, पृ. 438
26. महात्मा गांधी और प्राकृतिक चिकित्सा, पूर्ववत्, पृ. 41
27. हरिजन, 3.3.1946
28. गांधी, मोहनदास करमचंद, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पूर्ववत्, पृ. 258
29. वही, पृ. 279
30. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-59, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1974, पृ. 475-76
31. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-62, पूर्ववत्, पृ. 6
32. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-34, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1970, पृ. 469
33. संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-62, पूर्ववत्, पृ. 44-45
34. गांधी, मोहनदास करमचंद, हिंद स्वराज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 84
35. साक्षात्कार, प्रणेश गोस्वामी, गुरु गोस्वामी प्राकृतिक चिकित्सालय, आनंद नगर, रायपुर, छ.ग., 31.03.2021
36. साक्षात्कार, छगनलाल सोनवानी, अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य, भनपुरी, रायपुर, छ.ग., 28.03.2021
37. जिंदल, राकेश, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, पूर्ववत्, पृ. 33
38. www.inosurya.com, retrieved at 4 pm on 3 August 2021
39. www.main.ayush.gov.in/hi/background, retrieved at 7 am, on 1 August 2021.
40. साक्षात्कार, शंभुदयाल भारतीय, आरोग्य मंदिर (प्राकृतिक चिकित्सालय) चौबे कालोनी, रायपुर, छ. ग., 21.03.2021

# राजस्थान के इतिहास लेखन में लोक गीतों की प्रासंगिकता



shodhshree@gmail.com

डॉ. तोफिक हुसैन

सह-आचार्य, राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चौमूँ (जयपुर)

## शोध सारांश

राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीतों का अपना विशिष्ट स्थान है। ये लोक गीत हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। इन लोकगीतों में ऐतिहासिक घटनाओं की प्रकृति, सामाजिक समरस्ता, नैतिक आदर्श, मातृभूमि प्रेम, त्याग, उत्सर्ग की भावना, स्वाभिमान, बलिदान, दानवीरता, शौर्य, वीरता के आदर्श एवं जनमानस के स्वाभाविक उद्गारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, लेकिन वर्तमान में बदलते परिवेश एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण लोकगीतों का महत्व तिरोहित हो गया है। पहले व्यवहार से लुप्त होने वाले लोकगीत अब लोगों के जेहन से भी जा रहे हैं। इतिहासकारों ने इन लोकगीतों को इतिहास लेखन के स्रोत के रूप में बहुत कम उपयोग किया है। अतः आज के नवीन परिपेक्ष्य में जब वैश्वीकरण एवं पाश्चात्यकरण के कारण लोकगीत लुप्तप्रायः हो रहे हैं, तो हमारा दायित्व बनता है, कि इतिहास लेखन में इन लोकगीतों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करें, जिससे न केवल इन लोकगीतों के महत्व से नवीन पीढ़ी व भावी पीढ़ियों को परिचित व अनुप्राणित कर सकेंगे अपितु हम हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को जीवंत रखने में भी सक्षम होंगे। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न अवसरों एवं घटनाओं के समय पर गाये गये लोकगीत एवं उनमें समाहित ऐतिहासिक चेतना के विभिन्न पक्षों को समझने, व्याख्यायित करने एवं वास्तविक इतिहास का चित्रण करने का प्रयास किया गया है।

**संकेताक्षर :** गीत चैतावनी रौं, राजा भोजे, झगड़ौ आदरियो, झल्ले आहुवौ, जुझै आहुवौ गौरा हटजा, रतन राणौ, उमादेँ, रूठी रानी, गोगाजी, पाबूजी।

**रा**जस्थान की सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीतों का अपना विशिष्ट स्थान है। ये लोकगीत हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। इन लोकगीतों में ऐतिहासिक घटनाओं की प्रकृति, सामाजिक समरसता, नैतिक आदर्श, मातृभूमि प्रेम, त्याग उत्सर्ग की भावना, स्वाभिमान, बलिदान, दानवीरता, शौर्य, वीरता के आदर्श एवं जनमानस के स्वाभाविक उद्गारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, लेकिन वर्तमान में बदलते परिवेश एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण लोकगीतों का महत्व तिरोहित हो गया है। पहले व्यवहार से लुप्त होने वाले लोकगीत अब लोगों के जेहन से भी जा रहे हैं। इतिहासकारों ने इन लोकगीतों का इतिहास लेखन स्रोत के रूप में बहुत कम उपयोग किया है। अतः आज के नवीन परिपेक्ष्य में जब वैश्वीकरण एवं पाश्चात्यकरण के कारण लोकगीत लुप्तप्रायः हो रहे हैं, तो हमारा दायित्व बनता है, कि इतिहास लेखन में इन लोकगीतों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करें, जिससे न केवल इन लोकगीतों के महत्व से नवीन पीढ़ी व भावी पीढ़ियों को परिचित व अनुप्राणित कर सकेंगे अपितु हम हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को जीवंत रखने में भी सक्षम होंगे।

## लोकगीत का अभिप्राय एवं अर्थ

“एन्साईक्लोपिडिया ऑफ ब्रिटेनिका” के अनुसार स्वतः प्रेरित आदिम मानव के संगीत को ही लोकगीत कहा जाता है। लोकगीत मानव जाति के हृदय से, अपने भावों द्वारा जन्य प्रकृति-प्रदत्त आवाज के द्वारा अचानक घुमड़ कर प्रकट होने वाला संगीत है, जो हृदय का बोझ हल्का करने के लिये भावों की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। समस्त जनमानस की गीतबद्ध होकर व्यक्त हुई भावनायें ही आदिमानव का उल्लासमय संगीत है।

वास्तव में लोकगीतों में लोकमानस की कहानी को ही गीत के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। लोक-गीत मानव हृदय की वह नसर्गिक अभिव्यक्ति है, जिसमें भाव, भाषा और छन्द की नियमितता से मुक्त रहकर स्वच्छन्द रूप में निःसृत होने लगते हैं।

### राजस्थानी लोक-गीतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सम्पूर्ण संसार में मानव के आर्विभाव से लोक-गीतों का उद्भव माना जाता है अतः राजस्थानी लोक-गीत इतने ही प्राचीन हैं, जितनी राजस्थानी जनता। मौखिक रूप से प्रचलित होने के कारण ये अपने मूलरूप में सुरक्षित नहीं हैं पर सौभाग्य से राजस्थानी साहित्य में अनेक लोकगीतों के उल्लेख मिलते हैं और साथ ही सैकड़ों गीतों की प्रथम पंक्ति या प्रारम्भिक अंश भी उद्धृत हुये उपलब्ध होते हैं। कभी-कभी तो सम्पूर्ण गीत भी लिखित रूप में मिल जाते हैं। ये लोक-गीत पुरातन काल से लोक मानस को आन्वदित, अहालादित, उत्साहित व आंदोलित करते रहे हैं। इनकी सूची बहुत लम्बी है इन लोक-गीतों में बहुत से ऐसे हैं, जो लोगों की जुबान पर चढ़े हुये हैं, और उनकी मन मस्तिष्क में घर कर गये हैं। यद्यपि बदलते परिवेश ने लोक-गीतों की धार को कुन्द अवश्य कर दिया है, मन्द भी किया है पर बन्द नहीं कर पाया और शायद कर भी नहीं पाए। यद्यपि फिल्म जगत, बाजार की मांग के अनुरूप इन लोकगीतों को नई साज सज्जा के साथ पेश कर रहे हैं। इस प्रथा ने लोकगीतों गीतों की सहजता, स्वाभाविकता व मौलिकता को प्रभावित अवश्य किया है, लेकिन उनके इस योगदान को, नकारा भी नहीं जा सकता क्योंकि उन्होंने इन लोकगीतों से नई पीढ़ी को अवगत कराया है। लोक-गीतों के संरक्षण में जैन साधुओं का भी महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। जैन साधुओं का सदैव लोक जीवन से गहरा सम्पर्क रहा है। जन साधारण को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए उन्होंने लोक रूचि को बराबर सम्मान दिया। वे जहाँ भी गये वहाँ की लोकभाषा को अपनी साहित्य रचना के लिये अपनाया और जनता की रूचि के अनुकूल साहित्य की रचना की।

### लोक-गीतों का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व

ऐतिहासिक लोक-गीतों से ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है, क्योंकि घटना के शीघ्र बाद ही लोक-गीत की रचना होती है, जिससे जन साधारण की अभिव्यक्ति

इन लोक-गीतों में होती है। यद्यपि लोक-गीतों के आधार पर घटनाओं की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती, लेकिन इन लोक-गीतों से अनेक ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने में हमें सहायता मिलती है। अनेक ऐतिहासिक लोकगीतों से इतिहास प्रसिद्ध घटना की प्रामाणिकता जाँच करने में सहायता मिलती है तथा विभिन्न जातियों के आचार विचार, धर्म, रीति-रिवाजों का इतिहास भी विदित होता है। इन लोक-गीतों से विभिन्न युगीन जातियों के इतिहास की जानकारी भी मिलती है। लोक-गीतों से मानव इतिहास के आदिकाल से लेकर वर्तमान तक के परम्परागत स्वरूप और उसमें समयानुसार होने वाले परिवर्तन का बोध होता है। विभिन्न कालों में घटनाओं की इन मानवीय अभिव्यक्तियों में व्यजना रहती है और इसमें समय-समय पर होने वाली सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक उथल पुथल का ज्ञान होता है।

लोकगीतों से सामाजिक रीति-रिवाज, सास-बहू, पति पत्नी, ननद-भौजाई, और देवरानी-जैठानी आदि के पारस्परिक व्यवहारों की भी जानकारी मिलती है तथा राजस्थान की सामाजिक स्थिति का सम्यक् दर्शन होता है, इन गीतों से हमारे समाज के प्राचीन गौरव और आदर्श की भावनायें प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देती हैं लोक-गीतों के सामाजिक महत्व का प्रतिपादन करते हुए इनसाईक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका में लोक-गीतों का मनुष्य की उत्पत्ति, विकास और रीति-रिवाजों की विद्या बताया है। राजस्थानी लोकगीतों से राजस्थान की प्राचीन संस्कृति का भी चित्रण मिलता है।

### राजस्थानी लोक-गीतों के विभिन्न प्रकार

राजस्थानी लोक-गीत एक अथाह समुद्र के समान है। इसके विषयों की संख्या नहीं है और प्रकारों का अंत नहीं है लेकिन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से राजस्थानी लोक-गीतों को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

#### (अ) ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित लोक गीतः-

##### लोक गीत-1 "गीत चेतावनी रै"

आयो इंगरेज मुलक रै उपर, आहंस लीधा खैच उरा।

धणियां मरै न दीधी धरती, धणियां उभां गई धरा।।

फौज देख न कीधी फौजा, दोगण किया न खळा डळा।

खवां खांच चुड़ै खावंद रै, उण हिज चुड़ै गई यळा।।

महि जातां चींतातां महिलां, ऐ दुय मरण तणा अवसांण।

राखो रै कीहिक रजपूति, मरद हिन्दू कै मुसलमान।।

पुर जोधांण उदैयपुर, जैपुर, पह थांरा खूटा परियांण।

आंके गई आवसी आंके, वांके असल किया वखांण।।<sup>१</sup>

### प्रसंग

राजपूत शासकों के द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व स्वीकार करने के समय की गई प्रतिक्रिया।

**अनुवाद:-** अंग्रेज लुटेरा हमारे देश पर चढ़ गया है। उसने समस्त राष्ट्र चेतना को अपने खूनी होंठों से सोख लिया है, यहाँ धरती के मालिकों ने अपना सिर कटने पर ही धरती दूसरों को सौंपी है परन्तु आज तो धरती के स्वामी जीवित है और धरती उनके हाथ से निकली जा रही है। शत्रु सिर चढ़ आया है फिर भी इन लोगों ने कोई सैनिक तैयारी नहीं की। अक्षत चूड़े का सुहाग, धारण किये पति की उपस्थिति में ही पृथ्वी अपने समस्त प्रतिमानों सहित दूसरों के अधिकार में चली गई मानव जीवन में मृत्यु को वरण करने के केवल दो ही अवसर विशेष रूप से आते हैं- एक तो जब देश की धरती शत्रु के हाथ में जा रही हो और दूसरा जब की अबलाओं पर अत्याचार हो रहा हो। आज राष्ट्र का संकट आया हुआ है। स्वतंत्रता की रक्षार्थ हिन्दू अथवा मुसलमान कोई तो वीरता दिखाओं। अरे जोधपुर, उदयपुर और जयपुर के नरेशों! तुम लोगों ने तो लुटियां ही इबों दी। अपने स्वार्थ के लिये देश को विदेशियों के हाथों में धकेल दिया। अब देश गुलाम तो हो ही गया। स्वतंत्र होना होगा तब होगा। जो सत्य था वह मैने बिना लाग लपेट के प्रकट कर दिया।

**भावार्थ:-** राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत इस गीत में बांकीदास ने बताया है कि किस प्रकार देश गुलाम होकर चेतना शून्य होता जा रहा है। हिन्दू, मुसलमान सभी को आह्वान करते हुए उन्होंने देश को बचाने की मार्मिक अपील की है।

### लोक-गीत-2. “राजा भोले”

महांरौ राजा भोले, सांभर तो दे दीनी अंरेज नै

महांरौ राजा भोले!

महांरौ टाबर भूखा, रोटी तो मांगे तीखे लूण री

महांरौ राजा भोले<sup>३</sup> ....

**प्रसंग:-** अंग्रेजों द्वारा सांभर व नांवा की नमक खानों पर अधिकार करने से बाजार में नमक पर आमजन की प्रतिक्रिया। 1818 ई. में राजस्थान की रियासतों द्वारा ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने राजस्थान के नमक उद्योग पर एकाधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। सर्वप्रथम 1835 में कम्पनी ने बकाया खिराज की वसूली की आड़ में जोधपुर एवं जयपुर की संयुक्त स्वामित्व वाली सांभर झील को अपने नियंत्रण में ले लिया, इसके पश्चात नावा व गुद्धा की खानों पर अधिकार कर लिया इससे बाजार में नमक की एकदम कमी आ गई। इस प्रसंग में इस लोक-गीत में जोधपुर के शासक तख्तसिंह और जयपुर के महाराजा रामसिंह की अदृदर्शिता तथा जनता की दयनीय स्थिति को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है।

**भावार्थ:-** गीत का भाव यह है कि अंग्रेज बड़ा चालाक और और कुटिल है। इस विदेशी मानव का केवल उपरी रंग ही गोरा है, भीतर से तो यह बिल्कुल काला है। इससे तो दूर ही भले। जान पहचान बढाकर इसे घर में घूसने दिया तो यह नुकसान करेगा। हमारा राजा अत्यंत भोला है। इस चालाक ने इससे सांभर हथिया लिया है उधर हमारे बच्चे भूखे बैठे हैं, वे नमकीन रोटी के लिये तरस रहे हैं।

### लोक-गीत-3 “झगड़ौ आदरियों”

सामोसाम गोला छूटे आडावेळौ धूजौ ओ

आउववा रा नाथ तो सुगोली, पूजै ओ झगड़ौ आदरियों.....

बारली तोंपा रा गोला धूझगढ़ में लागे ओ

मांयली तोपा रा गोला तंबू भांगे ओ नगे राखजौ

द्वै ओ नगे राखजौ, नेड़ा आयां गूगली गणगण नै लो ला ओ<sup>४</sup> ....

**प्रसंग:-** आहुआ के दुर्ग पर गोलाबारी के समय आमजन के समय आमजन की प्रतिक्रिया।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में आहुजा की दुर्ग की मजबूती को सुन्दर ढंग से उभारा गया है।

### लोक-गीत-4 “झल्लै आउवौ”

आउवौ नै आसोप धणियां मोतियां री माळा ओ

बारै नांखौ कूंघिया तोड़ावौ ताळा ओ, झल्लै आउवौ

द्वै हो झल्लै आउवौ, आउवौ धरती रै थांबौ ओ,

झल्लै आउवौ।<sup>1</sup>

**प्रसंगः-** आहुआ पर जोधपुर के पॉलिटिकल एजेंट कैप्टन मॉक मैसन पर हमले पर प्रतिक्रिया।

**भावार्थः-** इस लोक-गीत में आहुआ के आसोप ठकुर शिवनाथ सिंह के पराक्रम का वर्णन किया गया है।

### लोक-गीत-5 “जूझे आउवौ”

ढोल बाजे, थाली बाजै, भेले बाजै बांकियौ  
अजंत नै मारनै दरवाजै नांखियौ, जूझे आउवौ।  
हां रै जूझे आउवौ, आउवौ मुलकां में चावौ ओ  
जूझे आउवौ।<sup>1</sup>

**प्रसंगः-** आहुआ के पॉलिटिकल एजेंट मॉक मैसन की मौत पर प्रसन्नता जगाता जनमानस।

**भावार्थः-** इस लोक-गीत में आहुआ की उपलब्धि को प्रदर्शित किया गया है। इस लोकगीत की ध्वनि में उन्मत्त सिपाहियों का उल्लास व्यंजित हो रहा है जीत की खुशी में वे ढोल बजा रहे हैं, थाली बजा रहे हैं, बांकिये बजा रहे हैं। गौरों के एजेंट को मार डालने से कितनी ओजमयी वीरता का भाव अभिव्यक्त होता है। इस समय अंग्रेजो के विरुद्ध जन विरोध कितना तीव्र था। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मैसन के स्थान पर जब मॉरिसन को जोधपुर को पॉलिटिकल एजेंट नियुक्त किया गया तो उसके स्वागत की कोई औपचारिकता नहीं निभाई।

### लोक-गीत-6 “झल्ले आउवो”

बणिया वाली गोबर मांय, काळे लोग पड़ियो ओ,  
राजाजी रै मैला तों फिरंगी लड़यो ओ-काळी टोपी रो।  
बारली तोपां रां गोळ धूड़ गढ में लागं ओ,  
मांचली तोंपा रो गोळ तम्बू तोड़ै ओ,  
झल्ले आउवो-झगड़ा होने दो।<sup>7</sup>

**भावार्थः** इस लोक-गीत में सिपाहियों की वीरता की भावना व्यंजित होती है।

**समीक्षा:** आहुआ सम्बन्धी लोक-गीतों से यह सिद्ध होता है कि कुशल सिंह को ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध व्यापक जन समर्थन प्राप्त था।

**प्रसंगः-** 1857 की क्रान्ति में आहुजा के आक्रमण पर प्रतिक्रिया 1857 ई. में आहुआ के साहसी जागीदार ठकुर कुशल सिंह चंपावत तथा आसोप के ठकुर शिवनाथ सिंह कूपांवात राठौड़ के नेतृत्व में गूलर,

आलनियावास, लासाणी, आसिन्द, रड्डावास, बॉजावास आदि अनेक स्थानों के जागीरदारों तथा डीसा और ऐरनपुरा के क्रांतिकारी सिपाहियों की सहायता से क्रांति का शंखनाद किया और ब्रिगेडियर जनरल पेटरिक लॉरेन्स की सैनियों के दांत खट्टे किये।

### लोक-गीत-7 “गोरा हट जा”

आच्छे गोरा हट जा, राज भरतपुर रो  
भरतपुर गढ बांको, किलो रे बांको  
गोरा हट जा।<sup>1</sup>...

**प्रसंगः-** 1857 में भरतपुर नरेश रणजीत सिंह तथा अंग्रेज सेनापति लार्ड लेक के बीच युद्ध में अंग्रेजों की पराजय।

**भावार्थः-** इस लोक-गीत में भरतपुर के घेरे में भारतीय शक्ति की प्रथम विजय से जन उल्लास की अभिव्यक्ति मिलती है।

### लोक-गीत-8 “रतन राणो”

म्हारा रतन राणा अेकर तो अमराणै घोड़ो फेर  
अमराणे में बोलेस सूवा मोर हो जी हो<sup>9</sup> ...

**प्रसंगः-** यह ऐतिहासिक लोकगीत है इसमें वर्णित रतन राणा अमरकोट का सोढा राजपूत था। 1923 में एक अंग्रेज की हत्या में इसको फांसी की सजा हुई थी।

**भावार्थः-** इस करुणा पूर्ण लोक-गीत में रतनराणा की पत्नी अपने मृत पति को याद कर रही है।

(ब) वीरता शौर्य एवं व्यक्ति प्रशंसा की अभिव्यक्ति वाले लोक-गीत-

### लोक-गीत-1 “डूंगर जी जोरावर रो गीत”

मिनखां निठगी मोठ बाजरी, घोड़ा निठयों घास।  
कुणहि जाटड़ा खेत खड्डैला, कुणहि भरैला ढाण।  
कु एक बारगी लूटां छावणी, रह मरदां में  
नांव।<sup>10</sup> ....

**प्रसंग :-** अंग्रेजो का राज्य स्थापित होने के कारण उत्पन्न आर्थिक दुर्दशा की अभिव्यक्ति।

**भावार्थः-** डूंगर जी डाकू के लिये आर्थिक दुर्दशा में आवश्यक हो गया था कि वह गरीबों की कुछ सहायता करें इसी का चित्र इस लोक-गीत में किया गया है।

**समीक्षा:-** इस लोक-गीत में प्रकृति को आधार बनाकर अंग्रेजों की छावनी लुटने का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है तथा कम्पनी सरकार द्वारा किये गये अंधा-धुंध शोषण

के फलस्वरूप जनमानस को किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा इस बात को इस लोक-गीत में भली-भांति दर्शाया गया है।

### लोक-गीत-2 “प्रशस्ति भावना की गीत”

ओ दबसी नहीं दबायो, जिन राजस्थान बनायों।  
पीथल तणे कटक में कड़क्यों, गोरों रो पग दिया उखाड़।  
सांगा री सिनिया में संभियो, बाबर लिवी कपट री आड़।  
ओ सादो सिरदार भोम रे, जुग जुग सीस चढ़ाओ।  
इण राजस्थान बनायों। ओ दबसी।<sup>11</sup>

**प्रसंग:-** राजस्थान के एकीकरण की प्रतिक्रिया।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में सरदार भल्लव भाई पटेल द्वारा राजस्थान का एकीकरण करने पर, उनके प्रति प्रशस्तिपूर्ण भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

### लोक-गीत-3 “वीरता की अभिव्यक्ति”

जूनी दिल्ली तप साहजादा।  
बंका जोध बिलंबिया।<sup>12</sup>....

**प्रसंग:-** आसकरण के पुत्र दुर्गादास राठोड़ ने युद्ध में पांच हजार मुगलो को धराशायी करने पर अभिव्यक्ति।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में दुर्गादास की वीरता का बखान किया गया है।

### लोक-गीत-4 “कृतज्ञता की अभिव्यक्ति”

महांनै पथिकजी आय जगाया ए माय,  
इण सूं महां गुण नहीं भूलां।  
महांनै जूत्यां सूं पिट्टा बचाया ए माय,  
इण सूं महां गुण नहीं भूलां।<sup>13</sup> ...

**प्रसंग:-** बिजौलिया के किसान आन्दोलन में विजयसिंह पाथिक के योगदान पर अभिव्यक्ति

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में स्त्रियां पाथिकजी के द्वारा दिये गये योगदान की कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

### लोक-गीत-5 “वीर पुरुष-गोगा जी”

आज धराबू धरमी, धंधलो, काळी काढण मेह ओ  
आज नै वरसै धरमौ मेहूड़ा भीजै तंबू री डोर ओ<sup>14</sup> ...

**प्रसंग:-** शौर्य और बलिदान के प्रतीक गोगा-जी की

लोक मानस में देवता के समान पूजा की जाती थी वे राजस्थान में सांपो के देवता के रूप में पूजे जाते हैं।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में वीर पुरुष गोगा जी के शौर्य और बलिदान के कारण इनकी स्तुति का बखान किया गया है।

### लोक-गीत-6 “वीर पुरुष-पाबूजी”

अटू नी अे चारण वीरा, सूती छै सुखंडा री नीद  
था री तो गाया मे अे खीची घोड़ा फेरिया<sup>15</sup>...

**प्रसंग:-** राजस्थान के प्रसिद्ध राठोड़ वीर थे। अपनी वीरता और सात्विक आचरण के कारण जनता में देवता के समान पूजे जाते हैं। इन्होंने गायों की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों की आहूति दे दी इनके आश्रित थोरी जाति के लोग पाबूजी के जीवन चरित्र को एक पर्दे पर चित्रित लिये फिरते हैं और पाबू जी का पवाड़ा गाकर उनकी वीर गाथा को सुनाते हैं। ऊँटों के देवता के रूप में पूजे जाते हैं।

**भावार्थ :-** इस लोक-गीत में पाबूजी के वीरता पूर्ण कार्यों की अभिव्यक्ति मिलती है।

### लोक-गीत-7 “उमादे”-रूठी रानी-स्त्री स्वाभीमान एवं प्रेम की अभिव्यक्ति

बाड़ विचाळे, अे अमादे राणी, पीपळी  
जी का छै अड़बड़ पान  
अेकज पत्तो अे अमादे राणी तोड़ियो<sup>16</sup>...

**प्रसंग:-** जैसलमेर रावल के लूणकरण की पुत्री उमादे का विवाह मारवाड के शासक मालदेव के साथ हुआ। लेकिन मालदेव उमादे के साथ दहेज में दी गयी गोली भारमल्ली की सुन्दरता पर ही रिझ गया।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में उमादे द्वारा मालदेव के प्रति नाराजगी होने पर भी कभी मालदेव के पास न जाने और अन्त में मालदेव के स्वर्गवास होने पर उसके साथ सती होने की अभिव्यक्ति मिलती है।

### (स) कुत्सित सामाजिक परम्पराओं की अभिव्यक्ति वाले लोकगीत-

#### लोक-गीत-1 “स्त्री की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति”

घड़ी एक तो थाम रे, वीरा, घोड़ेलो।  
करा रे मनडै री, दोय बात,  
मेहा झड़ मांडियो।<sup>17</sup>

**प्रसंग:-** बहिन अपने ससुराल में भाई को अपनी दर्द

भरी दास्तान सुनाती हैं।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में हमारे देश की स्त्री की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है।

**लोक-गीत-2 “लड़के लड़की में भेदभाव की अभिव्यक्ति”**

पाड़ोसन के जायो बालो नन्दलाल।  
तो थारी धझा जायों बालों नन्दलाल  
आंगण बिच गुड़ भेली फोड़ावो,  
तो सगळे सैर बँटावो मेरा स्याम।<sup>8</sup>

**प्रसंग:-** जन्मोत्सव पर अभिव्यक्ति

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में बेटे के जन्म पर हर्षोत्सव तथा कन्या पर दुःख प्रकट किया गया है।

**लोक-गीत-3 “अबोध बालम के साथ विवाह की अभिव्यक्ति”**

थाळ्यां पड़्यो काचरो तौरै लावण से गुड़ जाय,  
भँवरजी लावण से गुड़ जाय।  
बिना अकल को सायबो तो वो सेजां सू उठ जाय।  
सूवटा जंगल का बासी।<sup>9</sup>

**प्रसंग:-** बाल विवाह पर अभिव्यक्ति

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में कन्या के व्यस्क होने परन्तु बालम की छोटी उमर होने के कारण वह सैजो के महत्व से अनभिज्ञ है, की अभिव्यक्ति मिलती है।

**लोक-गीत-4 “वृद्ध के साथ विवाह की अभिव्यक्ति”**

ज्यानी महारा मरू जहर विष खाय,  
बुढ़े नै बैठी क्यों देई ये मेरी माय।<sup>10</sup> ....

**प्रसंग:-** बूढ़े बालम के साथ विवाह पर अभिव्यक्ति

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में अबोध बालिका का विवाह प्रौढ के साथ पिता द्वारा बेचकर करने की वेदना परिलक्षित होती है।

**लोक-गीत-5 “पर्दा प्रथा की अभिव्यक्ति”**

हाथां का हथियार संप दो, चूड़ी लाख की पैरो।  
धोती जोड़ा उरै सूप दो, पगां घाधरौ पैरो।  
पड़दे भीतर लुकर बैठो, नैणा काजल घालो।  
मेरे कंथ की बेड़ी काटूं, मै तिरिया की जात।<sup>11</sup>

**प्रसंग:-** इंगार जी की वीर पत्नि अपने पति के पकड़े जाने पर और उन्हें छुड़ाने में उनके भतीजे जवार सिंह की उपेक्षा भाव देखकर की गई अभिव्यक्ति।

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में पर्दे में रहने वाली राजस्थानी महिला की असमर्थता व्यंजित होती है।

**लोक-गीत-6 “सौतिया डाह की अभिव्यक्ति”**

परण्यों रे परण्यों ढोला पूगल रे परदेश,  
परण पधारदा रे इये<sup>22</sup> ...

**प्रसंग:-** पति द्वारा सौतन रखने पर अधिकार छीनने पर ईर्ष्या व प्रेम में हिस्सा बांटने पर क्षोभ की अभिव्यक्ति

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में सौतन के प्रति ईर्ष्या प्रकट की गई है।

**लोक-गीत-7 “नारी उत्पीड़न की अभिव्यक्ति”**

दारुड़ी दाखां री म्हारै छैल भंवरजी नै थोड़ी-थोड़ी दीज्यो ये।

घालै ये म्हारी सोक कलाली म्हारो बाजबन्द गैणों राख्यो ये।

आवैलो म्हारो मदछकियो बनड़ो, ज्यानै थोड़ा-थोड़ा दीज्यो ये।<sup>23</sup>

**प्रसंग:-** पति द्वारा शराब पीकर पत्नि को सताने की अभिव्यक्ति।

**भावार्थ:-** पत्नि अपने आभूषणों के प्रति चिन्ता करते हुए पति से शराब कम पीने की याचना करती है।

**लोक-गीत-8 “दहेज की अभिव्यक्ति”**

सूरजड़ी लोकगीत<sup>24</sup> में आर्थिक स्थिति की हीनता से विवाह होने में देरी पर विवाह करने की याचना करती है।

**(द) पारिवारिक प्रेम की अभिव्यक्ति वाले लोक-गीत:-**

सूरजड़ी महारा घर का राजा, सासूजी ठुकराणी जी,

सुसरैजी रो हुकम कोटइयां चालै, सासइ रो रावळिया जी।<sup>25</sup>

**भावार्थ:-** इस लोक-गीत में पारिवारिक जनों के पारस्परिक प्रेम की अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है।

**निष्कर्ष**

राजस्थान के इतिहास लेखन में स्रोत के रूप में लोक-गीतों का प्रयोग कम दिखाई देता है। इतिहास दस्तावेजों एवं अभिलेखागारों के फाईलों के अतिरिक्त जनमानस के सांस्कृतिक संस्कारों यथा लोकगीतों में जीवित है। लोक-गीत हमारी समग्र संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं अतः सम्पूर्ण परिदृष्ट्य में इतिहास

लेखन के लिये लोक-गीतों का प्रयोग अपेक्षित है। भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में राजस्थानियों का स्वाधीनता प्रेम इन लोक-गीतों में परिलक्षित होता है। इतिहासकारों ने समाज की साधन सम्पन्न एवं शिक्षित महिलाओं के योगदान को तो अपनी लेखनी में स्थान दिया है, लेकिन निरक्षर महिलाओं का योगदान भी कम नहीं था। इन लोक-गीतों के अध्ययन से स्त्रियों की स्थिति एवं सृजनात्मक पक्ष को अधिक सशक्त रूप से समझा जा सकता है। असंख्य लोक-गीतों का भंडार उन्हीं की देन है। लोकगीतों की रचयिता, गायिका एवं श्रोता वे स्वयं ही थीं। वे निरक्षर होते हुये भी अशिक्षित नहीं थी क्योंकि तत्कालीन घटनाओं के प्रति उनकी जागरूकता, आक्रोश, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति प्रेम, सामाजिक बुराईयों के प्रति असंतोष, पारिवारिक प्रेम, सामाजिक दायित्व एवं सृजनशीलता आदि इन लोकगीतों में परिलक्षित होती है। अतः इतिहास लेखन की स्रोत सामग्री के रूप में लोक-गीतों के विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा राजस्थान के इतिहास के सम्पूर्ण परिदृश्य का चित्रण किया जा सकता है राजस्थान के इतिहास लेखन में लोकगीतों के समावेश द्वारा राजस्थान के इतिहास एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों को व्यापक फलक पर समझा जा सकता है जो लोकगीतों की प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, रोल नं. 9, पृष्ठ 446
2. 'परम्परा'-गोर हट जा, अंक पृष्ठ 54, डॉ मोहन लाल जिज्ञासु, चारण साहित्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 90
3. डॉ कन्हैया लाल राजपुरोहित: स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियां, साइन्टिफिक पब्लिसर्स, न्यूपाली रोड़, जोधपुर, 1993, पृ. 30
4. वही, पृ. 51
5. पूर्णिमा गहलोत: राजस्थानी लोकगीत स्व. जगदीश सिंह गहलोत कृत, यूनिवर्सिटी प्रेस, जयपुर, 1971, पृ. 166
6. परम्परा- गोर हट जा, अंक पृष्ठ 54, जगदीश सिंह गहलोत राजस्थान के राजवंशों का इतिहास, राजस्थान साहित्य मन्दिर, जोधपुर, पृ.सं. 113
7. पूर्णिमा गहलोत: राजस्थानी लोकगीत स्व. जगदीश सिंह गहलोत कृत, यूनिवर्सिटी प्रेस, जयपुर, 1971, पृ. 166

'परम्परा'-गोर हट जा, अंक पृष्ठ 54 व 56, जगदीश सिंह गहलोत, राजस्थान के राजवंशों का इतिहास, राजस्थान साहित्य मन्दिर, जोधपुर, पृ.सं. 115-116

8. पूर्णिमा गहलोत: राजस्थानी लोकगीत स्व. जगदीश सिंह गहलोत कृत, यूनिवर्सिटी प्रेस, जयपुर 1971, पृ. 170
9. वही, पृष्ठ 164
10. वही, पृष्ठ 171
11. डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल: राजस्थान के लोकगीत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1967, पृ. 257
12. रवि प्रकाश नाग: राजस्थानी गीतों से गजरो, साहित्यागार, जयपुर, 1987, पृ. 26
13. डॉ कन्हैया लाल राजपुरोहित: स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियां, साइन्टिफिक पब्लिसर्स, न्यूपाली रोड़, जोधपुर, 1993, पृ.205
14. राजस्थान के लोक-गीतों में गोगीजी चौहान, मरु भारती वर्ष 4, अंक 4, पृ.14-22, राजस्थान के लोकगीतों में गोगाजी-राजस्थान भारती, भाग 6, अंक 3-4, पृ. 27-32
15. मिस्त्र, श्रीलाल-पाबूजी के पवाड़ों में राजस्थानी जीवन, मरुभारती, वर्ष 6 अंक 4, पृ.53
16. पूर्णिमा गहलोत: राजस्थानी लोकगीत स्व. जगदीश सिंह गहलोत कृत, यूनिवर्सिटी प्रेस, जयपुर, 1971, पृ. 184
17. डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल: राजस्थान के लोकगीत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1967, पृ. 259
18. वही, पृ.259
19. वही, पृ.260
20. वही, पृ.260
21. "मरु भारती" पत्रिका, फरवरी, 54
22. डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल: राजस्थान के लोकगीत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1967, पृ. 262
23. वही
24. मारवाड़ी गीत संग्रह, छठा भाग
25. कविता कौमुदी-श्री राम नरेश त्रिपाठी, भाग पांच, पृ. 77।



धार्मिक साहित्यों में व्यापक देखने को मिलता है।<sup>5</sup>

लेकिन एक धार्मिक सम्प्रदाय का सैनिक संगठन व सैनिक योगदान अत्यन्त ही रोचक व महत्वपूर्ण होने के कारण बरबस ही अध्ययन कर्ता का ध्यान स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित करता है। राज्यों को जरूरत पड़ने पर दशनामी सम्प्रदाय ने सैनिक योगदान “जमीयतों” के माध्यम से दी है जो एक धार्मिक सम्प्रदाय के लिये असामान्य योगदान है।

लेखक श्याम सुन्दर भारती कृत पुस्तक “श्री दशनाम गोस्वामी दर्शन” में जोधपुर राज्य के सैनिक योगदान के बारे में लिखते हैं कि सितम्बर सन् 1752 ई. में बखतसिंह परलोक सिधारे और उनका पुत्र विजयसिंह गद्दी पर बैठा तब रामसिंह ने उससे लड़ने के लिए मराठों की सेना को भाड़े पर लिया। सन् 1754 ई. श्री जयअप्पा सिन्धिया के नेतृत्व में एक विशाल मराठा सेना ने मारवाड़ पर आक्रमण किया। विजयसिंह के निवेदन पर दस हजार गोसाईयों का एक दल कुम्भलगढ़ से उनके रक्षार्थ आ गया।<sup>6</sup>

डॉ. रघुबीरसिंह की जोधपुर ख्यात के अनुसार मारवाड़ की स्थायी सेना में राजपूतों के अतिरिक्त सिंधी, सिपाही, रोहिला, पूरबिया आदि लोगों को भी सम्मिलित किया जाता था। आवश्यकतानुसार “नागा साधु की जमातों को भी सैनिक अभियानों के समय निमंत्रित कर लिया जाता था। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप महाराजा विजयसिंह के मारवाड़ में एक सशक्त स्थायी सेना का निर्माण हो गया था।<sup>7</sup>

श्याम सुन्दर भारती जी ने अपनी पुस्तक में दशनामियों की सैनिक सेवाओं के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा है कि जब विजयसिंह की मृत्यु 8 जुलाई 1793 ई. को हो गई तो भीमसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा और जालोर के मानसिंह के विरुद्ध हथियार उठा लिये। भीमसिंह के जालोर के इस आक्रमण में “महन्त”<sup>8</sup> गुलाबपुरी ने अपनी अमूल्य सेवाएं अर्पित की। इसके लिए उनके शिष्य मोतीपुरी को मटी परगना में लम्बामाला नामक ग्राम पुरस्कार में महाराज भीमसिंह ने दिया।

नवम्बर सन् 1804 ई. में भीमसिंह की मृत्यु हो गई और मानसिंह को मारवाड़ की गद्दी मिल गई। परन्तु मुख्य सरदार पोखरा का सवाईसिंह उनका विरोधी हो गया। उसने जिमौली की घाटी में मानसिंह को धोखा देकर बुलाकर मार डालने का षड़यंत्र रचा परन्तु कुछ

विश्वासी सामन्तों के कारण उसका यह कुप्रयत्न निष्फल रहा। “महन्त बुद्धभारती” दौलतपुरी और मोतीपुरी के नेतृत्व में महापुरुषों के दल ने कुछ विश्वासी सरदारों के साथ विद्रोहीयों से युद्ध किया और इस प्रकार महाराज मानसिंह को शत्रुओं के चंगुल से छुड़ाकर सुरक्षापूर्वक जोधपुर तक पहुंचा दिया।

महन्त, मोतीपुरी ने उनकी ध्वजा माही-मरातिब तथा उनकी मूर्ति और पूजा की सामग्री को ले जाने वाले हाथी की रक्षा कर उसे शत्रुओं के हाथ में जाने से रोका और जोधपुर पहुंचाया। इसके लिए महन्त दौलतपुरी को सम्मानार्थ एक परवाना मिला, जिसमें महाराजा की निजी सील थी। सन् 1815 ई. में महापुरुषों के दल को देसूरी भेजा गया जहां होने वाले उपद्रव को उसने योग्यतापूर्वक शान्त किया। महन्त बरजपुरी (बाडावाले) मोतीपुरी के शिष्य सन्तोषपुरी को अपने 35000 व्यक्तियों को रखने के लिए देसूरी कोष से 7000 रुपया प्रतिमाह दिया जाने लगा। इस प्रकार इन गोसाईयों ने महाराजाओं को सकंठ आने पर सेवा की ओर उनको पुरुस्कार मिलते रहे।<sup>9</sup>

जिस प्रकार जोधपुर राजाओं का दशनामियों के महापुरुषों ने सैनिक योगदान दिया है। उसी प्रकार बीकानेर के राजाओं सामन्तों का भी उन्होंने महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। बीकानेर राज्य की बहियों द्वारा यह प्रमाणित हो जाता है कि दशनामी सन्यासियों को समय-समय पर राजकीय सहायता व अनुदान दिये गये।

परवाना बही क्रमांक 4 (वर्ष 1743 1843 ई. से प्रमाणित होता है। कि महाराजा अनूपसिंह ने 1681 ई. में दशनामी सम्प्रदाय को “सासण”<sup>11</sup> के रूप में एक सनद प्रदान की। जिसे 1760 ई. में महाराजा गजसिंह (1745-1787 ई.) के द्वारा नवीनीकरण किया गया। इसके साथ-साथ नोहर कस्बे के गुसाई राजेन्द्रगिरी, मंगलगिरी के अनुयायियों को 201 बीघा उपजाऊ भूमि और मण्डी नोहर में प्रतिदिन 20 दाम जीविकोपार्जन हेतु प्राप्त होने के सनद प्रदान की गई<sup>12</sup>

अमरसिंह राजवी कृत पुस्तक “मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास” के अनुसार महाराजा सूरतसिंह (1787-1818 ई.) का शासनकाल इस सम्प्रदाय के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा। इसी अवधिकाल में श्री धनीनाथगिरिजी महाराज अपने दो शिष्य फतेहगिरी व बखतगिरी के साथ बीकानेर की सीमा में प्रवेश किया।<sup>13</sup>

राजवी जी के अनुसार स्वामीजी के त्याग व तपोनिष्ठ आचरण के कारण महाराजा सूरतसिंह ने उन्हें न केवल मुक्त हस्त से भूमि अनुदान की वरन् स्वयं इस सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये और मठ के निर्माण हेतु परकोटे के साथ जुड़ा हुआ विशाल भू-भाग ताम्रपत्र कर दिया। सामान्य जन व राजकीय अनुदान से ही धनीनाथ गिरी द्वारा 1802 ई. में धनीनाथगिरि मठ की स्थापना की गई जिसे “पंच मंदिर” के नाम से भी जाना जाता है।<sup>14</sup>

चिड्डी व खतों से बही के अनुसार यह एक विस्मयकारी तथ्य है कि दशनामी सम्प्रदाय के द्वारा स्थापित अखाड़ों में कुछ सन्यासियों को शारीरिक रूप से दृढ़ व लड़ने में कुशल बनाया गया। यही इनकी “जमीयते” या “पलटन” कहलाती थी जो सैनिक टुकड़ियों के रूप में यथा बन्दूक, तलवार, ढाल, भाले व बरछी इत्यादि से संगठित रहते थे।<sup>15</sup>

राज्य द्वारा अनेक स्थानों पर जहां विद्रोहात्मक स्थिति होती थी वहां उन्हें भेजा जाता था और घायल होने मृत्यु होने या सैन्य सामग्री के क्षतिग्रस्त हो जाने पर मरहम पट्टी सहित “खाणगी” (रोजगार) के रूप में दिये जाते थे। युद्ध के दौरान “बाण” के खर्च का वहन भी किया जाता था।<sup>16</sup>

संभवतः यह प्रश्न स्वतः ही मन में उठता है कि एक धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों का सैनिक स्वरूप अपनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? लेकिन इतिहास का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करे तो ज्ञात होता है कि गुरु गोविन्दसिंह ने भी गुरु नानक के सिक्ख धर्म को सैनिक स्वरूप प्रदान कर “खालसा” पंथ का निर्माण किया। संभवतः बीकानेर राज्य में भी कोई ऐसी व्यवस्था रही होगी जब दशनामी सम्प्रदाय में अपनी जमीयतें बनायीं। इसके लिए इन्होंने अखाड़ों का निर्माण करवाया, जहां पर ये सामान्य निवास के साथ शारीरिक व लड़ने की कला का प्रशिक्षण भी प्रदान करते रहे। गुंसाईयों की जमीयते इनके महन्तों के नाम से जानी जाती थी यथा गुसाई निरबोणगीर जी की जमात, गुसाई महताबगीर की जमात, गुसाई पेमगीर की जमात आदि प्रसिद्ध जमीयते थी जो तत्कालीन समय में राजकीय अभियानों में राज्य की सहायता हेतु तत्पर रहती थी। राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने किले की सुरक्षा करने धार्मिक यात्रा में शासक के साथ रहने के कार्य में इस्तेमाल में आती थी।<sup>17</sup>

चिड्डी व खतों से बही क्रमांक 9 के अनुसार इन

जमीयतों का संगठन ओहदों के अनुसार होता था। इनमें लडाकू सैनिक सन्यासियों को अतीत कहा जाता था जिन्हें नियमित रोजगार भत्ते शस्त्र, घोड़े और ऊँट इत्यादि प्रदान किये जाते थे। ये अतीत तकादे के लिये धरणे पर बैठ जाते थे जहां उन्हें “पेटिया”<sup>18</sup> दिया जाता था।<sup>19</sup>

जिस प्रकार दशनामियों ने जोधपुर राज्य के राजाओं और बीकानेर के शासक सामन्तों का सहयोग किया उसी प्रकार जैसलमेर के महाराजाओं को भी सैनिक सहयोग प्रदान किया।

लेखक नन्दकिशोर शर्मा कृत पुस्तक “जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के अनुसार महारावल अमरसिंह के राज्यकाल में” हरवंश गिरि नामक चमत्कारी सिद्ध अपने अन्य साथियों के साथ जैसलमेर में आये थे। इनके बाद यहां पर हरवंशगिरि के शिष्य लालगिरि हुये और वहां के महन्त बने और इनके बाद जगरुगिरि, थानगिरि, हरनाथगिरि, जनगिरि, रिधगिरि, हरिगिरि, भावगिरि, प्रेमगिरि और धनगिरि गोसाई महाराज हुए थे।<sup>20</sup>

विक्रम संवत् 1865 में लालगिरि के मठ को पक्का बनाया गया तथा रत्नगिरि को राज्य की ओर से छड़ी नगरा आदि प्रदान किया गया तथा रीत रस्म आदि बांधी गई।<sup>21</sup>

श्याम सुन्दर भारती जी के अनुसार जैसलमेर राज्य में नाथों का आधिपत्य अधिक होने के कारण दशनामी सन्यासियों की राजकार्य में अधिक भूमिका नहीं है लेकिन फिर भी कुछ महात्मा संत जैसे भैरोपुरी, सावन्तपुरी और यशगिरि जैसे महान सैनिक हुए जो राज्य की शान्ति व्यवस्था व सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जैसलमेर राज्य के बीकानेर के साथ होने वाले युद्ध में महत भैरोपुरी तथा महन्त सावन्तपुरी के नेतृत्व में गोसाईयों के एक दल ने जो विक्रमपुर के आक्रमण को अपने दो बहादुर सरदारों तथा पन्द्रह सिपाहीयों की जान न्यौछावर कर निष्फल कर दिया।<sup>22</sup>

पश्चिमी राजपूताना में राज्यों की शान्ति व्यवस्था व सुरक्षा के साथ-साथ स्वयं के हित के लिये भी जमीयतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जमीयतों को मोतीयों से चोकड़ो, शिरोपाव, पेटिया नियमित वृत्तिया, घोड़े और ऊँट यदा कदा भेंट किये जाते थे। वस्तुतः हम कह सकते हैं कि धर्मनिष्ठ पश्चिमी राजपूताना की मरु

भूमि में दशनामी सम्प्रदाय की सैनिक भूमिका अत्यधिक विशिष्ट रही है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रायबहादुर मुंशी हरदयालसिंह:-रिपोर्ट मरदुमशुमारी - राजमारवाड़ 1891 गहलोट शोध संस्थान पुनर्मुद्रित 1997 जोधपुर. पृ.स. 262-265
2. शर्मा सागरमल:-शेखावटी के संत, विड़ावा पृ.स. 124-146
3. मठ का अर्थ:-गुरुद्वारा लालस सीताराम:-राजस्थानी हिन्दी शब्दकोष भाग II 1987 राजस्थान अभिलेखागार जोधपुर पृ.स. 322
4. शर्मा नन्दकिशोर:-जैसलमेर का सामाजिक एवं, सांस्कृतिक इतिहास, प्रथम संस्करण 1993, जैसलमेर पृ.स. 91
5. उपरोक्त शर्मा सागरमल:-पृ.स. 124-146
6. भारती श्यामसुन्दर :-श्री दशनाम गोस्वामी दर्शन, समाज संस्थान, जोधपुर 2011-12 पृ.स. 424-425
7. सिंह डॉ. रघुबीर:-जोधपुर ख्यात भाग III पृ.स. 164
8. "महन्त" का अर्थ मठ का प्रधान या मुखिया बाहरी डॉ. हरदेव:-हिन्दी शब्दकोश, 2016 राजपाल एण्ड सन्ज, नई दिल्ली पृ.स. 333
9. उपरोक्त भारती श्याम सुन्दर:-पृ.स. 427
10. परवाना बही क्रमांक 4 वि.स. 1743-1843/ 1686-1786 ई. गुसाइयों के परवाने
11. "सासण":-वह भूमि धार्मिक अनुदान है जिस पर राज्य द्वारा कोई कर नहीं लिया जाता।
12. परवाना बही, उपरोक्त गुसाइयों के परवाने
13. सिंह अमर राजवी:-"मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास" जोधपुर 1992 ई. पृ.स. 638
14. वही
15. चिट्ठी व खतों' री बही वि.स. 1864-65/1807-1808 साल री फा. 255 (बी.)
16. वही
17. चिट्ठी व खतों री बही क्रमांक 6, संवत 1869 साल री, महाराजा सूरतसिंह री
18. "पेटिया" का अर्थ प्रतिदिन के लिए सुखी खाद्य सामग्री:-बीकानेर बही की वर्णनात्मक सूची (From 17<sup>th</sup> to 19<sup>th</sup> Centure) भाग I राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर पृ.स. 248
19. चिट्ठी व खतों री बही, क्रमांक 9, वि.स. 1874-76/1817-19 साल री फा. 100
20. शर्मा नन्दकिशोर :-जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास गांगण पाडा, 1993 जैसलमेर पृ. स. 116
21. वही
22. भारती श्याम सुन्दर :-उपरोक्त पृ.स. 427

# मेवाड़ की मीरा बाई एवं वागड़ की मीरा गवरी बाई के पदों का सांगीतिक पक्ष

डॉ. सीमा राठौड़

सह आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

रिया उपाध्याय

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

राजस्थान की भूमि जोगी, संत, भगतों एवं साधुओं की कर्म व आध्यात्म की स्थली रही है। राजस्थान की पावन धरा पर इन संतों और भक्तों ने अपने ज्ञान कर्म से समाज में व्याप्त अज्ञानता व अनैतिकता को दूर करने का प्रयास किया और अपनी भक्ति मय वाणी से जन मानस को भक्ति मार्ग की ओर प्रेरित किया। संतो द्वारा आध्यात्म एवं भक्ति की ओर प्रेरित करने में केवल पुरुषों का ही योगदान नहीं रहा है। अपितु भक्ति त्याग एवं वीरता की प्रतिमूर्ति अनेक महिलाओं का भी योगदान रहा है। इन सबसे अलग जनमानस में अपना सामर्थ्य रखने वाली कृष्ण भक्त साधिका मीरा के त्याग एवं भक्तिमय योगदान को कोई नहीं भूल सकता है। उसी प्रकार वागड़ की मीरा कही जाने वाली गवरी बाई ने भी अपना बहुमूल्य योगदान समाज को दिया है। जिसे कभी भूलाया नहीं जा सकता है।

**संकेताक्षर :** संगीत, राजस्थान, भक्ति, मीरा बाई, गवरी बाई।

**इ**स सृष्टि में बहुत सी चीजें ऐसी हैं जो इंसान के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत उपयोगी हैं। इन सब से भी परे संगीत – सभी बंधनों से मुक्त एक सुन्दर बंधन, एक ऐसी कला जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं। समय के साथ-साथ संगीत के भी कई प्रकार विकसित हुए शास्त्रीय संगीत, सूफी संगीत, भक्ति संगीत आदि। प्रकार चाहे कोई भी हो संगीत का उद्देश्य मनुष्य जीवन में आनन्द भरना है।

संगीत से कोई अछूता नहीं, नारी मन तो भरा ही भाव संगीत से है।

माँ की लोरी से लेकर प्रियतमा के प्रेम और विरह गीतों तक वह ईर्द-गिर्द घुमता ही रहता है।

राजस्थान की पावन धरा शौर्य, पराक्रम, साहस, त्याग और भक्ति चेतना के लिए विश्व प्रसिद्ध है एक ओर तो इसका कण-कण मातृभूमि के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले वीर सपूतो के रक्त से रंजित है। और दूसरी ओर संतों एवं भक्तों के भक्ति रस धारा से गुंजित है।

राजस्थान की इस शौर्य, त्याग और भक्ति की त्रिवेणी में केवल पुरुषों का ही वर्चस्व हो ऐसा नहीं है। वीरता और साहस की प्रतिमूर्ति हाड़ी रानी की ऐतिहासिक गाथा हो या फिर रानी पद्मावती का आत्मगौरव से परिपूति जौहर।

इन सबसे अलग सब में जनमानस को अभिभूत कर देने का सामर्थ्य रखने वाली कृष्ण भक्त साधिका मीरा के गीतों की अमर रागिनी है।

भारतीय संगीत परम्परा में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में मीरा का नाम अत्यंत श्रद्धा और आदर से लिया जाता है। मीरा के पदों में प्रभु गिरधर नागर भिन्न-भिन्न रूपों में भक्तों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

भक्ति शौर्य एवं त्याग के लिए ख्यात राजस्थान की पावन माटी में ही भक्तमती कवयित्री महान संगीतज्ञा मीरा का जन्म हुआ था। मीरा बाई जोधपुर राज्य एवं नगर के संस्थापक राव जोधा के पुत्र मेड़ता नरेश राव दूदा के मंझले बेटे रतन सिंह की पुत्री थी। माता का नाम वीर कुँवरी था। वीर कुँवरी झाला राजपुत सुरतान सिंह की बेटि थी। मीरा बाई का जन्म आश्विन शूकल पूर्णिमा विक्रम संवत् 1561 में मेड़ता शहर में हुआ।

बाल्यकाल से ही कृष्ण भक्ति में लीन मीरा के बाल्यकाल की कई घटनाएँ जन श्रुतियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

कहा जाता है कि मीरा जब छः महिने की थी तब एक दिन वे अचानक ही बहुत रोने लगी। उन्हें चुप कराने के लिए सारे बालसुलभ उपाय किए गए पर वे चुप होने का नाम ही नहीं लेती।

उनके दादा राव दूदाजी उन्हें गोद में लेकर मंदिर की ओर गए वहाँ चारभुजानाथ की मूर्ति देखकर वे एकदम चुप हो गईं और अपनी बड़ी-बड़ी कज़रारी आखों से अपलक प्रभु को निहारने लगी। कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति 5 वर्ष की आयु से ही प्रकट होने लगी थी।

मीरा के पदों में निहित संवेदना, कलात्मकता कथन की चारुता एवं पटुता तथा संगीत को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अत्यंत कलाप्रिय कुशाग्र एवं रागमयी थी। राजमहल में संतों के सतसंग के दौरान भजनों एवं गीतों की संवेदनों में अवगाहन भी करती थी। सुर एवं ताल पर भी उनकी अच्छी पकड़ थी।

उन्होंने संगीत की शिक्षा आचार्य बिहारी दास द्वारा प्राप्त की थी। भक्तिमती मीरा मेवाड़ की महान संगीतज्ञा थी, जन-जन के कंठ में बसने वाले उनकों पदों से अनेकों भक्त प्रभावित हो रहे हैं। मीरा की भक्ति भावना से ओत-प्रोत होकर परवर्ती काल में वागड़ की भक्तिमती गवरी देवी ने स्वयं वागड़ की मीरा के रूप में पहचान बनायी।

भक्त शिरोमणी मीरा तथा वागड़ की मीरा नाम से प्रसिद्ध गवरी देवी की न केवल भक्ति साधना कृतित्व शैली में वरन् जीवन में भी अनेक समानताएँ हैं। दोनों का बाल-विवाह हुआ, दोनों ने अल्प आयु में ही वैध्व्य का अभिशाप झेला, दोनों के मन में शैशव से ही कृष्ण के प्रति अनुराग जागा। दोनों ने ही सांसारिकता से विमुख होकर कृष्ण को अपना प्रिय आराध्य माना।

मीरा एवं गवरी बाई दोनों ने साधु महात्माओं की संगति तथा भजन-कीर्तन में अपने जीवन का अधिक समय व्यतीत किया।

मीरा एवं गवरी बाई दोनों को वेदांत दर्शन शास्त्र के विविध सिद्धान्तों का ज्ञान था। काव्य एवं संगीत शास्त्र के नियमों से भी वे अनभिज्ञ नहीं थी। अपने युग की विविध भक्ति धाराओं उपासना पद्धतियों, दार्शनिक सिद्धान्तों तथा अद्देत, विशिष्टाद्देत शुद्धाद्देत तथा

दैताद्देत आदि से परिचित होते हुए भी किसी संप्रदाय मार्ग पथ तथा धर्म का अनुशासन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। मीरा एवं गवरी दोनों के पदों में सगुण एवं निर्गुण भक्ति के उदाहरण मिलते हैं।

वागड़ की मीरा के नाम से प्रसिद्ध गवरी और मीरा की साहित्य साधना में समानता होना स्वाभाविक है। गवरी एवं मीरा दोनों की भक्ति प्रेमा अथवा मधुरा भक्ति के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

कृष्ण के प्रति अनन्यता का भाव दोनों में दृष्टिगत होता है। दोनों का साधनात्मक विकास सगुण से निर्गुण की ओर उन्मुख हुआ है। दोनों ने गीतात्मक शैली को अपनाया और विविध राग-रागिनियों के आधार पर पदों की रचना की है।

शास्त्रीय रागों के साथ लोक रागिनियों का सामन्जस्य दोनों के साहित्य में हुआ है। गवरी देवी ने गुजरात प्रान्त में प्रचलित एक विशेष गायन शैली 'गरवी' में भी पदों की रचना की है। गुजरात का समीपवर्ती इलाका होने के कारण यह लोक रागिनी वागड़ अंचल में भी खूब प्रचलित है। कृष्ण के सौंदर्य वर्णन में मीरा एवं गवरी के पदों में भाव साम्य दिखाई देता है।

मीरा लिखती है -

बसों मोरे नैनव में नंदलाल।

मोर मुकुट मकरकृत कुण्डल अरुण तिलक सोहे भाल

मोहनि सूरत सॉवरि सूरत, नैना बने विशाल  
अधर सुधारस मुरली बाजे, उर वैज्यंती माला

गवरी भी कुछ ऐसे ही भावों को व्यक्त करती हैं-

नीकों सुंदर नंदजीको लाल मुरली बजावे  
निपट रसाल

पांपण पाद्य विराजे, उर सोहे वनमाल

पीतांबर की कछ्नी काछे, खंजन नैन विसाल  
कुंडल लोल कपोलन की छब, झलकत रूप अपार

मीरा एवं गवरी दोनों की आंचलिक लोक भाषा है और लोक राग में भजन गाए हैं। गवरी बाई ने 36 राग अलापे हैं। दोनों के पदों में तन्मयता और लय है। मेवाड़ से ब्रज वृन्दावन की यात्रा करती हुई मीरा द्वारिकाधीश की शरण में गयी।

इसी प्रकार गवरी बाई ब्रज वृन्दावन होते हुए काशी

पहुंची। सादगी सरलता सहृदयता, संगीतात्मकता एवं काव्यात्मकता दोनों के पदों की विशेषता है।

कृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा के संदर्भ में मीरा एवं गवरी बाई का उदाहरण-

मीरा लिखती है-

हरि मेरे जीवन प्राण अधार  
और आसिरो नाहिन तुम बिन, तीनू लोक  
संसार।

गवरी लिखती है-

तुम तजि प्रभु और कहाँ जाऊँ  
तुमसे ठकुर और न दूजो, कहाँ जाए सीस  
नमाऊँ।

कृष्ण के प्रति प्रणय भाव के संदर्भ में मीरा एवं गवरी बाई का उदाहरण-

मीरा लिखती है-

बसों मोरे नैनव में नंदलाल  
सॉवली सूरत, मोहनी सूरत नैनाबने विसाल।

गवरी कहती है-

मेरे मन बसों जी सुंदर भयाम  
सिर पर मुगट, पीतांबर साहे, गोविंद वाके  
नाम

मीरा एवं गवरी बाई के पदों में निहित भक्ति एवं वेदना को लोक कढ़े में स्थान मिला-

जनमानस में उनके प्रति एक आस्था मूलक रागात्मक भाव जागृत हुआ और लोक रागिनी ने उनकी भक्ति चेतना को जीवंत बनाए रखा।

मीरा और गवरी बाई का भक्तिमय चरित्र नारी के पवित्र भावों के रूपान्तरण का अद्भूत उदाहरण है जिससे आज की नारी में एक अलग भाव जागृत हो सकता है।

जहां से एक सुंदर आध्यात्मिक संगीत से रचा बसा समाज निर्मित होने की संभावना बनती है।

### **संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. शर्मा निर्मला ; मीरा वागड़ की गवरी देवी ; भारतीय ग्रंथ निकेतन नई दिल्ली, संस्करण - 2012
2. काले मालिनी ; वाग्वर वसुधा की भक्ति धारा (लोक भक्ति गीत), अभिनव शिक्षा समिति, बांसवाड़ा संस्करण - 2007
3. वसन्त ; संगीत विषाद ; संगीत कार्यालय, हाथरस, पच्चीसवाँ संस्करण - 2004
4. काले मालिनी ; मावजी और बारहमासा साहित्य, अभिनव शिक्षा समिति नई आबादी बांसवाड़ा, प्रथम संस्करण - 1993

# सल्तनत काल में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का विकास



shodhshree@gmail.com

मो. शकील

सहायक आचार्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

## शोध सारांश

भारत और फ़ारस (पारस) के बीच सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संबंध ईसा पूर्व सैकड़ों साल से स्थापित है तथा समय के साथ इन संबंधों में मज़बूती आयी है। इस बात को कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि इस पारस्परिक संबंध का सारा श्रय इन दो देशों की भाषाओं अर्थात् संस्कृत, पहलवी एवं फ़ारसी भाषा एवं इसमें लिखे साहित्य को जाता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य न केवल यह जानना है कि भारत में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का विकास किन परिस्थितियों में और कैसे हुआ, बल्कि इस शोध पत्र के माध्यम से हमें इन दो देशों के बीच सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संबंधों को समझने में भी आसानी होगी। यह शोध पत्र निःसंदेह इस वैश्विक परिवेश में, जहाँ हम विश्व साहित्य की बात करते हैं, साहित्य प्रेमियों को विशेषकर तुलनात्मक अध्ययन से जुड़े शोध कर्ताओं को फ़ारसी भाषा में उपलब्ध सूत्रों से अवगत कराने का उद्देश्य पूरा करेगा।

**संकेताक्षर :** सल्तनत काल, फ़ारसी भाषा, फ़ारस, फ़ारसी साहित्य, मसनवी, क़सीदा, ग़ज़ल, सूफ़ी संत, सुल्तान, मलफ़ुज़ात, मख़तुता, तज़क़िरा, दीवान।

**भा**रत और फ़ारस के आपसी संबंध हजारों साल पुराने हैं। इन दो देशों के बीच सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संबंध ईसा पूर्व सैकड़ों साल पहले स्थापित हो चुके थे। हरवामनशी वंश के शासक डैरियस महान ने अपने पदाधिकारी को भारत जाने वाली समुद्र मार्ग का पता लगाने के लिए भेजा। इस मार्ग की खोज के पश्चात् ही डैरियस सिंध एवं पंजाब को अपने साम्राज्य में मिलाने में सफल हुआ। आनेवाले समय में इस प्रकार की गतिविधियों ने दोनों देशों के बीच पारस्परिक संबंध को सुदृढ़ बनाने में अहम भूमिका निभाई। समय के साथ दोनों देशों में एक दूसरे की संस्कृति, भाषा, साहित्य एवं जीवन शैली को जानने एवं समझने की चेतना बढ़ी। सासानी सम्राट अनुशेरवान का अपने राज बैध को भारत में अमृत की खोज के लिए भेजना तथा उसका यहाँ से विष्णु शर्मा की बहुचर्चित पुस्तक 'पंचतंत्र' का ले जाना और फिर उसका पहलवी अनुवाद,<sup>2</sup> ये सारी घटनाएँ इसी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवेश को समझने बूझने की प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

भारत में, आधुनिक फ़ारसी भाषा एवं साहित्य की औपचारिक नींव महमूद ग़ज़नी के आगमन के साथ पड़ी। विशेषकर जब इस वंश के शासकों ने अपना केन्द्र ग़ज़ना से लाहौर स्थापित किया तब उन्होंने महमदू के दरबार की परम्परा को जारी रखते हुए साहित्य एवं कला को विशेष प्रोत्साहन दिया।<sup>3</sup> इनकी इस नीति ने फ़ारस एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों से कवियों, साहित्यकारों एवं शिल्पियों को लाहौर आने के लिए आकर्षित किया। फलस्वरूप लाहौर में उस समय के इस्लामिक जगत के नामवर लेखक, बुद्धिजीवी एवं शिल्पी इकट्ठा होते गए। संभवतः इसी स्थान पर सर्वप्रथम भारतीय परिवेश में फ़ारसी पद्य साहित्य की रचना प्रारम्भ होती है जिसने उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्परा को विकसित करने में अहम भूमिका निभाई।

भारत की धरती पर जन्मे पहले फ़ारसी कवि के रूप में अबू अब्दुल्लाह नुक़ती का शुमार होता है जिन्होंने सुल्तान मसूद के शासनकाल में लाहौर में जीवन व्यतीत किया किन्तु दुर्भाग्यवश उनके द्वारा लिखी फ़ारसी कविताएँ संरक्षित नहीं रह पाई हैं। इनकी कुछ-एक पंक्तियाँ यदा-कदा तज़क़िरो या जीवन वृत्तांतों में मिलती हैं।

भारतीय मूल के सबसे प्रथम उल्लेखनीय नामवर कवि अबुल फ़रज रूनी हैं, जिन्होंने फ़ारसी भाषा में पद्य साहित्य की रचना की। इन्होंने अपनी विशेष शैली तथा विशिष्ट रचनाओं के कारण साहित्य जगत में अपनी एक खास पहचान बनायी है। अबुल फ़रज रूनी ने अपने पीछे एक कविता संग्रह (दीवान) भी छोड़ा है जो फ़ारसी साहित्य के धरोहर में शामिल है।<sup>4</sup> ग्यारहवीं सदी के इस विख्यात कवि ने न केवल अपने देश के कवियों को प्रेरित किया है बल्कि फ़ारस के मूल कवियों के भी प्रेरणास्रोत रहे हैं। मसूद साद सलमान 'जुरजानी' एवं अनवरी जैसे दिग्गज कवियों ने स्वयं इनके अनुसरण की बात को स्वीकारा है। विशेषकर अनवरी ने अपने क़सीदों में अबुल फ़रज रूनी की शैली का अनुसरण किया है।

अबुल फ़रज रूनी के बाद दूसरा नाम मसूद साद सलमान 'जुरजानी' का आता है जिनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में लाहौर में हुआ था। इन्होंने जालंधर में कुछ समय के लिए आवास ग्रहण किया।<sup>5</sup>

बहुत ही कम समय में इनकी लोकप्रियता फैली जिसकी वजह से आस-पास के साहित्य प्रेमी इनके पास आने लगे। इनके अनुयायियों में सबसे प्रमुख नाम मुहम्मद राशिद शिहाबुद्दीन का है जो अपनी ग़ज़लों के लिए जाने जाते थे तथा जिनकी अधिकांश कृतियों पर रुदकी समरकंदी एवं सादी सिराज़ी की छाप दिखाई पड़ती है।

'कशफ़-उल-महजुब' पुस्तक के रचयिता अबुल हसन अली इब्न उसमान अल हुजवेरी के जीवन का अधिकांश समय भारत में ही बीता तथा उनकी मृत्यु भी लाहौर में ही हुई। आज भी आध्यात्म एवं भक्ति जैसे जटिल विषय पर इस पुस्तक की गणना इस विषय की पुस्तकों की श्रेणी के शिखर पर होती है।<sup>6</sup>

बारहवीं सदी के अन्त में लाहौर में राजनैतिक अस्थिरता के बावजूद भारत भूमि पर फ़ारसी साहित्य की नींव मज़बूत होती रही। दिल्ली के ताजुद्दीन रिज़ा, बदायुन के शिहाबुद्दीन तथा सरहिन्द के अमीनुद्दीन इत्यादि इस युग के शिखर के विद्वानों में से हैं जिन्होंने अपनी दक्षता से फ़ारसी साहित्य को सुदृढ़ बनाया। ताजुद्दीन रिज़ा अपनी अस्मरणीय क़सीदा के लिए जाने जाते हैं। इन्होंने दिल्ली के गुलाम वंश के शासकों विशेषकर शमसुद्दीन इल्तुतमिश तथा उनके उत्तराधिकारी रुकनुद्दीन फ़िरोज़ की प्रशंसा में क़सीदे लिखे हैं।

ग़ज़ना के पतन के बाद मुल्तान और दिल्ली, साहित्यिक गतिविधियों के दो प्रमुख केन्द्र बन गए। यहाँ तक की इन दोनों जगहों के शासकों में एक प्रकार की स्पर्धा सी आरम्भ हो गई कि कौन ज़्यादा बुद्धिजीवियों तथा कवियों को अपने दरबार में आकर्षित करता है। ग़ज़ना, ग़ौर, ख़ोरासान आदि शहरों से वहाँ की अस्थाई राजनैतिक परिवेश से भयभीत तथा विचलित होकर वहाँ का बुद्धिजीवि वर्ग भारत की ओर पलायन करने लगा। इस समय मुल्तान और दिल्ली के सुल्तानों ने उदारतापूर्वक इन बुद्धिजीवियों तथा लेखकों को अपने-अपने दरबार में जगह दिया।

शमसुद्दीन मुहम्मद बलख़ी, फ़ाज़ली मुलतानी एवं ज़ियाउद्दीन जैसे प्रतिभावान कवियों ने मुलतान के शासक सुल्तान क़बाचा के दरबार की गरिमा बढ़ाई। क़बाचा का प्रधानमंत्री अईन-उल-मुलुक ख़ुद ही एक प्रतिभावान कवि एवं कला का उपासक था। कवियों की जीवनी पर आधारित मुहम्मद औफ़ी द्वारा लिखित विख्यात पुस्तक 'लुबाब-उल-अलबाब', अईनुल मुलुक के ही छत्र-छाया में लिखी गई। औफ़ी ने अपनी दूसरी पुस्तक 'जवामिउल-हिकायत-व-लवामिउर-रिवायत' नसीरुद्दीन क़बाचा के आग्रह पर ही लिखी थी।<sup>7</sup> भारतीय मूल के लेखकों ने फ़ारसी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, विशेषकर यहाँ के लेखकों ने 'तज़किरा' लेखनी कि विधा में अतुलनीय काम किया। वास्तव में फ़ारसी साहित्य में सर्वप्रथम तज़किरा भारत में ही लिखा गया। 'लुबाब-उल-अलबाब' फ़ारसी जगत का प्रथम तज़किरा माना जाता है।<sup>8</sup> तज़किरा के अतिरिक्त शब्दकोष तथा व्याकरण जैसे विषयों पर भी भारत के लेखकों ने ही अपनी लेखनी से फ़ारसी साहित्य को अलंकृत किया।

तेरहवीं सदी में भारत में फ़ारसी भाषा एवं साहित्य का तेज़ी से प्रसार हुआ। दिल्ली की गद्दी पर आसीन गुलाम वंश के कुछ शासकों जैसे कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, नुरुद्दीन इत्यादि की फ़ारसी भाषा एवं साहित्य में व्यक्तिगत रुचि तथा प्रोत्साहन के कारण यहाँ फ़ारसी साहित्य की जड़ें मज़बूत हुईं। हसन निज़ामी निशापुरी द्वारा लिखित, 'ताज-उल-मआसिर', अली बिन हमीद बिन अबी बक्र अलकुफ़ी की पुस्तक 'चाच नामा' तथा मिनहाज-उस-सिराज की 'तबक़ात-ए-नासिरी' आदि इस युग की बहुचर्चित पुस्तकें हैं। उपयुक्त पुस्तकें उस समय के इतिहास की विस्तृत रूप-रेखा प्रस्तुत करती हैं। मिनहाज सिराज ने

अपनी इस पुस्तक को सुल्तान इल्तुतमिश के पुत्र नासिरउद्दीन महमूद शाह को समर्पित करते हुए ही इसका नाम 'तबकात-ए-नासिरी' रखा है।'

सुल्तान रुकनुद्दीन गियासुद्दीन बलबन तथा उसके पुत्र सुल्तान मुहम्मद ने अपनी पसंद से उस समय के विख्यात कवियों की चुनिन्दा कविता पर आधारित 20,000 छंदों का एक संकलन तैयार किया था। जो उस समय की सबसे अधिक सुसज्जित व सुंदर संकलनों में शुमार होता था।

सुल्तान बलबन का दरबार उस समय के चोटी के लेखकों का संगम स्थल था। उनमें विशेषकर अमीरखुसरो, शैख उसमानी तिरमिज़ी, शैख बदरुद्दीन आरिफ़, अमीर हसन देहलवी, सैयद मौला, शैख शकर गंज, बहाउद्दीन एवं कुतुबउद्दीन बख़्तियार इत्यादि के नाम शामिल हैं। इन विद्वानों ने विभिन्न विषयों जैसे इतिहास, दर्शन, कविता के अतिरिक्त विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर ढेरों बहुचर्चित पुस्तकें लिखीं।

इन सभी लेखकों में बहुआयामी प्रतिभा के धनी अमीर खुसरो सबसे अग्रणी थे। इन्होंने अपनी अतुलनीय प्रतिभा से न केवल फ़ारसी भाषा एवं साहित्य को नये क्षितिज पर पहुँचाया बल्कि इस भाषा की लोकप्रियता को भी बढ़ाया। अमीर खुसरो ने फ़ारसी के साथ-साथ उस वक़्त की आम-बोलचाल की भाषा को भी अपनी अद्भुत शैली से विकसित किया तथा उसे संप्रेषण का माध्यम बनाया जिसके कारण अमीर खुसरो जन-मानस के बौद्धिक चेतना में रच बस गए। इन्होंने अपनी फ़ारसी कविता में एक अद्भुत प्रयोग किया जो अत्यन्त सफल और लोकप्रिय हुआ। इन्होंने अपनी कुछ फ़ारसी ग़ज़लों में सफलतापूर्वक एक पंक्ति फ़ारसी और दूसरी पंक्ति हिन्दवी के मिश्रण से इन्हें एक नया रूप दिया जो आज भी साहित्य प्रेमियों को मोहित करती है।

अमीर खुसरो, जिनका वास्तविक नाम अमीर अबुल हसन खुसरो था, का जन्म 1253 ई. में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित पटियाली नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की यात्रा सुल्तान बलबन के दरबार से आरम्भ किया और उसके बाद परस्पर दिल्ली सल्तनत के सात शाषकों के दरबार की गरिमा को बढ़ाते हुए कुशलतापूर्वक अपने कार्य का निर्वहन करते रहे। ये खुसरो की ही विशेषता थी कि वे राजनैतिक सत्ता अर्थात् उस वक़्त के राजाओं के दरबार के साथ-साथ आध्यात्मिक सत्ता अर्थात् अपने

आध्यात्मिक गुरु हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के ख़ानकाह, के बीच अपना संतुलन बनाए रखने में सफल रहे। अमीर खुसरो को विश्वासी धारा के इस सूफ़ी संत का सबसे प्रिय एवं विश्वसनीय शिष्य होने का गौरव भी प्राप्त है। अमीर खुसरो ने अपने देश व्यापी भ्रमण से बहुत अनुभव प्राप्त किया जिसके कारण इनकी लेखनी में बहुत निखार आया। भारत पर मंगोलों के आक्रमण तथा उनकी बर्बरता को क़रीब से सिर्फ़ देखा ही नहीं बल्कि खुद उनके द्वारा बंदी भी बनाए गए। इस राजनैतिक उथल-पुथल ने इनके व्यक्तित्व को और परिपक्व किया।

अमीर खुसरो इण्डो-परसियन साज़ा विरासत के मूल निर्माताओं की श्रृंखला के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ माने जाते हैं। इनकी अद्भुत बौद्धिक क्षमता तथा फ़ारसी, अरबी, तुर्की एवं हिन्दवी भाषाओं पर इनकी दक्षता ने इन्हें साहित्य, ज्ञानमिमांसा, संगीत, लोकगीत आदि क्षेत्रों में अतुलनीय योगदान देने में सहायक सिद्ध हुई। खुसरो ने पाँच कविता संग्रह : 'तुहफ़त-उस-सोग़र', 'वसतत-उल-हयात', 'गुरत-उल-कमाल', 'बक़िया-नक़िया' तथा 'निहायत-उल-कमाल' एवं पाँच मसनवियां (ख़मसा): 'मतला-उल-अनवार', 'शिरीन-व-ख़ुसरो', 'मजनू-व-लैला', 'आइना-ए-ईसकन्दरी' तथा 'हश्त बेहश्त' हैं। खुसरो ने अपनी पाँचों मसनवियां (ख़मसा), फ़ारस के विख्यात कवि निज़ामी गंजवी के ख़मसा के जवाब में लिखी। उनकी उपर्युक्त पद्य कृतियाँ इस विधा के अलंकार से सुसज्जित होने के बावजूद उस समय के राजनैतिक इतिहास पर भी अच्छे ढंग से टिप्पणी करती हैं। पद्य के साथ-साथ ग़द्य-साहित्य में भी इनका अहम योगदान है। ग़द्य विधा में इनकी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं : 'एजाज़-ए-ख़ुसरवी' तथा 'दिबाचा-ए-गुरत-उल-कमाल'। इतिहास के विषय पर लिखी 'ख़ज़ाएन-उल-फ़ुतुह' एवं 'रेसायल-उल-एजाज़' विशिष्ट पुस्तकें हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं : 'क़िरान-उस-सादैन', 'नुह-सिपिहर', 'मिफ़ताह-उल-फ़ुतुह' इत्यादि।<sup>10</sup>

भारत में फ़ारसी ग़ज़ल की लोकप्रियता बढ़ाने में अमीर खुसरो का बहुत बड़ा योगदान है। अमीर खुसरो के समकालीन और फ़ारसी साहित्य के दूसरे उज्ज्वल सितारे हसन देहलवी जो हसन सिजज़ी के नाम से भी विख्यात है, ने फ़ारसी शायरी विशेषकर फ़ारसी ग़ज़ल

को नया आयाम दिया। हसन देहलवी और अमीर खुसरो की अधिकांश मुलाकातें सम्भवतः हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के खानकाह में हुई। हसन देहलवी भी दिल्ली में सुल्तान के दरबार से जुड़े थे और आगे चलकर उन्हें राज कवि होने का अवसर भी मिला। इन्होंने अपनी पहचान अपनी ग़ज़लों के कारण बनाई। इनकी ग़ज़लों पर फ़ारसी साहित्य में ग़ज़ल के सबसे बड़े कवि शैख़ सादी का अधिक प्रभाव दिखता है। शायद इसी वजह से इन्हें 'सादि-ए-हिन्द' भी कहा जाता है।<sup>1</sup> ग़ज़ल के अतिरिक्त इन्होंने मसनवी भी लिखी जिसमें 'इश्क़ नामा' या 'हिकायत-ए-आशिकी-ए-नागोरी' उल्लेखनीय है। इनके लेखों का संकलन 'फ़वाय-उल-फुवाद' है जिसमें अधिकांशतः इनके और इनके आध्यात्मिक गुरु हज़रत निज़ामुद्दीन के बीच हुए वार्तालाप दर्ज हैं। इसी कारण इस पुस्तक को मलफुजात (आध्यात्मिक गुरु की वाणी) की श्रेणी में रखा जाता है।

गुलाम वंश के बाद ख़िलजी वंश के शासन में आने के पश्चात् भी दिल्ली बुद्धिजीवियों तथा उच्चकोटि के लेखकों का केन्द्र बना रहा। बहुतेरे लेखक एवं कवि फ़ारस के विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों जैसे समरकंद, बुखारा, तबरीज़, इसफ़ाहान इत्यादि जगहों से दिल्ली के दरबार में आते रहे और यहाँ की सांस्कृतिक वातावरण में रचते-बसते गए।

ख़िलजी के बाद तुग़लक़ वंश का दिल्ली की गद्दी पर उदय हुआ। सुल्तान ग़ियासुद्दीन तुग़लक़ और उनके पुत्र सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ साहित्य प्रेमी और बौद्धिक क्षमता के धनी व्यक्ति थे। इन्होंने फ़ारसी साहित्य के उत्थान एवं प्रसार में विशेष भूमिका निभाई। उस समय के अनेक विख्यात कवियों, इतिहास विदों ने मुहम्मद तुग़लक़ के दरबार को सुशोभित किया। इस युग में ज़ियाउद्दीन बरनी ने अगर इतिहास के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी तो वहीं अबु अली क़लन्दर ने मसनवी लेखनी के क्षेत्र में अस्मरणीय काम किया। स्वयं सुल्तान फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ ने 'फ़तुहात-ए-फ़िरोज़शाही' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। 'तारिख़-ए-फ़िरोज़शाही' भी इस युग की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

भले ही अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद विस्थापित करने के कारण सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ की जितनी आलोचना हो किन्तु उनके इस निर्णय से फ़ारसी साहित्य एवं संस्कृति को दक्षिण भारत में फैलने

का अवसर मिला। बदरुद्दीन चाच जो बदर-ए-चाच के नाम से विख्यात थे। इन्होंने भी एक 'शाहनामा' लिखी जो इस युग के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इस पुस्तक में बदर-ए-चाच ने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकाल की अहम घटनाओं को दर्ज किया है।<sup>2</sup> सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ और उनके बाद के शासकों के समय अनेकों सूफ़ी संतों के पत्रों का संकलन (मख़तुता) भी छपा। शैख़ शर्फ़-उद्दीन यहया मनेरी ने भी फ़ारसी हिन्दवी मिश्रित भाषा में लिखा। ज़ियाउद्दीन नख़शबी बदायुनी ने 'तुतीनामा' एवं गुलरेज़ जैसी पुस्तकें लिखीं।

फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने दिल्ली की गौरव को बहाल करने का भरपूर प्रयत्न किया। इन्होंने दौलताबाद से कवियों तथा लेखकों को पुनः दिल्ली बुलाने की भरपूर कोशिश की। दक्षिण भारत में भी बड़ी संख्या में फ़ारस से कवि, लेखक, बुद्धिजीवी, संत, कलाकार एवं दूसरी विधा के विशेषज्ञ गुलबर्गा में उपस्थित थे। गुलबर्गा में उस समय इनकी संख्या इतनी थी कि ये नगर किसी फ़ारसी राजकुमार की राजधानी प्रतीत होती थी।

सिकंदर लोदी का शासनकाल फ़ारसी साहित्य के विकास और विस्तार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। सिकंदर लोदी की इस संबंध में उदारता के कारण दुनिया भर से लेखक एवं बुद्धिजीवी दिल्ली आए और स्थाई तौर पर यहाँ आवास ग्रहण किया। सिकंदर लोदी सवंय एक कवि था तथा उसने 'गुलरुख़' के नाम से शायरी की। इनका एक दीवान भी मिलता है। सिकंदर लोदी के शासनकाल में फ़ारसी आम-बोलचाल में इस्तेमाल होती थी जिसके कारण इस काल में बहुत सारे शब्दकोष की रचना हुई। इसी युग में दिल्ली के बदरुद्दीन मुहम्मद ने 'फ़वायद-उल-फुजला' नाम से दो खण्डों पर आधारित एक शब्दकोष की रचना की। महमूद इब्न ज़ियाउद्दीन मुहम्मद ने 'फ़िरहंग-ए-सिकन्दरी' जो 'फ़तुह-उस-सादात' के नाम से भी जानी जाती है, लिखा।

इब्राहिम लोदी के शासनकाल में एक और शब्दकोश, शैख़ मुहम्मद ने लिखी जिसका नाम 'मुइदुल-फुजला' था। लोदी के शासन काल को विशेषकर शब्दकोशों की रचना के लिए भी जाना जाएगा।

सारंश : किसी भी भाषा में रचित साहित्य का इतिहास इतना वृहद और फैला हुआ होता है कि इसे एक शोध पत्र में समाहित करना समन्दर को प्याले में भरने समान है। फिर भी इस प्रकार के प्रयास से विषय-वस्तु

की एक झलक मिल जाती है। आज के इस वैश्विक (Global) दौर में साहित्य प्रेमियों तथा तुलनात्मक अध्ययन के छात्रों को विश्व के साहित्य के इतिहास की कम से कम साधारण समझ होनी चाहिए ताकि विश्व साहित्य (world literature) को समझने में उन्हें आसानी हो।

### **संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. जवाहरलाल नेहरू, 'द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981, पृ.-147
2. ई.जी.ब्राउन, 'अ लिटरी हिस्ट्री ऑफ परसीया', खण्ड-1, गुडवर्ड बुक, नई दिल्ली, 2011, पृ.-110
3. वही, खण्ड-2, पृ.-118
4. नइमुद्दीन, 'परसीयन लिटरेचर इन इण्डिया', नाज़िया प्रेस, नई दिल्ली, 1985, पृ.-94
5. वही, पृ.-81-100
6. ई.जी.ब्राउन, खण्ड-2, पृ.-288
7. एम. जेड. हुदा, 'हिस्ट्री ऑफ परसीयन लिटरेचर,' पृ.-93
8. ज़ोहरा खानलरी, 'राहनुमाई-ए-अदबियात-फ़ारसी', किताबख़ान-ए-इब्नसीना, 1341 हि., पृ.-331-332
9. वही, पृ.-252
10. वही, पृ.-52-53
11. वही, पृ.-163
12. एच. इलियेट, 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन', III, पृ.-567-573

# मारवाड़ की प्रमुख व्यापारिक जातियां (महाजन, रेबारी, बंजारा आदि के विशेष सन्दर्भ में)



shodhshree@gmail.com

इन्द्रा देवी

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में मारवाड़ की प्रमुख व्यापारिक जातियों के बारे में चर्चा की गई है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की जातियों के अपने अलग-अलग व्यवसाय हुआ करते थे। मारवाड़ में महाजन या वैश्य एक प्रमुख व्यापारी जाति थी। रेबारी जाति के लोग ऊँट पालक होने से व्यापार के लिए ऊँटों द्वारा माल संचरण करते थे। बंजारा जाति के लोग सदियों से व्यापार के माल को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने का कार्य करते थे। मारवाड़ के सम्पूर्ण व्यापार पर इनका एकाधिकार था। मारवाड़ राज्य सामाजिक दृष्टि से परम्परागत व्यवस्था पर आधारित था। जाति व्यवस्था अत्यन्त ही जटिल थी। यहाँ पर अलग-अलग जातियों के अपने अलग से रीति-रिवाज तथा व्यवसाय हुआ करते थे। लगभग प्रत्येक जाति के लोग अपनी विशिष्टताओं के लिए जाने जाते थे।

**संकेताक्षर :** मारवाड़, व्यापार, ओसवाल, व्यवसाय, जातियां।

**रा**जस्थान की भूमि वीरों, संतों, भक्तों की रही हैं। यहाँ की संस्कृति, कला एवं साहित्य सबसे निराला रहा हैं। राजस्थान के इस क्षेत्र में मारवाड़ प्रदेश भी अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के लिए बड़ा प्रसिद्ध रहा है। मारवाड़ में प्राचीन काल से ही चार वर्ण हुआ करते थे। जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र प्रमुख रहे हैं। मारवाड़ में जातिवाद अन्य प्रदेशों की भांति अधिक रहा है। यहाँ पर हिन्दूओं की लगभग 150 जातियां और उप जातियां निवास करती हैं। मारवाड़ की जातियों को अनेक वर्गों में विभाजित गया हैं। मर्दुमशुमारी रिपोर्ट के अंतर्गत यहाँ की जातियों को चार भागों में विभाजित किया गया है—ए. क्लास, बी. क्लास, सी. क्लास और डी. क्लास। ए. क्लास में जमींदारी व खेती करने वाली जातियां आती हैं। बी. क्लास में नौकरी पेशा करने वाली जातियां सम्मिलित हैं। सी. क्लास में व्यापारी वर्ग वाली जातियां शामिल हैं तथा डी. क्लास में कारीगर या पुश्तैनी काम करने वाली जातियां सम्मिलित हैं।

मारवाड़ में वैश्य वर्ग के अंतर्गत व्यापार करने वाली जातियां आती हैं। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की जातियों के अपने अलग-अलग व्यवसाय हुआ करते थे। मारवाड़ की प्रमुख व्यापार करने वाली जातियों में महाजन, ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, रेबारी व बंजारा आदि प्रमुख रही हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन पर विस्तृत प्रकाश डाला जा रहा हैं।

## महाजन

मारवाड़ में महाजन एक प्रमुख व्यापारी जाति थी। जिनका मारवाड़ के सम्पूर्ण व्यापार पर एकाधिकार था। मारवाड़ के नागौर, जालोर, बाली, देसूरी, सोजत, डीडवाना और साम्भर के प्रदेशों में यह जाति बहुत अधिक संख्या में पाई जाती थी। इस जाति को मुख्य रूप से चार वर्गों ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी और खत्री में बांटा गया। प्रथम वर्ग के महाजन जैन धर्म के अनुयायी जबकि बाकी हिन्दू धर्म को मानते थे। व्यापार-व्यवसाय पर एकाधिकार होने के कारण इस जाति के पास अधिक मात्रा में धन उपलब्ध था और राज्य में बैकर का कार्य भी करते थे तथा भारी ऊँची ब्याज दरों पर ऋण दिया करते थे। व्यापारिक कार्यों के साथ ही मारवाड़ में भण्डारी, सिंघवी, मुंहणोत आदि महाजनों ने राजकीय सेवा में भी प्रवेश कर उच्च प्रशासनिक पदों को हासिल किया।

मारवाड़ महाजनों की खान है। यहाँ के महाजन दूसरे मुल्कों में भी जगह-जगह पर रहते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास

और हैदराबाद आदि शहरों में उनके बाजार हैं जो मारवाड़ी बाजार कहलाते हैं।

मारवाड़ में महाजनों के दो मतभेद हैं एक जैनी महाजन और दूसरे हिन्दू महाजन जैनी। जैनी महाजनों में ओसवाल, सरावगी, पोरवाल, श्रीमाल और श्रीश्रीमाल भी आते हैं। हिन्दू महाजनों में माहेश्वरी, अग्रवाल, वीजाबरगी, खंडेलवाल और सूर्यकलाल हैं। इनके रस्म-रिवाज करीब दोनों के एक ही हैं। लेकिन दोनों में कुछ एक बातों में फर्क भी है जैसे खाने-पीने में ओसवाल तो गोली और नाई के हाथ की रोटी खा लेते हैं और दूसरे महाजन नहीं खाते हैं। इस तरह लहसुन और प्याज भी नहीं खाते और ओसवाल खाते हैं।

हिन्दू महाजनों में कोई सिपाही गिरी पेशा नहीं करता और राजकीय नौकर भी बहुत कम हैं क्योंकि ओसवाल दूसरे महाजनों को राजकीय कार्यों में काम करने नहीं देते हैं। इसी कारण से ओसवाल सभी महाजनों से ऊपर हैं। सूरत, शक्ल और अमीरी की बातों में ओसवाल और खास करके मुत्सद्दी लोग दूसरे महाजनों से बढ़कर हैं और सिपाही गिरी में भी टांग रखते हैं क्योंकि वे अपने को राजपूत समझते हैं और दूसरे महाजनों की चाहे वे कितने भी मालदार हो कुछ हैसियत नहीं समझते और उनको बनिया कहते हैं।

भाई बटे का रिवाज हिन्दू और जैनी महाजनों में बराबर है तथा सब भाई बराबर बंट कर लेते हैं। इसलिए “किराड़ जूते विराड़” की कहावत मशहूर रही है यानी जितने बनिये उतने ही बंट।

### जैनी महाजन

जैनी महाजन मारवाड़ में हिन्दू महाजनों से बहुत ज्यादा हैं उनमें ओसवाल, पोरवाल और सरावगी ज्यादा प्रसिद्ध हैं। ओसवालों का मूल स्थान ओसिया रहा है। इनकी अठारह खांपों में तातेड़, बाफना, नाहटा, संचेती, कोठारी, धारीवाल, चौपड़ा, छाजेड़, मेहता, भंडारी, सालेचा, लोढा, सुराणा, दूगड़, सिंघवी, नाहर, मुंहपोत आदि प्रमुख रही हैं। ओसवाल तो मारवाड़ में सब जगह पर हैं मगर पोरवाल बाली, जालोर और सांचोर इत्यादि में ही हैं जो सिरौही, गुजराज और मेवाड़ की सरहद से मिले हुए हैं और सरावगी मारोठ, सांभर, नावां, परबतसर और डीडवाना इत्यादि परगनों में हैं जो अजमेर, किशनगढ़ और जौनपुर की सरहद से मिलते हैं।<sup>1</sup>

### रैबारी

इन जाति के लोग ऊँट पालक होने से व्यापारिक के लिए ऊँटों के द्वारा माल संचरण करते थे। इनसे व्यापारी ही नहीं अपितु शासन भी ऊँट किराये पर लेता था। उपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर एक ऊँट का एक माह का किराया पांच रुपये व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु यह सभी जगह और सभी समय में प्रचलित नहीं थी। रैबारी वर्ग पशुपालन के साथ-साथ पशु ऊन से बने उत्पादों का निर्माण एवं वितरण भी करता था।

रैबारी अपना स्थान कैलाश पर्वत बतलाते हैं। वहाँ से कुछ प्राप्त में आये और मेवाड़ में होकर सम्पूर्ण राजस्थान में फैले। रैबारी नाम इसलिए कहा जाता है कि यह घर का दरवाजा गाँव की तरफ नहीं रखते हैं बल्कि जंगल की तरफ रखते हैं। त्यौहार आम रिवाज से दो दिन आगे-पीछे करते हैं। मृतक के पीछे भद्र नहीं होते हैं, श्राद्ध भी नहीं करते हैं और फूल और भस्मी कही नहीं ले जाते हैं। नवें दिन की क्रिया भी नहीं करते हैं। सदा जंगल में रहते हैं, नहाते-धोते भी नहीं धर्म-कर्म भी कुछ नहीं जानते हैं जिससे ये भूत कहलाते हैं।<sup>2</sup>

### रैबारियों की खांपे

- |                     |                          |
|---------------------|--------------------------|
| (1) आजाणा सोलंखी    | (21) गहलोट गहलोट         |
| (2) आरू गौड़        | (22) गांगल भाटी          |
| (3) आल भाटी         | (23) गोड़ गोड़           |
| (4) ऊलवा चौहान      | (24) धग्गा               |
| (5) करगटा           | (25) चवाण                |
| (6) करमटा           | (26) चामड़ (सामड़) चामड़ |
| (7) कलातरा ब्राह्मण | (27) चेलाणा सोलंकी       |
| (8) कापाला          | (28) जादव भाटी           |
| (9) कांकण परमार     | (29) जूजा भाटी           |
| (10) काछेला सोलंकी  | (30) जूवा चौहान          |
| (11) कालर भाटी      | (31) झूटाणा              |
| (12) कायला          | (32) टवाणा गहलोट         |
| (13) कूकड़ा         | (33) टवारिया             |
| (14) खरड़ भाटी      | (34) डेडर चोहाण          |
| (15) खरमटा          | (35) डोई                 |
| (16) खाबला          | (36) ढबल                 |
| (17) खाटाणा सोलंकी  | (37) तुंवर तुंवर         |
| (18) खियावत         | (38) दूहा                |
| (19) खैरवा          | (39) देरू                |
| (20) गल भाटी        | (40) घवा परमार           |
| (41) घाघुवा परमार   | (64) बोड़ा परमार         |

(42) घुला	(65) बोरणा परमार
(43) नमड़िया पड़िहारया	(66) भांगड़ा
(44) नागू राठौड़	(67) भाकड़ा
(45) पड़िहार	(68) भाकड़ा चोहान
(46) पड़िहारया	(69) भाटी
(47) पन्न भाटी	(70) भीम तुंवर
(48) परमार	(71) भूकिया चौहान
(49) पसुवाल पड़िहार	(72) भगर
(50) पावेचा	(73) भूक परमार
(51) पावेला	(74) भूभलिया परमार
(52) पूसला	(75) भूवा
(53) पोपोड़िया	(76) मकवाना
(54) फारड़का	(77) मरुपा
(55) बागरा	(78) मादरेचा
(56) बागरुड़	(79) मेऊ
(57) बांभला चौहान	(80) मीटाणा
(58) बारड़	(81) मोर
(59) बार चौहान	(82) रज चौहान
(60) बाला	(83) राठौड़
(61) बासोत चौहान	(84) रावकरड
(62) बीडा	(85) रंगो चौहान
(63) बिरामण	(86) ललूतका
(87) लूणी चौहान	(95) सावधारिया परमार
(88) लवत परमार	(96) सावलाणा परमार
(89) लोमरोड़	(97) सिसोदिया परमार
(90) लोड़ा परमार	(98) सूकल गहलोत
(91) सवार गहलोत	(99) सीलखी
(92) सदादरी परमार	(100) सेलाणा
(93) सांगावत	(101) हूण
(94) सावदरा	

## बंजारा

ये बैलों पर बाळद लादते थे, इससे इनका नाम बाळदिया हुआ।<sup>3</sup> इनको बंजारे भी कहा जाता था। हर बाळद में एक बड़ा आदमी होता था, जो नायक कहलाता था। प्रत्येक बाळदिया 'नायक' कहने से खुश होता था। इनमें अनेक जातियों के लोग सम्मिलित थे। इनके घर बैलों पर ही होते थे तथा ये लोग सदैव फिरते ही रहते थे। ये एक स्थान पर नहीं रहते थे। बंजारे मुख्यतः सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य करते थे साथ ही कुछ लोग व्यापार भी करते थे। ये लोग खाद्यान्न, नमक व परचूनी का सामान भी बेचते थे। ये बंजारे राजपूताना की सभी रियासतों में

माल इधर से उधर पहुँचाते एवं व्यापार भी करते थे।<sup>4</sup>

गाय-बैल पालक बंजारा जाति के लोग सदियों से व्यापार के माल के गन्तव्य तक पहुँचाने का कार्य करते आये थे। बैलों के झुण्ड पर माल ढोने को बालद तथा बंजारा को बाल्दीया भी कहा जाता रहा था। पहाड़ी मार्गों पर इनके पशुधन का अधिक महत्त्व था। एक हजार बैलों का स्वामी बंजारा नायक कहलाता था।<sup>5</sup> राजस्थानी स्त्रोतों में राजस्थान के सभी प्रदेशों में इनके द्वारा व्यापार के माल में नमक, शक्कर, गुड़, अनाज, तम्बाकू, कपड़े आदि ढोने का वर्णन मिलता है। एक बैल चार मण तक वजन उठा सकता था।<sup>6</sup> बंजारा जाति के लोगों में व्यापार करने वाले व्यापारी भी थे। किन्तु इन्हें शासक से व्यापार की अनुमति लेना आवश्यक होता था। राजकीय व्यापार से इनके सहयोग और सेवा के फलस्वरूप कई बार ऐसे बंजारे शासक द्वारा सिरोपांव से सम्मानित भी किये जाते थे।<sup>7</sup> बंजारों द्वारा सांभर, पचपदरा, डीडवाना व नावां से बड़ी तादाद में नमक का परिवहन राजपूताना व बाहर के भागों में किया जाता था। मध्यकाल से ही बंजारों का राजस्थान की व्यापारिक गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार संचालन में भी इस जाति का भारी सहयोग रहा था। भारत में रेलवे के आगमन से पूर्व लाखों मण माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर इन्हीं के द्वारा भेजा जाता था। हिन्दी विश्वकोष में लिखा है कि बंजारा का नाम 'देशकुमार' में भी आता है। इनके कई देश और खांपे हैं। मथुरा के बंजारे 'मथुरिया' कहलाते हैं। नमक बेचने वाले 'लुणिया' और इधर-उधर आने-जाने वाले 'चारण' कहलाते हैं।<sup>8</sup>

इस प्रकार मारवाड़ की इन तमाम व्यापारिक जातियों का मारवाड़ में अपना विशेष प्रभुत्व रहा है। इन्होंने समय-समय पर कृषि संबंधी विभिन्न व्यवसायों एवं अपने जनकल्याणकारी कार्यों द्वारा मारवाड़ की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया है। इनके द्वारा धर्मशाला निर्माण व शिक्षा संबंधी पाठशालाएं भी खोली गयी हैं।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रिपोर्ट मर्दुमथुमारी राज मारवाड़ : सं. मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर, 1891, पृ. 420, 422
2. राजस्थान की जातियां और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन : जगदीश सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर, 1997, पृ. 134
3. रिपोर्ट मर्दुमथुमारी राज मारवाड़ : सं. मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर, 1891, पृ. 423

4. राजस्थान की जातियों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन : सं. डॉ. कैलाशनाथ व्यास-देवेन्द्रसिंह गहलोत, श्री जगदीशसिंह गहलोत शोध संस्थान, जोधपुर, 1997, पृ. 134
5. रिपोर्ट मर्दुमथुमारी राज मारवाड़ : सं. मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर, 1891, पृ. 469, 470
6. 18 वीं शताब्दी में राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन : डॉ. विमलेश रावैड़, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़, जोधपुर, 2018, पृ. 213
7. राजस्थान का इतिहास-कर्मल टॉड : अनु. बलदेव प्रसाद-ज्वाला प्रसाद, यूनिवर्सिटी ट्रेडर्स, जयपुर, 1987, पृ. 162
8. ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, पृ. 143

# राजस्थान के प्रजामण्डल आन्दोलनों पर गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों का प्रभाव



shodhshree@gmail.com

डॉ. भरत देवड़ा

सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

राष्ट्रीय स्तर पर महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये राजनीतिक आन्दोलनों के साथ रचनात्मक कार्यक्रमों की अहम् भूमिका रही। उनसे प्रभावित होकर देशी रियासतों में भी जनजागृति पैदा करने वाले कार्यकर्ताओं व संस्थाओं ने उन रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाया। गाँधीजी ने अपने आन्दोलनों में खादी के उपयोग, मद्य निषेध, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि रचनात्मक कार्यों पर बल दिया। रियासतों में स्थापित राजनीतिक तथा सामाजिक संगठनों ने इस अहिंसक मार्ग को अपना राष्ट्रीय जागरण की अलख जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस समय जब प्रजामण्डलों की स्थापना हुई तब उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यक्रमों के साथ-साथ सामाजिक उत्थान एवं जनजागृति के लिए रचनात्मक कार्य भी किये। राजस्थान में खादी के प्रचार का कार्य संगठित रूप से सेठ जमनालाल बजाज के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, कोटा, भरतपुर आदि रियासतों में स्थापित प्रजामण्डल संगठनों द्वारा राजनीतिक मांगों के साथ-साथ सामाजिक सुधार के कार्य भी किये गये। इनमें मद्य निषेध के सम्बन्ध में सशक्त कदम उठाये गये, व्यापक कार्यक्रम चलाये गये। प्रजामण्डल के द्वारा निर्देशित गाँधीजी के इन रचनात्मक कार्यों का प्रभाव राजस्थान की जनता पर भी पड़ा एवं इससे यहाँ की जनता में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना का प्रसार हुआ।

**संकेताक्षर :** रचनात्मक कार्यक्रम, प्रजामण्डल आन्दोलन, खादी प्रचार, मद्य निषेध, अछूतोद्धार।

**प्र**थम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जब भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों का इंतजार कर रही थी, ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी रोलेट एक्ट को जनता के सम्मुख पेश किया। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के ऐसे रवैये के खिलाफ सत्याग्रह चलाने का निश्चय किया। सितम्बर 1920ई. में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने स्वराज्य की स्थापना होने तक असहयोग आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। इसके तहत सरकारी स्कूलों, न्यायालयों, विधान परिषदों एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात कही गई। गाँधीजी ने आगे के आन्दोलनों में खादी के उपयोग, मद्य निषेध, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि रचनात्मक कार्यों पर बल दिया। गाँधीजी के सहयोग आन्दोलन के तहत लोगों ने सरकारी उपाधियाँ लौटा दी तथा गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ जैसी अनेक राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। गाँधीजी के इन रचनात्मक कार्यों का प्रभाव राजस्थान की जनता पर भी पड़ा।

राष्ट्रीय स्तर महात्मा गाँधी द्वारा चलाये गये राजनीतिक आन्दोलनों के साथ रचनात्मक कार्यक्रमों की अहम् भूमिका रही। उनसे प्रभावित होकर देशी रियासतों में भी जनजागृति पैदा करने वाले कार्यकर्ताओं व संस्थाओं ने उन रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाया। सविनय अवज्ञा और रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में गाँधी ने दो प्रभावशाली अस्त्र देशवासियों को प्रदान किये इनमें सविनय अवज्ञा का प्रयोग हमेशा नहीं होता जबकि रचनात्मक कार्यक्रमों का अनुसरण हमेशा किया जा सकता है। गाँधीजी ने कार्यकर्ताओं को सलाह दी कि वह सविनय अवज्ञा के मौकों की तलाश में रहे, बल्कि रचनात्मक कार्यों में भी अपनी शक्ति लगाये। यदि सत्ताधारी द्वारा रचनात्मक कार्यों में बाधा डाली जाए तो कार्यकर्ताओं को सविनय अवज्ञा के लिए तैयार रहना चाहिये।<sup>1</sup>

गाँधीजी का मानना था कि रचनात्मक कार्यक्रम का ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में समान रूप से अमल किया जा सकता है। पूर्ण स्वराज्य अथवा उत्तरदायीपूर्ण शासन की प्राप्ति के लिए इसके अलावा कोई रास्ता नहीं हो सकता है। महात्मा गाँधी ने आशा व्यक्त की कि देशी राज्यों के कार्यकर्ता शासकों की उदासीनता, विरोध अथवा गतिहीनता की चिन्ता न करते हुए रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में पूरी शक्ति के साथ अपने को जुटा देंगे और इस प्रकार आजादी की नींव डालेंगे।<sup>3</sup>

गाँधीजी के इन कार्यक्रमों को राजपूताना की रियासतों के कार्यकर्ताओं ने भी अपनाया। रियासतों में स्थापित राजनीतिक तथा सामाजिक संगठनों ने इस अहिंसक मार्ग को अपना कर राष्ट्रीय जागरण की अलख जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस समय जब प्रजामण्डलों की स्थापना हुई तब उन्होंने अपने राजनीतिक कार्यक्रमों के साथ-साथ सामाजिक उत्थान एवं जनजागृति के लिए रचनात्मक कार्य भी किये। इनमें खादी प्रचार, मद्य निषेध, शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा का विकास, हिन्दी भाषा पर बल, स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना आदि कार्यक्रम सम्मिलित थे।

इस समय राजपूताना रियासतों में समाज सेवा एवं शिक्षा के कार्य राजद्रोह माना जाता था। गाँधीजी के आदर्शों के अनुरूप राजस्थान में प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं ने शिक्षा के माध्यम से अपने क्षेत्र में व्यापत दासता का विरोध किया तथा जन जागरण का संकल्प धारण किया और समाज को शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय चेतना से जोड़ने के लिए कार्य किया। 21 अगस्त 1937 ई. को 'राजस्थान विद्यापीठ' की स्थापना उदयपुर में पं. जनार्दनराय नागर द्वारा की गई। प्रारम्भ में इसे 'हिन्दी विद्यापीठ' नाम से जाना गया। इसका मूल उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से शिक्षित करके जन सामान्य में राष्ट्रीयता की भावना फैलाना था। पं. नागर ने इस संस्था के माध्यम से शोषित, पीड़ित एवं निम्न वर्ग में प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीयता की चेतना की जागृत की।<sup>4</sup> 1939ई. में प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएँ आरम्भ की। 1946ई. में श्रमजीविकों के लिए सांध्यकालीन महाविद्यालय तथा इसी वर्ष संगीत एवं नृत्य शिक्षा के लिए महाराणा कुंभा कला केन्द्र की स्थापना की गई। विद्यापीठ द्वारा निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा गरीबों एवं आदिवासियों के लिए दी जाती थी। इसके कार्य एवं महत्त्व को देखते हुए मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह ने 21 अगस्त

1948ई. को इसे विश्वविद्यालय घोषित कर दिया।<sup>5</sup>

महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 10 नवम्बर 1935ई. में दयाशंकर क्षौत्रिय ने 'महिला मण्डल' की तथा श्रीमती शांता त्रिवेदी ने 11 सितम्बर 1947ई. को 'राजपूताना महिला परिषद्' की स्थापना की। इनके माध्यम से महिलाओं के सर्वांगीण विकास, उत्थान, कल्याण तथा शिक्षा के विकास पर बल देना था। मेवाड़ में महिला जागृति व राष्ट्रीय धारा से महिलाओं को जोड़ने के लिए उदयपुर क्षेत्र में कन्या महाविद्यालय 'राजस्थान महिला विद्यालय' के नाम से 1916ई. में भैरूलाल गैलड़ा द्वारा खोला गया। इन शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं को शिक्षित कर अन्धविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति सजग एवं सावधान करना था।<sup>6</sup>

पं. उदय जैन ने समाज सुधार, खादी प्रचार तथा युवाओं में राष्ट्रवाद की भावना प्रज्वलित करने के लिए 24 अक्टूबर 1940ई. में 'जवाहर जैन विद्यापीठ' की स्थापना की। 1944ई. में जैन कन्या प्राथमिक विद्यालय भी खोला गया। जहाँ कन्याओं को सिलाई, कढ़ाई आदि कार्य सिखाये जाते। माणिकलाल वर्मा की धर्मपत्नी श्रीमती नारायणी देवी ने गाँधीजी के आदर्शों से प्रेरित होकर बहुउद्देश्यी उच्चतर विद्यालय भीलवाड़ा में स्थापित किया। इसका उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जगाने के साथ-साथ महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण भी देना था। इसी प्रकार चित्तौड़ में आर्य समाज के आदर्शों पर 1929ई. में श्री गुरुकुल, साहित्यिक विकास के लिए नाथद्वारा में 1937ई. में पं. शिवकुमार शास्त्री के निर्देशन में 'साहित्य मण्डल' तथा 1944ई. में मुंशी प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी ने 'वागड़ साहित्य परिषद्' की स्थापना इंगरपुर में की। इस संस्था ने वाचनालय, पुस्तकालय आदि खोले।<sup>7</sup>

मेवाड़ में किसान एवं जनजातीय आन्दोलन के समय शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। बिजौलिया किसान आन्दोलन के समय विजयसिंह पथिक ने 'विद्या प्रचारिणी सभा' के अन्तर्गत रात्रिशालाएं संचालित की थी। इन शालाओं में युवाओं, प्रौढ़ों तथा वृद्धजनों को शिक्षा के साथ-साथ देश की गतिविधियों की सूचना भी दी जाती थी। इंगरपुर में सेवा संघ तथा वागड़ सेवा मंदिर द्वारा शैक्षणिक प्रसार का कार्य किया गया। भौगीलाल पण्ड्या ने बाल शिक्षा के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा पर भी विशेष बल दिया। 1935ई. में गौरीशंकर उपाध्याय एवं भौगीलाल पंड्या द्वारा इंगरपुर में 'वागड़

सेवा मंदिर' की स्थापना आदिवासी भीलों, हरिजनों व पिछड़े लोगों में शिक्षा प्रसार व समाज सुधार के कार्य के लिए की गई। 'सेवा संघ' 15 मार्च 1938ई. में भोगीलाल पंड्या द्वारा ही स्थापित रचनात्मक संस्था थी जिसने 1942ई. के भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। इसी प्रकार मोडक में पं. नानूराम शर्मा ने 'हाड़ौती शिक्षा मण्डल', वनस्थली में पं. हीरालाल शास्त्री ने 'जीवन कुटीर' नामक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं के द्वारा शिक्षा प्रसार के साथ-साथ राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना का भी तीव्र गति से विकास हुआ।<sup>9</sup>

गाँधीजी ने अपने सत्याग्रहों में खादी के प्रचार पर विशेष बल दिया। इससे जहाँ एक तरफ विदेशी कपड़ों के विरोध में देशी कपड़ों का बढ़ावा देना था तो दूसरी तरफ लोगों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करना विशेषतः महिलाओं को। उनके इस कार्यक्रम का प्रभाव राजस्थान के सभी रियासतों में व्यापक रूप से देखा गया। सामाजिक तौर पर भारतवासियों के लिए खद्दर की उपयोगिता सन् 1924ई. से पहले तक स्पष्ट नहीं हो पायी। सन् 1924ई. में महात्मा गाँधी ने सभी कांग्रेसियों से कुछ सकारात्मक कार्य करने पर बल दिया। 'काकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन' हेतु लिये गये निर्णय के आधार पर 'खादी बोर्ड' की स्थापना की गई। इस बोर्ड का उद्देश्य संगठित रूप से खादी के प्रयोग के पक्ष में प्रचार करना था। खादी के प्रचार का कार्य संगठित रूप से सेठ जमनालाल बजाज के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। जमनालाल बजाज एवं उनकी धर्मपत्नी जानकी देवी ने जयपुर एवं शेखावाटी क्षेत्र में खादी प्रचार एवं सामाजिक सुधार के अनेक कार्य किये। श्री बजाज ने खादी को 'स्वदेशी' एवं गरीबी का आर्थिक आधार बताया। उनके द्वारा गरीबों में चरखे बाँटे गये ताकि उनका आर्थिक स्तर अच्छा हो सके। राजस्थान के अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में खादी का प्रयोग प्रारम्भ से चला आ रहा था, उसे स्थानीय बोली में रेजा या रेजी कहा जाता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्वदेश सिद्धान्त तथा गाँधीजी के खादी प्रचार ने यहाँ लोगों को प्रभावित किया।<sup>9</sup>

बिजौलिया किसान आन्दोलन में अन्य कार्यक्रमों के साथ खादी प्रचार पर बल दिया गया। साधु सीतारामदास ने खादी प्रचार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। विजयसिंह पथिक, हरिभाई और रामनारायण चौधरी के प्रयासों से 'राजस्थान सेवा संघ' की स्थापना 1920ई. में अजमेर की गई। इस संघ के

उद्देश्यों में मद्य निषेध, शिक्षा प्रचार, कुरीतियों का निवारण तथा खादी प्रचार प्रमुख था। एकी आन्दोलन के प्रवर्तक मोतीलाल तेजावत ने भी मद्य निषेध के साथ-साथ खादी प्रचार के कार्य को बढ़े उत्साह के साथ किया। सन् 1925ई. में सेठ जमनालाल बजाज उदयपुर में जब महाराणा फतेहसिंह से मिले तो महाराणा ने उनसे धूपछांव वाले खादी के दो थान खरीदे।<sup>10</sup>

प्रजामण्डल के आन्दोलनकारी भूरालाल बया के नेतृत्व में संध्या के समय कुछ लोग सामूहिक रूप से चरखा कातते थे तथा खादी की दुकान मोतीलाल तेजावत चलाते थे। नवम्बर, 1941ई. में जब मेवाड़ प्रजामण्डल का प्रथम वार्षिक अधिवेशन उदयपुर में हुआ तो यहाँ पर खादी की प्रदर्शनी लगाई गई। इंगूरपुर 'सेवा संघ' द्वारा गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया तथा खादी का प्रचार-प्रसार किया। बांसवाड़ा के प्रजामण्डल नेता धुलजी भाई, गोविन्द याज्ञनिक आदि ने स्वयं खादी पहनकर लोगों को खादी पहनने के लिए प्रेरित किया। धुलजी भाई ने 1942ई. में वर्धा से 20 चरखे बांसवाड़ा लेकर आए और युवकों को रोजगार के साथ खादी बनाना व प्रचार-प्रसार का कार्य शुरू किया।<sup>11</sup>

शेखावाटी में मूलचंद अग्रवाल के नेतृत्व में चरखा संघ की राजस्थान तथा खादी आश्रम की रींगस शाखाओं की स्थापना की गई। मास्टर भोलेनाथ ने अलवर में खादी तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए कार्य किया। 1940ई. में पुरजन विहार में एक विशाल खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन महात्मा गांधी के निजी सचिव महादेव भाई देसाई के हाथों से करवाया गया। अलवर प्रजामण्डल ने चरखा संघ के सहयोग से रचनात्मक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने व उनके अन्तर्गत जन-जागरण करने के उद्देश्य से कार्य किया। अलवर के सामाजिक कार्यों विशेषतः खादी और अस्पृश्यता निवारण संबंधी रचनात्मक कार्यों को महात्मा गाँधी का आशीर्वाद भी प्राप्त था। इसलिए अस्वस्थ होते हुए भी बापू ने महादेव भाई देसाई को प्रदर्शनी उद्घाटन करने को अलवर भेजा। कोटा में नानूराम शर्मा, नारायणसिंह, गौरीलाल आदि प्रजामण्डल नेताओं ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया तथा स्वदेशी वस्त्र अपनाने हेतु खादी के प्रचार पर बल दिया।<sup>12</sup> इस प्रकार राजस्थान के प्रत्येक रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों के समय खादी प्रचार के कार्य किये गये।

महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को एक पाप मानते थे तथा वह हिन्दू समाज को इस पाप से मुक्ति दिलाना चाहते थे। गाँधीजी अछूतों को हिन्दू समाज का एक अभिन्न अंग मानते थे तथा उन्हें समस्त अधिकार दिलाना चाहते थे, जो हिन्दू समाज के अन्य लोगों को प्राप्त थे। गाँधीजी के कार्यक्रमों के तहत हरिजनों को सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश कराया गया। इस प्रकार अछूतोद्धार कार्यक्रम को एक नवीन दिशा मिली, जिसका प्रभाव राजस्थान की रियासतों पर भी पड़ा। प्रजामण्डल नेताओं ने इस सामाजिक बुराई को हटाने के लिए कार्य किया। बिजौलिया किसान आन्दोलन से मेवाड़ देशभक्ति का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि सब आन्दोलनकारी एक रंग में रंग गये। अतः सच्चे अर्थों से अस्पृश्यता निवारण का स्वरूप इन किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलनों के समय दिखाई दिया जब सभी एक समान आन्दोलन के प्रति समर्पित भाव से काम करने लगे।

हरिजन सेवक संघ के प्रधान श्री ठक्कर बापा एवं श्रीमती रामेश्वरी नेहरू उदयपुर सनवाड़, कपासन तथा चित्तौड़ होते हुए भीलवाड़ा पहुँचे। इनको करजू नामक गांव में हरिजनों के साथ हुए सवर्णों के अत्याचार के बारे में बताया गया, जिसे इन्होंने जनसभाओं के माध्यम से हर जगह विरोध किया। मेवाड़ के दौरे में माणिक्यलाल वर्मा और भूरेलाल बया भी उनके साथ थे। ठक्कर बापा के सानिध्य में दलित वर्गों के हितों की रक्षा और उन्नति में योग देने की दृष्टि से मेवाड़ में 'हरिजन सेवक संघ' और 'वनवासी सेवा संघ' की स्थापना की गई। अस्पृश्यता निवारण के आन्दोलन में रामेशचन्द्र नागर का नाम उल्लेखनीय है, उन्होंने आजीवन हरिजनोद्धार के लिए कार्य किया। महिला मण्डल तथा घनश्याम पेंटर द्वारा हरिजनोद्धार के लिए पाठशालाएँ खोली गईं।<sup>13</sup>

इंगूरपुर नरेश ने रियासत में हरिजन सेवा को प्रोत्साहित किया। सेवा संघ के तत्वाधान में यहाँ हरिजनोद्धार के कार्य किये गये। प्रजामण्डल की स्थापना के बाद हरिजन सेवक संघ के नाम से नया संगठन बना दिया गया। इंगूरपुर में हरिजनों व आदिवासियों के उद्धार में भोगीलाल पंड्या, गौरीशंकर उपाध्याय, हरिदेव जोशी आदि प्रमुख जनसेवक थे। बांसवाड़ा में घिमनलाल मालोत ने 'शांति सेवा कुटीर' के माध्यम से हरिजन सेवा का कार्य किया। अलवर में पंडित हरिनारायण शर्मा ने पिछड़ी जातियों, हरिजनों तथा अन्य तथाकथित अछूत जातियों के उत्थान के लिए

कार्य किया तथा वाल्मीकि संघ, आदिवासी संघ और अस्पृश्यता निवारण संघ की स्थापना की।<sup>14</sup> इसी प्रकार के अछूतोद्धार सम्बन्धित कार्यक्रम जोधपुर, बीकानेर तथा जयपुर रियासत में भी किये गये।

भारतीय समाज अशिक्षा के कारण अनेक बुराईयों से ग्रस्त था जिसमें से मद्यपान एक प्रमुख बुराई थी। मद्य निषेध के सम्बन्ध में 15 दिसम्बर 1941 ई. को गाँधीजी ने बारदोली में कहा था कि अगर हम अहिंसात्मक प्रचार के द्वारा अपना ध्येय प्राप्त करना चाहते हैं तो लाखों लोग शराब, अफीम इत्यादि नशीली चीजों के व्यसन के शिकार हो रहे हैं उनके भाग्य का निर्णय हम भारत सरकार पर नहीं छोड़ सकते।<sup>15</sup>

मेवाड़ के आदिवासियों में शराब का प्रचलन सबसे अधिक मात्रा में था। मोतीलाल तेजावत गाँव-गाँव जाकर भीलों को शराब पीने की बुरी आदत छोड़ने के लिए प्रेरित करते रहे। मद्य निषेध के सम्बन्ध में 'वनवासी सेवा संघ' एवं 'हरिजन सेवक संघ' द्वारा घर-घर सम्पर्क कर मद्य निषेध के बारे में व्यापक जानकारी दी। इंगूरपुर में 'वागड़ सेवा मंदिर' के माध्यम से माणिक्यलाल वर्मा तथा सेवा संघ के तत्वाधान में भोगीलाल पंड्या द्वारा आदिवासियों से मद्य निषेध की चेतना फैलाई गई एवं उससे होने वाली हानियों के बारे में बताया गया। इस आन्दोलन से प्रभावित हो आदिवासियों ने शराब सेवन काफी मात्रा में कम कर दिया।<sup>16</sup>

राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, कोटा, भरतपुर आदि रियासतों में स्थापित प्रजामण्डल संगठनों द्वारा राजनीतिक मांगों के साथ-साथ सामाजिक सुधार के कार्य भी किये गये। इनमें मद्य निषेध के सम्बन्ध में सशक्त कदम उठाये गये, व्यापक कार्यक्रम अपनाये गये। योजनाएं बनाई गई एवं योजनाओं को क्रियान्वित करते हुए इस संदर्भ में व्यापक प्रचार किया गया। जिसके चलते अनेक लोगों ने शराब पीने की बुरी आदत छोड़ दी तथा मद्य निषेध के प्रचार में उनके साथ काम करने लगे।

सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वभाषा पर बल दिया। स्वाधीनता आन्दोलन के समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम राजद्रोह की श्रेणी में गिना जाता था। राजस्थान के लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलन के समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य सेवा एवं समर्पण भाव से किया गया। ब्रिटिश सरकार एवं देशी राज्यों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा

दिया जाने का विरोध किया। मेवाड़ राज्य की भाषा मेवाड़ी को देवनागरी लिपि में लिखे जाने का प्रचलन था। मेवाड़ में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को सम्बल मिला, जब 21 अगस्त, 1937ई. को देश के समर्थ साहित्यकार पं. जनार्दनराय नागर ने 'राजस्थान विद्यापीठ' की स्थापना 'हिन्दी विद्यापीठ' के नाम से की। इस विद्यापीठ के द्वारा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएं आयोजित करने के माध्यम से हिन्दी के कार्य का श्रीगणेश किया गया।<sup>17</sup>

राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक पं. जनार्दनराय नागर के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में 9 अक्टूबर 1940ई. को राजस्थान महिला विद्यालय के प्रांगण में राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। उसमें कविवर सर्व श्री माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, हरिकृष्ण प्रेमी एवं सुमनेश जोशी आदि कई राष्ट्रीय कवियों की रचनाओं से उदयपुर राष्ट्रीयता के रंग में रंग गया। राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मूल उद्देश्य निम्न थे:-

1. राजस्थान साहित्य तथा संस्कृति सम्बन्धी रचनात्मक तथा प्रशासनात्मक कार्य करना।
2. राजस्थान की हिन्दी भाषा की उन्नति और प्रचार करना।
3. राजस्थान की भिन्न-भिन्न भाषाओं का संरक्षण तथा उनके साहित्य को प्रोत्साहन देना।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 33वां अधिवेशन उदयपुर में 17 से 19 अक्टूबर 1945ई. को तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ के निमंत्रण पर सम्पन्न हुआ। श्री कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी इसके अध्यक्ष एवं मुनि जिनविजय इनके स्वागताध्यक्ष थे। पं. जनार्दनराय नागर ने इस सम्मेलन में कहा था कि हिन्दी भारत वर्ष की राष्ट्रभाषा है और उसकी राष्ट्रीय लिपि देवनागरी लिपि है।<sup>18</sup> इसी प्रकार राजस्थान की अन्य रियासतों में भी हिन्दी साहित्य का विकास हुआ तथा सम्मेलन आयोजित किये गये। प्रजामण्डल आन्दोलनकारियों के दबाव के चलते अनेक राजाओं ने हिन्दी को राज्य भाषा भी घोषित कर दिया।

भौगोलिक दृष्टि से राजपूताना शुष्क प्रदेश माना गया है फिर भी कभी-कभी आने वाली बाढ़ ने यहाँ के जन-जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। मेवाड़ में 30 जुलाई 1943ई. में खारी नदी के बाढ़ ने यहाँ के जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं किया बल्कि अपार

जन, पशु और धन का नुकसान भी किया। बाढ़ से उत्पन्न आपात स्थिति का सामना करने के लिए व्यापक कार्य सामूहिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर किये गये। स्काउट, स्वयं सेवी संस्थाओं, धर्मार्थ ट्रस्टों ने युद्ध स्तर पर सहायता कार्य किया। खारी नदी की बाढ़ से अकेले मेवाड़ में लगभग 2000 मनुष्य, 5000 गायें एवं अन्य पशु बह गये। घर, खेत सब मिलाकर करीब 2 करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ।

अगस्त आन्दोलन 1942ई. के बाद प्रजामण्डल ने स्वतंत्रता संग्राम की छाप गांव-गांव में छोड़ दी थी। हर वर्ग के लोग इस संगठन से जुड़ गये थे जो स्वतंत्रता संग्राम के लिये अपना दायित्व मेवाड़ प्रजामण्डल के साथ निभा रहे थे। खारी नदी से प्रभावित जनता की सेवा का मौका प्रजामण्डल अपने हाथों से जाने नहीं देना चाहता था। अतः उसने जनता की आगे बढ़कर सेवा की। राहत कार्य हेतु प्रजामण्डल ने 'मेवाड़ रिलीफ कमेटी' का गठन किया। इस कमेटी ने एक सार्वजनिक अपील जारी की, जिसमें कमेटी मेवाड़ भर के उन सभी जनसेवकों, कार्यकर्ताओं तथा विद्यार्थियों से अपील करती है कि वे अपनी मातृभूमि के इस बाढ़ संकट के निवारण के लिए केन्द्रीय रिलीफ कमेटी के साथ पूरा-पूरा सहयोग करें। प्रजामण्डल ने विकट परिस्थितियों में जनता को सहयोग दिया, जन शिक्षा और जन चेतना जगाने का कार्य किया। अतः प्रजामण्डल को लोक कल्याणकारी संस्था के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।<sup>19</sup>

सन् 1939ई. में मेवाड़ प्रजामण्डल द्वारा उत्तरदायी शासन व प्रजामण्डल पर से प्रतिबन्ध हटाने की मांग को लेकर सत्याग्रह किया, जिसे महात्मा गाँधी के निर्देशन पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया तथा प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं को रिहा कर दिया गया था। इस समय 1939ई. में मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा तो प्रजामण्डल के सत्याग्रहियों ने जनता की सेवा का निश्चय किया। माणिकलाल वर्मा ने सर टी. विजय राघवाचार्य को पत्र लिखकर अपनी तथा अपने कार्यकर्ताओं की सेवार्थ अकाल राहत कार्य करने के लिये निवेदन किया, जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। प्रजामण्डल ने 'मेवाड़ अकाल फण्ड' की स्थापना की तथा गाँव-गाँव जाकर अकाल पीड़ितों की मदद की। लोगों को अनाज, चिकित्सा, मवेशियों के लिए चारे-पानी की व्यवस्था की। दयाशंकर क्षौत्रिय, माणिक्यलाल वर्मा आदि प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं अकाल पीड़ितों की भरपूर मदद की।<sup>20</sup>

सन् 1936ई. में इंगूरपुर में भयंकर अकाल पड़ा। गरीब जनता में इतनी शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य नहीं था कि वे अकेले अकाल का सामना कर सकें। 'राजस्थान सेवक मण्डल' के कार्यकर्ता रात-दिन एक कर इस दैवीय प्रकोप का मुकाबला करने हेतु सेवा कार्य में जुट गये। राज्य की तरफ से दी जाने वाली सहायता ऊंट के मुँह में जीरा के बराबर थी। भोगीलाल पंड्या इंगूरपुर से बाहर सहायता एकत्र करने के लिए निकले। उधर माणिक्यलाल वर्मा अपने साथियों के साथ सहायता कार्यों में जुट गये। इस महान् संकट के अवसर पर ठक्कर बापा ने इंगूरपुर रियासत का दौरा किया। इनके प्रभाव से प्रेरित होकर घनश्यामदास बिड़ला, भागीरथ कानोड़िया आदि उद्योगपतियों ने भील सेवा कार्य के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की।<sup>21</sup>

सन् 1939ई. में मारवाड़ में भी भयंकर अकाल पड़ा। महाराजा उम्मेदसिंहजी ने राज्य का खजाना खोलते हुए लगभग 80 लाख रुपये अकाल राहत कार्य हेतु खर्च किये। जयनारायण व्यास के नेतृत्व में लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं ने अकाल राहत कार्यों में उल्लेखनीय योगदान दिया। फलोदी के एक गाँव में चारा केन्द्र खोला गया। इस चारा केन्द्र के लिए 20 हजार रुपये का चन्दा, मारवाड़ रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता से प्राप्त हुआ था। लोक परिषद् अपने कार्यों द्वारा जनता में लोकप्रिय होने लगी। परिषद् की बढ़ती हुई लोकप्रियता से बेचैन सरकार ने परिषद् पर आरोप लगाया कि परिषद् अकाल को अपनी लोकप्रियता बनाने का सुअवसर मान रही है और सरकार द्वारा किये गये कार्यों को पीछे कर रही है। इन आरोपों के बावजूद लोक परिषद् ने अकाल पीड़ितों की सेवा जारी रखी।<sup>22</sup> इसी प्रकार राजस्थान के अन्य राज्यों जैसेलमेर, बीकानेर, बांसवाड़ा आदि क्षेत्रों में अकाल के समय वहाँ के प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया तथा गाँव-गाँव जाकर भूखमरी तथा पानी के संकट का सामना कर मानव कल्याण का कार्य किया। गाँधीजी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी राजस्थान के रियासतों की जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया तथा सत्याग्रह चलाये। साथ ही यहाँ की जनता ने गाँधीजी के रचनात्मक कार्य खादी प्रचार, हरिजनोद्धार, अकाल राहत, हिन्दी भाषा एवं राष्ट्रीय शिक्षा के बढ़ावा देने के लिए भी कार्य किया। इस संदर्भ में उदयपुर में हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना भी की गई। अतः गाँधीजी के निर्देशानुसार प्रजामण्डलों ने रचनात्मक कार्यों द्वारा अपने उद्देश्य को प्राप्त करने की कोशिश की।

प्रजामण्डल के द्वारा निर्देशित सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं ने जनहित के कार्य कर जनता में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना का प्रसार किया। रियासती जनता द्वारा यह आन्दोलन देश की स्वतंत्रता तक जारी रहे।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ताराचंद : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-3, पृ. 620
2. रचनात्मक कार्यक्रम पर एक लेख, नवजीवन, दिनांक 6 नवम्बर, 1944ई.
3. वही,
4. नवजीवन, 16 अक्टूबर 1945 ई.
5. चौधरी, हेमेन्द्र: राजपूताना में प्रजामण्डल आन्दोलन, पृ. 139-140
6. वही,
7. जैन, जीवनलाल: राजस्थान में रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 70
8. नवजीवन, दिनांक 6 नवम्बर, 1944 ई.
9. वही,
10. चौधरी, हेमेन्द्र: पूर्वोक्त, पृ. 149
11. राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के कुछ साक्षी, प्रकाशक-रा.रा.अ. बीकानेर।
12. कोठारी, मनोहर: भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में राजस्थान, पृ. 277, 337-338
13. जोशी, सुमनेश: राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 461, नवजीवन 1 मार्च 1945ई.
14. चौधरी, हेमेन्द्र: पूर्वोक्त, पृ. 150-151
15. लोकवाणी, 1 अगस्त 1948ई.
16. चौधरी, हेमेन्द्र: पूर्वोक्त, पृ. 151-152
17. नवजीवन, दिनांक 16 अक्टूबर 1945ई.
18. वही,
19. मेवाड़ में खारी नदी की बाढ़ और सेवा कार्य का विवरण-लेखक श्री भूरेलाल बया, नवजीवन, दिनांक 19 मार्च 1945
20. सुखाड़िया, मोहनलाल: मेवाड़ प्रजामण्डल (1938-45), पृ. 3
21. कोठारी, मनोहर: पूर्वोक्त, पृ. 320-321
22. पुस्तिका दी टुथ अबाउट दि जोधपुर एजीटेशन, गवर्नमेंट प्रेस और पब्लिसिटी ऑफिसर द्वारा प्रकाशित, 10 अगस्त 1942, जगदीशसिंह गहलोत शोध संस्थान, जोधपुर

# मालवा का महान संगीत प्रेमी शासक बाजबहादुर

डॉ. मनीष कुमार दासौधी

बड़वानी (मध्य प्रदेश)



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

महान मुगल शासक अकबर का समकालीन मालवा का शासक मलिक बायजीदखां उर्फ बाजबहादुर संगीत प्रेमी एवं सारंगपुर की गायिका रूपमती के संगीत प्रेम एवं प्यार में अत्यधिक डूबे रहने से राजनीति एवं प्रशासन में उदासीनता से मालवा की राजनैतिक स्थिति कमजोर होने से अकबर ने सारंगपुर के युद्ध 29 मार्च 1561 में फायदा उठाने से बाजबहादुर के पराजित होकर पलायन करने से रानी रूपमती ने जब स्वयं को असहाय पाया तो आत्महत्या कर ली। अंत में भगोड़े जीवन से त्रस्त होकर बाजबहादुर ने अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर कुछ समय अकबर के दरबार में रहने के पश्चात् जीवन का अंतिम समय सारंगपुर में रूपमती की कब्र पर व्यतीत किया। बाजबहादुर के स्नेह से निरंतर जल रही उस बाती की वह अदृष्ट लौ, रूपमती की प्रेम पाती का वह अलिखित संदेश भावुक कलाकारों को निरंतर आकर्षित करते रहते हैं।

**संकेताक्षर :** मालवा, बाजबहादुर, संगीत, अकबर, रूपमती, सारंगपुर।

**इ**स्लामशाह सूर के शासनकाल में शुजाअत खॉ मालवा का सूबेदार था। इस्लामशाह की मृत्यु के बाद शुजाअतखां मालवा का स्वतंत्र शासक बन गया। उसी का अनुकरण करते हुए उसके पुत्र बाजबहादुर ने भी मालवा को स्वतंत्र राज्य बनाए रखा।<sup>1</sup> मालवा में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना लेने पर उसने साम्राज्य विस्तार की भावना से मालवा के पूर्व में स्थित गोंडवाना राज्य पर आक्रमण किया परन्तु वहाँ की रानी दुर्गावती ने बाज बहादुर को पराजित कर दिया।<sup>2</sup>

अब पराजित बाजबहादुर सुरा व सुन्दरी के सहवास में जीवन व्यतीत करने लगा। इनमें सारंगपुर की सर्वाधिक गुणवान व रूपवान स्त्री रूपमती थी। रूपमती का जन्म सारंगपुर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इसके पिता का नाम जादूराय था। अपनी जागीर में निवास करने वाली सुन्दर, रूपवान योवन कन्या की और आकर्षित होना बाजबहादुर के लिए स्वाभाविक ही था। रूपमती भी उस पर मुग्ध थी। बाजबहादुर की तरह रूपमती गायन वादन कला में पूर्णतया प्रवीण थी। बाजबहादुर और रूपमती एक दूसरे में लीन हिन्दी प्रेम काव्य रचना करते और उन्हें गाते थे। बाजबहादुर अपने प्रेम गीतों में रूपमती का नाम अवश्य ही लेता था।<sup>3</sup>

यों बाजबहादुर रात दिन संगीतज्ञों और गायकों के मध्य तथा प्रणयोन्माद में लीन रहता था। इस प्रकार माण्डू सुलतान बाजबहादुर के संगीत प्रेम और रूपमती के प्यार ने मालवा की राजनैतिक स्थिति को अवश्य कमजोर कर दिया।<sup>4</sup>

बज बहादुर की राजनीति व प्रशासन के प्रति उदासीनता से लाभ उठाकर अकबर ने फरवरी 1561 ई. में मालवा विजय के लिए आधमखां के अधीन एक सेना भेजी। इस सेना में पीर मुहम्मद खान के अतिरिक्त अब्दुल्लाखान, कियाखानकंग, शाह मुहम्मदखान, कांधारी, आदिलखान व उसका पुत्र सादिक खान, हबीबकुली खान, हैदरअली खान, मुहम्मद कुली तोकबाई, कियाखान साहिब हसन, मीरक बहादुर, सामनखान, पायन्दा मुहम्मद खान मुगल, मुहम्मद ख्वाजा कुश्तीगीर, मिहर अली सिल्दुज, मीरम अरधुन आदि प्रमुख थे। जब मुगल सेना निर्विरोध सारंगपुर के निकट तक आ गई तो बजबहादुर हड़बड़ा कर इसका सामना करने के लिए सारंगपुर से 7 कोश बाहर आया।

सारंगपुर का यह युद्ध 29 मार्च, 1561 ई. की रात को हुआ जो सुबह तक चलता रहा।<sup>5</sup>

जब बाजबहादुर की पराजय की खबर सारंगपुर में पहुँची तो महल के रक्षकों ने बाजबहादुर के पूर्व निर्देशों के अनुसार महिलाओं को मौत के घाट उतारना प्रारम्भ कर दिया। जिससे कि वे शत्रु के हाथों अपमानित होने से बच जायें, इससे पहले कि वे ये कार्य पूर्ण करते लूट के लिए लालाचिंत मुगल सेना ने आकर बाजबहादुर के माल असबाब, अंतपुर व उसकी हरम की जयद विख्यात स्त्रियों को अपने अधिकार में कर लिया, जिनमें रूपमती भी आधमखां के हाथों लग गई।<sup>6</sup> इन सफलताओं से वह घमण्डी हो गया। बादशाही सेना के लोगों को प्रसन्न करने के लिए सभी को भोजन दिया और मालवा में उसके साथ आये सभी अधिकारी, कर्मचारियों को ईनाम दिया। अधिकारियों को ईनाम देने का अधिकार बादशाह को होता, किन्तु यहाँ तो सारंगपुर की विजय ने आधमखां के दिमाग का संतुलन ही बिगाड़ दिया।<sup>7</sup>

आधमखां रूपमती को अपने पास रखना चाहता था। रूपमती ने जब अपने को असहाय पाया तो अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने जहर पीकर आत्महत्या कर ली।<sup>8</sup> इकबालनामा-ए-जहाँगीरी में इस घटना का कुछ अलग विवरण मिलता है- जब रूपमती को पता चला कि उसके पास अब आधमखां से बचने का कोई बहाना नहीं है तो उसने आधमखां से सजने के बहाने कपूर, कस्तुरी व अम्बर (त्रणमणी) मांगे व इनके पर कपूर खाकर उसने आत्महत्या कर ली।<sup>9</sup>

इधर आधमखां व पीर मोहम्मद ने सारंगपुर में अत्याचारों का तांडव प्रदर्शित किया। बंदियों को मौत के घाट उतारा जा रहा था।<sup>10</sup> तब पीर मोहम्मद मुस्कराते हुए हंसता रहा। इन अत्याचारों से विचलित होकर मुल्ला बंदायूनी ने अपने मित्र मिहर अलीखान सिलदोज को कहा कि यद्यपि विद्रोहियों को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु फिर भी उनकी पत्नियों व बच्चों को मारना धर्मानुसार नहीं है। उसने पीर मोहम्मद के समक्ष भी इसके प्रति विरोध व्यक्त किया। तब पीर मोहम्मद ने इसका बड़ी उदंडता व घृष्टता से जवाब दिया कि एक ही रात में इन सबको बंदी बनाया गया है। हम उनके साथ और कैसा व्यवहार कर सकते थे। उसी रात को इन लुटेरों ने शेख, सैयदों व कुलीन वर्ग की स्त्रियों को अपनी पेटीयों व खुरजी में रखकर दूसरे जिलों में ले आये। तब सारंगपुर के शेख व सैयद हाथों

में कुरान लेकर रहम की भीख मांगने उनसे मिलने आये तो पीरमोहम्मद ने उन सबको मौत के घाट उतार दिया।<sup>11</sup>

आधमखां की मालवा विजय के बाद शीघ्र ही अकबर को सारंगपुर आना पड़ा। अकबर के इस समय मालवा आने के क्या कारण थे, इस संबंध में विविध मत पाये जाते हैं- यू.एन.डे. सोचते हैं कि आधमखां ने अकबर को सारंगपुर में मिली सुंदर स्त्रियों से वंचित रखा था। जबकि निजामुद्दीन अहमद बताते हैं कि आधमखां ने लूट का समस्त सामान व धनकोष अपने पास ही रख लिया था।<sup>12</sup> परन्तु सत्य बात तो यह थी कि अकबर जैसा महान शक्तिशाली शासक गुप्त रीति से अप्रैल माह की विकट गर्मी में आगरा में सारंगपुर 16 दिन में पहुँचना और फिर चार दिन रुककर वापस आगरा चला आना तथा इस दौरान न उसके द्वारा मालवा में प्रशासन संबंधी कोई कदम उठाना और न ही नियुक्त अधिकारियों की जांच पड़ताल व उनसे सम्पर्क स्थापित करना, और अगर आधमखां को दण्ड देना भी था तो उसे आगरा बुलाकर दिया जा सकता था, किन्तु उसने ऐसा भी नहीं किया। अतः इन सब बातों से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि बिना समय गंवाये अकबर का मालवा आने का मुख्य कारण बाजबहादुर की उसे अपार धन सम्पत्ति व सुन्दर स्त्रियों का जो जगत् विख्यात था प्राप्त करना था जो आधमखां ने उससे छिपाया था।

कुछ भी हो अकबर 27 अप्रैल, 1561 ई. को आगरा से निकलकर तीव्र गति से 13 मई, 1561 ई. को सारंगपुर पहुँचा। आधमखां की माता महान अनगा भी अकबर के क्रोध से अपने पुत्र की रक्षा करने हेतु सारंगपुर पहुँची। यहाँ घबराये हुए आधमखां ने लूट का सारा माल अकबर को भेंट कर दिया। इनमें व दो सुन्दरियाँ नहीं थी जो आधमखां व पीरमोहम्मद के कुकृत्यों की जानकारी अकबर को दे सकती थीं व इसी भय से उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया था। अकबर ने आधमखां को वापस बुलाकर मालवा पीर मोहम्मद को सौंप दिया।<sup>13</sup>

पूरे मालवा पर मुगलों का अधिकार हो जाने से बाजबहादुर ने कुछ समय चित्तौड़ और उदयपुर में महाराणा उदयसिंह के पास शरण ली। फिर वह गुजरात चला गया। अंत में भगोड़े जीवन से त्रस्त होकर उसने अकबर के समक्ष नागौर में आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने प्रसन्न होकर उसे एक हजारी की

मनसबदारी दी जो कि बाद में उसकी संगीतकला से प्रभावित होकर दो हजार कर दी गई।<sup>14</sup>

अकबर के दरबार में बाजबहादुर की गणना मनसबदारों तथा गायकों दोनों में होती थी।<sup>15</sup> कहते हैं कि बाजबहादुर अपने अंतिम समय में अकबर से विदा लेकर सारंगपुर आया था। प्रतिदिन रूपमति के मकबरे पर दीप जलाकर अपनी प्रेयसी की याद में घण्टों बैठा रहता था। जिस रूपमती ने बाजबहादुर के प्रेम की खातिर दूसरों के हाथों में पड़ने के बजाय अपनी जान दे दी थी। बाजबहादुर ने भी रूपमती के नाम की अंतिम सॉस लेकर उनके लिए 1588 ई. में जान दे दी। तब अकबर ने बाजबहादुर को भी रूपमती की कब्र के पास दफना दिया था।<sup>16</sup> इस तरह संगीत सम्राट और साम्राजी सारंगपुर के तालाब के बीच पुश्ता पर आराम कर रहे थे।<sup>17</sup>

मालवा का सुलतान बाजबहादुर भारतीय इतिहास का बहुत ही रौचक तथा प्रेम स्नेह और संगीतज्ञ-में डुबा हुआ चरित्र है। बाजबहादुर के साथ रूपमती की प्रणयकथा कुछ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि किसी तरह भी अलग नहीं की जा सकती। यदि रूपमती का प्रसंग अलग कर दिया जाये तो बाजबहादुर का चरित्र अधुरा क्या, कुछ भी नहीं रह जाता।

बाजबहादुर जिस प्रकार तलवार का धनी था, उसी तरह एक योग्य शासक, समय का बेजोड़ संगीतज्ञ तथा फारसी, हिन्दी गायन में बड़ा ही निपुण था। उसका अधिकांश समय गवैयों में व्यतीत होता था। संगीत प्रेम तो एक प्रकार से उसका जीवन ही बन गया था। संगीत के प्रचार प्रसार तथा उसे उन्नति के शिखर पर आसान कर देने के लिए बाजबहादुर ने बहुत काफी कोशिश की थी। देश के कोने-कोने से कलाविदों को बुला कर माण्डू में एकत्र कर लिया था और उनके द्वारा अपने दरबार को इन्द्र का आखाड़ा बना रखा था। इसके अतिरिक्त मुगल बादशाह के दरबारी गायकों में उनका नाम था इसे उनके संगीतज्ञ का एक दृढ़ प्रमाण कहा जा सकता है।<sup>18</sup>

मलिक बायजीदखां (बाजबहादुर) बहुत सुन्दर, गोरा-चट्टा, छब्बीस-सताईस वर्ष का युवक था। वीर बाप (शुजाअत खां) का बेटा होने के कारण तीर-तलवार, साहस और शासन उसे बपौती में मिले थे। इसके अलावा मलिक बायजीद को बचपन से गाने-बजाने का भी शौक था। अवस्था के साथ वह शौक बराबर आगे बढ़ता और उन्नति करता चला गया

था, और अब तो मलिक बायजीद एक उच्चकोटी का कलाकार कला पारखी माना जाता था। संगीत के प्रचार-प्रसार तथा उसे उन्नति की सीमा तक पहुँचा देने की धुन रात-दिन सिर पर सवार रहती थी। वह खबाब बहुत अच्छा बजाता था और कई एक राग-रागिनियों (राग एमन कल्याण) का आविष्कारक था।

पिता शुजाअतखां से सारंगपुर की जागीर पाकर मलिक बायजीद के सभी शौक स्वतंत्र बन गये थे। आठों पहर खबाब, वीणा, तबला, सारंगी के साथ संगीत ध्वनि गूँजती रहती थी। कलाकारों का जमघट भी होता था। कला की परख के साथ दिल खोलकर इनमें इकरामें भी बांटी जाती थी।

कहने को तो सारंगपुर में प्रतिदिन संगीत की महफिल जमती थी। एक शाम मलिक बायजीद ने स्वयं खबाब में झंकार पैदा करके पहले हाफिज शीराजी की एक गजल गायी उसके बाद एक स्वरचित ख्याल आरंभ किया -

**‘आलिफ से अल्ला कहोद जबां से बे,  
बिसमिल्ला रटा करो।  
ते से तकब्बर छोड़ मियां और से,  
से सिना खलिक की करो।।  
जीम, जाल में मत फंस बाबा,  
चे न चाह कर दौलत की।  
है, से हक की याद किया कर,  
खे, खलिक देता रोजी।**

बाजबहादुर और रूपमती के प्रेम कथानक को लेकर सर्वप्रथम 1599 ई. में अहमद-उल-उमरी तुर्कमान ने फारसी भाषा में ‘शहिदे वफा’ नामक काव्य की रचना की थी। अहमद-उल-उमरी सुलेमान खां का मित्र था और यह सुलेमान खां बाजबहादुर के पिता तथा मालवा का सुबेदार शुजाअत खां का दरबारी अफगान सैनिक था जो उनके साथ सुजावलपुर रहता था। बाद में बाजबहादुर के सुलतान बनने पर वह माण्डू में आकर रहने लगा। सुलेमानखां बाजबहादुर और रूपमती की प्रत्येक घटना का प्रत्यक्षदर्शी था और जब वह हिन्दुस्तान से गया तब अपने तुर्क मित्र अहमद-उल-उमरी को विस्तार से बताया था।

तत्पश्चात बाद में भोपाल एजेन्सी में आकर एल.एम. क्रम्प ने काफी परिश्रम तथा अनुसंधान कर ‘दी लेडी ऑफ दी लॉट्स’ की रचना की। इसके बाद गुजराती भाषा में भी एक उपन्यास रूपमती पर लिखा गया था। मराठी मासिक इतिहास संग्रह के अन्तर्गत द.ब. पारसनीस ने भी रूपमती पर लिखा था।

मुगलकाल में मुसलमान इतिहासकारों ने भी रूपमती और बाजबहादुर के पुनीत प्रेम तथा तदर्थ उसके चरम बलिदान को बहुत सराहा था। और शाही मुगल दरबार के सावला, गोवरधन और चित्रमन जैसे सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों ने भी सयन्त सोत्साह रूपमती और बाजबहादुर विषयक अनेकानेक सुन्दर चित्रों को अंकित कर स्वयं को कृत माना था।

रानी रूपमती सौन्दर्य की जीती जागती तस्वीर थी संगीत निपुण कलाकार और कवियत्री थी। सुलतान बाजबहादुर उस पर मोहित होने वाला गुणी पारखी था। अतः हरम में दाखिल होते ही रूपमती को प्रेम तथा आकर्षण बाजबहादुर के सिर पर चढ़कर बोलने लग गया। रूपमती वीणा बजाती, गीतों की रचना करती और स्वरचित गीतों को अपने मधुर कंठ से गाती थी। उसका संगीत ज्ञात राग-रागिनियों का रूप खड़ा कर देता था। रस की वर्षा होने लग जाती थी और सुलतान बाजबहादुर उस रस में डूब जाया करता थे। इस प्रकार शीघ्र ही रूपमती ने अपने प्रियतम का हृदय जीत कर मुठ्ठी में बंद कर लिया। सुलतान बाजबहादुर उसकी बहुमुखी प्रतिभा के हाथों बिक गया। सब कुछ भूल गया। सल्तनत को जलवायु के आश्रय पर छोड़ दिया। कठपुतली की तरह रूपमती के इशारों पर नाचने लगा। एक देश-आराम नृत्य-संगीत तथा भोग विलास का मशगला ही उनकी दिनचर्या बन गई।

रूपमती जब अपने रूप महल के उपर बारहदरी में बैठकर वीणा झनझनाती और गीत गाकर राग-रागिनियों का साक्षात रूप प्रकट करती तो, दसों दिशाएँ मुखरित हो उठती। सुलतान बाजबहादुर मदविभोर होकर, उसके स्वर से अपना स्वर मिलाने लग जाता था। दोनों संगीतज्ञ थे, दोनों वीणा, रबाब वादक थे और दोनों ही गीतकार थे। अतः शीघ्र ही उन दोनों के गीत-संगीत के पंख जमउ ठे, हवा में उड़ने लग गए। देश के कोने-कोने से गायक-गायिकाएँ तथा नर्तकियाँ माण्डू में आकर जमा हो गईं। राजदरबार में उनकी कलाएँ जौंची जाने लगीं। आदर सम्मान के साथ इनामों, इकरामों से उनके दामन आँचल भरे जाने लगे। सुलतान बाजबहादुर का दरबार इन्द्र का अखाड़ा प्रसिद्ध हो गया। जिस समय शाही जोड़ा राजसिंहासन पर आसीन होता और सामने सैकड़ों की संख्या में गायिकाएँ-नर्तकियाँ, वहाँ उपस्थित होकर अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन करती, हाव-भाव तथा मुद्राओं से कला को सजीव करके दिखलाती थी,

उस समय ऐसा मालूम होने लगता, मानों कुसुमित गुलाब बाटिका में बुलबुलों का सम्मेलन हो रहा है। रायचन्द्र सुल्तानी दरबार का प्रधान गायक था। शाही जोड़े ने उसकी कला को परख कर उसे दरबारी गायक-गायिकाओं का प्रधान बना दिया था।

बायजीद और रूपमती का जब परस्पर परिचय हुआ था तब रूपमती ने अमीर खुसरों की एक गजल सुनाई थी जो इस प्रकार थी-

**‘जे हाले मिस्कीं मकुन तगाफिल,  
दुराय नयना बनाय बतियाँ।**

**कि ताबे हिजरा न दारम ऐ जां,  
न लेहु काहे लगाय छतियाँ।।**

.....

**शबाने हिजरा दराज चूं जुल्फ व  
रोजे वसलत चू उम्र कोतह,  
सखी पिया को जो मैं न देखूं  
तो कैसे कादूं अंधेरी रतियाँ।।**

मालवी गीत- रूपमती की एक सहेली चन्द्र थी। दोनों सच्ची दोस्त रूपमती चन्द्र से आपने मिद की कोई बात नहीं छिपाती। रूपमती जब भी कुछ चन्द्र से कहना चाहती त बवह मालवी में ही गाकर सुनाती थी -

**तहने किन बैरनियाँ बिलमाओ,**

**डबो त्हारे कारणे मड-मड जोउँ बाट।।**

इसी प्रकार जब नजफखां ने बायजीद से कहा कि हम लोगों ने तुम्हें बाजबहादुर नाम दे रखा हैं। वह रूपमती को भी बहुत पसंद हैं। क्योंकि उसके गीत में तुम्हारा नाम था जो गीत का अंतिम चरण ही सुन सका।

**‘रूपमती को बाही लो लहानो,  
जो बाजबहादुर को आइ रिझावै।**

इस पर मलिक बायजीद ने गाने को गुनगुनाया और पता लगा लिया कि वह गीत तो देवगंधार रागिनी का था। यह तो सर्वस्वीकृत हैं कि रूपमती अपार सुन्दरी थीं, उसकी स्वर लहरी बहुत मधुर थी और वह गायन, वादन कला में पूर्ण निपुण थी। उसने अनेक राग-रागिनियों-भूप कल्याण, सिंधवी, मेघ, देवगंधार रागिनी की रचनाकार थी। बाजबहादुर स्वयं भी गायन-वादन कला में दक्ष था। दोनों के यही गुण एक दूसरे के प्रति अकर्षित और परस्पर प्रेम के पर्याप्त बन गये।

अंत में कहने का तात्पर्य यह है कि बाजबहादुर के स्नेह से सिक्त निरन्तर जल रही उस बाती की वह अदृष्ट लौ, रूपमती की प्रेम पाती का वह अलिखित संदेश और उन दोनों के स्वर्गीय, स्नेह संगीत की वे शाश्वत प्रतिध्वनियों तब से ही भावुक कलाकारों, साहित्यकारों और सरस स्नेही जनों को बरबस निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अबुल फजल कृत, अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद बेवरिज) भाग 2 पृ. 136, कलकत्ता 1912 निजामुद्दीन अहमद कृत, तबकाते अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद बी.डे.) भाग 3, पृ. 628-29 एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1939
2. तबकाते अकबरी, भाग 3, पृ. 630।
3. तबकाते अकबरी, भाग 3, पृ. 631, एल.एम. कम्प, दि लेडी ऑफ दि लोट्स, पृ. 28-30, फरिश्ता कृत, तारीखे फरिश्मा (अंग्रेजी अनुवाद बिग्स) भाग 4, पृ. 278, 1829।
4. तारीखे फरिश्ता, भाग 4, पृ. 278।
5. अकबरनामा, भाग 2, पृ.208, 212-13, तारीखे फरिश्ता भाग 4, पृ. 278, तबकाते अकबरी, भाग 3, पृ. 63।
6. अकबरनामा, भाग 2, पृ. 213, अब्दुल कादिर इब्न मुल्कशाह, अलबुदायूनी कृत, मुन्तखब-उत-तवारीख, (अंग्रेजी अनुवाद रेकिंग लो) भाग 2, पृ. 3।
7. अकबरनामा, भाग 2 पृ. 214।
8. अकबरनामा, भाग 2 पृ. 213-14, तारीखे फरिश्ता, भाग 2, पृ. 274।
9. मुतामिद खान, इकबालनामा'-ए-जहागीरी पृ. 167।
10. मुन्तखब-उत-तवारीख, भाग 2, पृ. 47-48।
11. मुन्तखब-उत-तवारीख, भाग 2, पृ. 42-43।
12. यू.एन.डे. मिडीवल मालवा पृ. 342, दिल्ली 1965, तबकाते अकबरी भाग 1 पृ. 208, बंगाल, 1927।
13. अकबरनामा, भाग 2 पृ. 2235, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर दि ग्रेट, भाग 1, पृ. 61, आगरा 1962।
14. अकबरनामा, भाग 2 पृ. 206-61, विसेंट स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मोबल, पृ.42, लन्दन, 1913।
15. अबुल फजल कृत, आइन-इ-अकबरी, (अंग्रेजी अनुवाद ब्लाक मेन और जेरेट) भाग 1 पृ. 474, 681 कलकत्ता 1989।
16. करीम अली कृत, तारखे मालवा (उर्दू मूल) पृ. 218, हिन्दी अनुवाद पृ. 1009, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामठ में संग्रहित।
17. आइन-इ-अकबरी भाग 1, पृ. 474 में इसका मकबरा उज्जैन में बताया गया है, जो कि किसी चरण वश अबुल फजल से भूल हो गई होगी, ब्रजरत्नदास, मआसिर-उल-उमरा, (हिन्दी) भाग 4, पृ. 152 वाराणसी 1988।
18. आइन-इ-अकबरी, भाग 1, पृ. 474, 681।

# शाहपुरा (भीलवाड़ा) ठिकाने के लोकोत्सव : एक ऐतिहासिक विश्लेषण



shodhshree@gmail.com

कविता गौड़

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही उत्सव, तीज एवं त्यौहार आदि मनाये जाते रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ उत्सवों और मेलों में भी वृद्धि हुई है। उनका मनाने का समय और क्रम भी नियत किया गया है तथा मनाने का विधि विधान भी बनाया गया है। ये उत्सव और त्यौहार किसी भी देश की संस्कृति के परिचायक होते हैं। इनके साथ सामाजिक परम्पराएं भी जुड़ी रहती हैं। ये तीज-त्यौहार मनुष्य को सांसारिक उलझनों से दूर कर आनंद की अनुभूति देते हुए उन्हें अपनी जड़ों से जोड़ते हैं। राजस्थान के ठिकानों की परम्परा में शाहपुरा (भीलवाड़ा) ठिकाना भी बहुत प्राचीन रहा है। मेवाड़ प्रदेश के शाहपुरा में अनेक प्रकार के लोकोत्सव मनाये जाते रहे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में शाहपुरा के लोकोत्सवों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

**संकेताक्षर :** तीज-त्यौहार, पर्व, होली, दीपावली, उत्सव, संस्कृति, धर्म, समाज।

हमारे देश में अनेक धर्म तथा विविध सांस्कृतिक परम्पराएं मिलती हैं। इस दृष्टि से राजस्थान की भी समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराएं रही हैं। शाहपुरा (भीलवाड़ा) ठिकाने में मनाये जाने वाले विभिन्न त्यौहारों एवं पर्वों में हमें राजस्थानी संस्कृति और परम्पराओं के दर्शन होते हैं। जिनमें दीपावली, होली, रक्षाबंधन, तीज, विजयदशमी, जन्माष्टमी, गोगानवमी, बछवारस, तुलसी पूजन, मकर सक्रान्ति, मुहूर्तम, बसन्त पंचमी, महाशिवरात्रि, शीतला अष्टमी व दशामाता पर्व आदि प्रमुख रहे हैं। इन त्यौहारों का वर्णन इस प्रकार है-

रक्षाबंधन- यह पर्व भारतीय संस्कृति का ऐसा रत्न है जिसकी महीन किरणों में सुन्दर रिश्ते झिलमिलाते हैं। एक छोटे से रंगीन धागे में प्यार की दौलत गुंथी जाती है। यह भाई-बहन के पवित्र प्यार का सामाजिक पर्व है। इस पर्व का संबंध मुख्यतः रक्षा से है। जो भी आपकी रक्षा करने वाला है उसके प्रति आभार दर्शाने के लिए उसे रक्षासूत्र बांध सकते हैं। राखी कच्चे सूत जैसे सस्ती वस्तु से लेकर रंगीन कलावे, रेशमी धागे, सोने या चांदी जैसे महंगी वस्तु तक की भी वर्तमान में प्रचलित है। जैसा कि शाहपुरा बही में सोने की राखियों का उल्लेख मिलता है। राखी बांधने के बाद बहिने भाई की लम्बी उम्र एवं सुख तथा उन्नति की कामना करते हुए पूजा से सजी थाली से भाई की आरती उतारती है। भाई बहन को उपहार धन देता है।<sup>1</sup>

शाहपुरा में रक्षाबंधन त्यौहार मनाने की परम्परा काफी पुरानी है जिसका उल्लेख शाहपुरा बही से ज्ञात होता है। मिति सावण सुद 14 शुक्रवार, संवत् 1994, 20 अगस्त, 1937, मिति सावण सुद 15 शनिवार, संवत् 1994, 21 अगस्त, सन् 1937 को 5 बजे राखी बंधवाने का शुभं मुहूर्त निकला। राणीजी साहब को अनेक लोगों द्वारा राखी भेजी गई। मुख्यतः ये राखियां सोने की बनी हुई थीं। बही की नकल इस प्रकार है-

- मदनसिंह जी की बाई को सोने की एक राखी, तीन रुपया और तीन नारियल।
- भीमसिंह जी की बणाय गारा की एक सोने की राखी, तीन रुपये और नारियल।
- मोतीसिंह जी बाई को सोने की राखी, तीन रुपये और तीन नारियल।
- भीमसिंह की बेटी-देव को एक सोने की राखी, तीन रुपये और तीन नारियल।

- भीमसिंह जी की बहू को सोने की राखी, तीन रुपये और तीन नारियल।
- सोवनसिंह जी की बाई को एक सोने की राखी, तीन रुपये और तीन नारियल।

इनके अतिरिक्त 14 सोने की राखियां, एक जड़ाव राखी जिनमें छः सफेद नग और एक हरा नग लगा हुआ, 30 नारियल तथा 502 रुपये रोकड़ कलदार आदि का उल्लेख मिलता है।<sup>3</sup>

**जन्माष्टमी** – कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन मनाने की परम्परा रही है। इस दिन के समीप आने के साथ ही श्रद्धालुओं के द्वारा मंदिरों में तैयारियां शुरू कर दी जाती हैं। मंदिरों को पूरे फूलों से सजा कर भक्तों को दर्शन करवाया जाता है। कृष्ण जन्म मध्य रात्रि के समय रोहिणी नक्षत्र या इसी आधार पर जन्माष्टमी मनायी जाती है। भगवान के पंचामृत, पंजीरी फलों का प्रसाद चढ़ाकर वितरण तथा रात्रि में कृष्ण जन्म होने पर नारियल, रुपये, लड्डू, भक्तों में वितरित किये जाते हैं।

कृष्ण जन्माष्टमी संबंधित उल्लेख शाहपुरा की बही से ज्ञात होता है। यह बही मिति भादवा वद 8 रविवार, संवत् 1994, दिनांक 29 अगस्त, सन् 1937 ई. की है। जिसके अनुसार श्रीमती राणीजी साहब द्वारा जन्माष्टमी के अवसर पर व्रत किया गया तथा मुरलीधर जी महाराज के मंदिर में रसाईघर से पूजन सामग्री का ब्यौरा दफ्तर से लिखी चिट्ठी से ज्ञात होता है।<sup>4</sup>

**गोगानवमी** – सांपों के देवता के रूप में प्रसिद्ध राजस्थान के लोकदेवता के रूप में माने जाने वाले गोगाजी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। गोगानवमी भाद्रपद कृष्ण नवमी के दिन मनाया जाता है। खेजड़ी वृक्ष के नीचे चबूतरे पर इनके स्थानक होते हैं। नवमी के दिन प्रातःकाल स्नानादि करके गोगादेव की या तो मिट्टी की मूर्ति को घर पर लाकर या घोड़े पर सवार वीर गोगाजी की तस्वीर को रोली, हल्दी आदि लगाकर सभी पर कृपा बनाए रखने की मंगल कामना करते हैं।

गोगाजी की पूजा करने की परम्परा काफी पुरानी है। गोगानवमी से संबंधित शाहपुरा संबंधित बही से उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है—“मिति भादवा वद 9 सोमवार संवत् 1994, दिनांक 30 अगस्त, सन् 1937 ई. की गोगानवमी पर पूजन सामग्री का ब्यौरा दफ्तर से प्राप्त चिट्ठी से मिली। ठाकुर जी के नजरवाल

के डेढ़ आना आदि। गोगाजी के पूजन सामग्री में एक नारियल, जौ आका, चावल, आटा, गुड़, तेल आदि से राणीजी साहब की ओर से पूजन कार्य किया गया।”<sup>5</sup>

**बछवारस (वत्स द्वादशी)**— बछवारस जो कि हिन्दू धर्म में गाय और बछड़े के महत्त्व को समझाता है। प्रतिवर्ष जन्माष्टमी के चार दिन पश्चात् भाद्रपद कृष्णा द्वादशी के दिन बछड़े वाली गाय की पूजा की जाती है। ‘भविष्य पुराण’ के अनुसार इसे देवताओं की गाय का नाम नंदिनी होने के कारण नन्दिनी व्रत कहा गया है।<sup>6</sup> इस दिन किसी भी कटी हुई साग-सब्जी, फलों का सेवन वर्जित है। न ही गाय का दूध, दही, घी काम में लिया जाता है। इस दिन गाय बछड़े को चरने के लिए बाहर न भेजकर घर पर खिलाया जाता है। बछवारस पर्व राजस्थानी महिलाओं में ज्यादा लोकप्रिय है। इस दिन महिलायें पुत्र प्राप्ति और मंगल कामना के लिए व्रत रखती हैं।<sup>7</sup>

**विजयदशमी**— अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में विजयदशमी पर्व आश्विन शुक्ल दशमी के दिन मनाया जाता है।<sup>8</sup> मेवाड़ में भी मध्यकाल से ही रावण जलाने का प्रचलन रहा है। यह उत्सव खरखरे के दिन मनाया जाता है। इस दिन शमी अर्थात् खेजड़ी के वृक्ष की पूजा विधान है। महाराणा समस्त सामन्तों के साथ सवारी निकालते हुए हाथीपोल बाहर रेजीडेन्सी के पास, शमी पूजन के लिए जाते हैं तत्पश्चात् महाराणा शहर के चारों दरवाजों पर प्रस्थान के चार तीर भेजकर दरबार लगाया जाता था। जहाँ महाराणा को उपस्थित सामन्त इत्यादि नजर देकर पुनः दरबार महलों में लगता था। जहाँ महाराणा सामन्त को गजाश्व भेंट करते थे। इस अवसर पर रात को आतिशबाजी, तोपें आदि चलती थी। इस पर्व पर शाहपुरा राजा भीमसिंह का उदयपुर महाराणा के पास जाने का उल्लेख दस्तावेज में मिलता है। अतः दशहरा बहुत लोकप्रिय पर्व है।<sup>9</sup>

दीपावली— अंधकार पर प्रकाश की विजय का दीपावली कार्तिक अमावस्या को मनाया जाता है। यह त्यौहार भारत के सबसे बड़े और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण त्यौहारों में से एक है। दीपावली दीपों का त्यौहार है। कई सप्ताह पूर्व ही दीपावली की तैयारियां आरंभ हो जाती हैं।

दीपावली पर्व से संबंधित शाहपुरा बही में उल्लेख मिलता है। बही में कार्तिक माह में होने वाले त्यौहारों के प्रत्येक दिन की घटनाओं का तिथि, सम्वत्, वार, दिनांक व सन् सहित क्रमानुसार मिलता है। इस प्रकार

बही से यह ज्ञात होता है कि दीपावली पर्व मनाने की परम्परा ठिकाने परिवार में रही है।<sup>10</sup>

मेवाड़ में दीपावली से भी अधिक लोकप्रियता खोखरा उत्सव को प्राप्त है। प्रातःकाल गांव के बाहर मैदान में गाये एकत्रित होती हैं वहाँ 'आलो खोलड़ी' के रस्सा बांधकर पशुओं के बीच ग्वाला दौड़ता है, तत्पश्चात् उसी समूह में से बहुत गायें भड़क कर पीछे दौड़ती हैं तथा ग्वाला उसे लेकर गांव की ओर भागता है, जो गाय अंत तक पीछा करती हुई उसके स्वामी के घर पहुँचती हैं तब ग्वाल को नेग मिलता है। इस गाय के रंग के अनुसार कृषि उपज के शकुन साथे जाते हैं जैसे—गेहुँअन (गेहुँ), पीली (मक्का), सफेद (कपास) इन गायों को खेखरे वाली गाय कहा जाता है। घरों के बाहर महिलायें गोबर से द्वार पर दो स्वरूप बनाकर उनकी पूजा करती हैं। यह सांस्कृतिक पर्व अत्यन्त रोचकतापूर्ण है। यह परम्परा आज भी चल रही है परन्तु आधुनिक युग में ट्रेक्टर एवं पम्पसेट आने से बैलों की जोड़ियां बहुत कमी हुई हैं।

शाहपुरा बही से गोवर्धन पूजा संबंधित उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार सात बजे डावड़ा, दमामणा की महिलाओं द्वारा पूजन की तैयारी की गयी। पूजन सामग्री में थाली, दही, आका, मोली, गुड़, धूप व घी आदि सम्मिलित किया गया। तत्पश्चात् गारे (गोबर) से गोवर्धन बनाकर पूजन किया गया।<sup>11</sup>

**तुलसी पूजन** – शास्त्रों के अनुसार तुलसी का बहुत महत्त्व है जिसकी पूजा तुलसी को माता के स्वरूप में भी जाती है। तुलसी पूजन की परम्परा काफी पुरानी है। तुलसी पूजन का महत्त्व कार्तिक मास में विशेषतः है। इससे संबंधित शाहपुरा बही से तुलसी पूजन में काम में ली जाने वाली विभिन्न प्रकार की सामग्री तथा तुलसी पूजन की पूर्ण विधि का उल्लेख है। जो इस प्रकार लिखित है—

उपर्युक्त बही मिति काती सुद 11 रविवार संवत् 1994 दिनांक 14 नवम्बर सन् 1937 से संबंधित है। बही के अनुसार तुलसी पूजन का कार्य शाम के छः बजे हुआ। पूजन सामग्री—पाठा, नारंगी, केला, चंवला की फली, मोली का लच्छा, फूल, दो हाथ का चीर (कपड़ा), घी का दीपक, धूप आदि थाली में रखा गया। सर्वप्रथम पूजन में तुलसी माता को कपड़ा ओढ़ाया गया तथा दो पैसा पूजन में रखकर आदि सामग्री से पूजन कार्य भूरजी ब्राह्मण की बहू द्वारा किया गया। विधिनुसार पूजन छीतरजी व्यास की बहू द्वारा बताया

गया तत्पश्चात् मांजी साहब की ओर से रहवास में पीपल, तुलछां, बड़ का भी पूजन किया गया। इनमें भी उपर्युक्त सामग्री प्रयोग में लायी गयी। भोग तथा अन्य सभी सामग्री रानी साहब की ओर से आयी गयी। तुलसी पूजन का कार्यपूर्ण होने के पश्चात् यह सामग्री दो भागों में बांट ली गयी जिनमें से आधी सामग्री लिछमीनारायण जी को और आधी सामग्री छीतरजी व्यास की बहू द्वारा ले ली गयी। इस अवसर पर राज्य की डावड़िया व दमामणिया गीत गाती, बजाती रही।<sup>12</sup>

**मकर संक्रान्ति** – पौष शुक्ल चतुर्दशी को यह पर्व अलग-अलग जगहों पर विभिन्न नामों मनाया जाता है। इस दौरान सूर्य अपनी विशेष स्थिति में रहता। मेवाड़ में सोटा दड़ी का खेल लोकप्रिय था। इसके साथ गुल्ली डण्डा, सितोलिया भी खेला जाता था। वर्तमान में यह प्रथा बन्द हो गई है। इस दिन तिल के लड्डू, चक्की, मिट्टा, नमकीन, खीच आदि बनाए जाते हैं। गोबर के सकरातिया (संक्रातड़े) थप कर उस पर स्वास्तिक, गाय के खुर, चूड़ियां आदि मांडते हैं एवं खीच, लड्डू आदि का धूप लगाते हैं।<sup>13</sup> इस दिन ब्राह्मण, गरीबों को वस्त्र, कंबल, तिल के लड्डू, दक्षिणा का दान-पुण्य किया जाता है।<sup>14</sup>

**मुहर्रम**— मेवाड़ में मुसलमानों का प्रवेश शहाबुद्दीन मोहम्मद गौरी द्वारा अजमेर पर अधिकार करने के पश्चात् हुआ। यहाँ शिया और सुन्नी दोनों मतानुयायी मुसलमान रहते हैं। उदयपुर में मुहर्रम के दिन ताजिये निकाले जाते हैं। यह ताजिये अत्यन्त कलात्मक रूप से बनाये जाते हैं। इस अवसर के दौरान राज्य की ओर से शान्ति बनाये रखते हुए उत्तम प्रबन्ध किया जाता है।<sup>15</sup>

**बसन्त पंचमी**— माघ शुक्ला पंचमी को बसन्त पंचमी का पर्व मनाया जाता है। इस दिन नाना प्रकार के मनमोहक फूलों से धरती प्राकृतिक रूप से संवर जाती है, खेतों में सरसों का फूल मानो सोना चमकने लगे, आमों के पेड़ पर मांजर (बैर) आने लगे, कोयल की कूक, हर तरफ रंग बिरंगी तितलियों के मंडराने, भर-भर भंवरे भंवराने लगे तभी से बसन्त ऋतु की शुरुआत मानी जाती है। "इस पर्व का रंग बासन्ती है, पीले वस्त्र पहने जाते हैं। इस दिन दरबार का रंग भी बासन्ती होता था एवं सभी पीले वस्त्र धारण करते थे। इस दिन नृत्य संगीत के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं तथा देवालियों में गुलाल, अबीर चढ़ाकर पीले फूलों से पूरा सजाया जाता है।"<sup>16</sup>

**महाशिवरात्रि-** भगवान शिव की अपार शक्ति और भक्ति का पर्व महाशिवरात्रि हर साल फाल्गुन मास के कृष्ण चतुदर्शी के दिन मनाया जाता है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इस दिन ज्योतिर्लिंग का प्राकट्य हुआ तथा दूसरी मान्यता के अनुसार शिव और शक्ति का मिलन अर्थात् शिव पार्वती का विवाह भी इसी दिन हुआ। समाज के चारों वर्णों में पूजित आराध्य देव महादेव ही है। “इस दिन भगवान शिव की विधि विधान से पूजा की जाती और प्रमुख देवालियों में पंचामृत स्नान, शृंगार, आरती होती है। मंदिरों में इस दिन बहुत भीड़ रहती है। हजारों की संख्या में लोग दर्शन करते हैं तथा इस दिन व्रत, उपवास, जागरण, कीर्तन भी किया जाता है।”<sup>17</sup>

**होली-** रंगों का त्यौहार फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है जिसकी शुरुआत बसन्त पंचमी से ही हो जाती है। होली मंगल के दिन लड़कियां गोबर के गुड़लिया बनाकर शृंगारित कर इन्हें होली को पहनाती हैं तथा महिलाएं होली का पूजन करती हैं। होलिका दहन पश्चात् चंग, डफ, ढोल, थाली पर लोकगीतों से गूंज उठता है। नृत्य बड़े हर्षोल्लास से किया जाता है। मेवाड़ में राजमहलों में होलिका दहन होने के पश्चात् ही नगर में अनेक स्थानों पर दहन किया जाता था। होली की परिक्रमा नगरवासियों द्वारा की जाती है तथा विभिन्न परिवारों द्वारा कच्चे धागे एकत्र कर मामा-भापेज होली की ज्वाला से सात बार निकालकर इन्हें कच्चे धागों से दशामाता की बेल बनायी जाती है। होलिका दहन के बाद गांव के पुरुष गैर नृत्य एवं स्त्रियां घूमर नृत्य करती हैं ठिकाने के गढ़ के बाहर रात्रि भर गैर नृत्य चलता था। यह नृत्य चैत्र कृष्णा 13 तक निरन्तर चलता रहता है। इस अवसर पर विभिन्न प्रकार के मिठाईयां, पकौड़ी बनायी जाती है।

होली के त्यौहार संबंधित शाहपुरा बही से होली के पूजन का उल्लेख मिलता है। जिसका विवरण इस प्रकार है-“रामलाल की बहु द्वारा मंदिर के आगे जाजम लगाकर दलिचा आदि लगाया गया। उस स्थान पर सरदारों के घर से आयी हुई महिलार्यें बैठी। राणीजी साहब कंवराणीजी साहब व बाईजी साहब कंवराणीसा साहब के मामा के लड़के आदि दलिचा पर विराजे। तत्पश्चात् नौ बजे पूजन कार्य शुरु किया गया जिसमें राणीजी साहब, कंवराणीजी साहब तथा बाईजी साहब द्वारा पूजन किया गया। इस पूजन के दौरान भूरा की बहु द्वारा लायी गयी सामग्री में मुख्यतः मेहन्दी, मोली

का लच्छा, पुष्प और काजल आदि सम्मिलित था। अतः इनके पूजन के पश्चात् हवेली की अन्य ठ्कुरानियों द्वारा पूजन किया गया।”<sup>18</sup>

शाहपुरा संबंधित बही से होली के अवसर पर श्रीमती राणीजी साहेब की ओर से फाग महोत्सव का आयोजन किया गया। यह बही मिति चैत सुद 7 बृहस्पतिवार, संवत् 1994, दिनांक 7 अप्रैल, सन् 1937 ई. से की है। जिसका विवरण इस प्रकार है-“सन् 1937 को श्रीमती राणीजी साहेब की ओर से फाग महोत्सव की तैयारी के लिए आदेश दिया गया। सर्वप्रथम तोपखाना के सामने का होज पानी से भराया गया। बनेड़ा से आये सभी सरदारों के लिए भोजन आदि सुबह के समय रखा गया। श्रीमती माजी साहब अजमेर गये जहाँ से पुनः लौटते समय फतेहसिंह जी देलीवाला और मदनमोहन जी गौड़ साथ आये। बनेड़ा से बड़े कंवराजी, छोटे कंवराणीजी भंवर बाईजी व राजगढ़ वाला बाईजी साहब, राजगढ़ वाला कंवराणीजी के साथ में मनीबाई डावड़ा आदि लगभग 11 बजे पहुँचे जिनके स्वागत के लिए श्रीमती राणीजी साहेब व श्रीमती बाईजी साहेब डोडी तक सामने पहुँचे।”<sup>19</sup>

**शीतला अष्टमी-** चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन यह पर्व बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इस धार्मिक पर्व पर शीतला माता की पूजा कर नैवेद्य अर्पित किया जाता है तथा इसमें कच्चा दूध, दही, बाजरे का खींच, दही-चावल का मीठा और नमकीन ओलियां प्रमुख व्यंजन शामिल हैं। अष्टमी से एक दिन पूर्व ही भोजन बनाकर तैयार कर दूसरे दिन ठंडा-बासी भोजन करने की परम्परा है। “होली के दूसरे दिन गांव की स्त्रियां सात दिन तक कुमकुम, जल, दही से शीतला माता का ठण्डा करती हैं। जिसका कारण चेचक (पूर्व में महामारी का इस काल में बढ़ता प्रकोप) निकले हुए बच्चों को अधिक तकलीफ न हो।”<sup>20</sup>

**दशामाता पर्व-** होली के दूसरे दिन से दसवें दिन तक मनाया जाने वाला यह पर्व स्त्रियां अपने पति को जन्म जन्मांतर पाने तथा सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए बड़े उमंग से मनाती है। इस दिन होली के जाल में से लाये गये कच्चे धागे से बेल बनाकर स्त्रियां पीपल पूजा कर इन्हें धारण करती हैं। दशामाता के बेल की दस दिन तक पूजा करते हैं। इन दिनों स्त्रियां व्रत कर दशामाता की कहानियां श्रवण करती हैं। यह परम्परा वर्तमान में भी तक चली आ रही है।

दशामाता पर्व का विवरण शाहपुरा बही से ज्ञात होता है जिसमें मिति चैत वद 4 संवत् 1994 का प्रत्येक दिन का उल्लेख मिलता है जिनमें कुछ दिनों का उल्लेख इस प्रकार है-“मिति चैत वद 4 रविवार, संवत् 1994, दिनांक 20 मार्च सन् 1937 के दिन मंदिर में माताजी महाराज का पूजन किया गया। मोहब्बतसिंह जी की बहु, मनोहरसिंह की बहु, हरिसिंह जी की बहु, भूपालसिंह जी की बहु, विक्रमसिंह जी की बहु, नीमड़ा वाला दौलतसिंह जी बहु, व्यासा के घर की आयी छीतरजी की बहु द्वारा दशामाता की कहानी कही गयी।”<sup>21</sup> इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस ठिकाने परिवार के द्वारा बड़ों का आदर-सत्कार भी किया जाता था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकोत्सव किसी भी प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान के परिचायक होते हैं। इनमें लोक संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। मेवाड़ के शाहपुरा ठिकाने में मध्यकाल से ही अनेक प्रकार के लोकोत्सव राजा-महाराजा, रानियों एवं आमजन द्वारा मनाये जाते रहे हैं। उपरोक्त लोकोत्सवों में शाहपुरा की पारम्परिक सांस्कृतिक विरासत के दर्शन होते हैं।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत के व्रत एवं त्यौहार : प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, 2013, पृ. 63
2. रीत किरावर री बही, शाहपुरा, क्र.सं. 1029, राज. शो सं. चौपासनी, जोधपुर
3. रीत किरावर री बही, शाहपुरा, क्र.सं. 1029, राज. शो सं. चौपासनी, जोधपुर
4. वही
5. वही

6. भारत के व्रत एवं त्यौहार : प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, 2013, पृ. 69
7. वही, पृ. 69
8. वीर विनोद : श्यामलदास, भाग 1, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986, पृ. 130
9. Review of documentary evidence of shahpura and Udaipur an elucidation of the Service clause and how it excited etc. Rajasthani Research Institute Chopasni Jodhpur, Page 5
10. रीत किरावर री बही, शाहपुरा, क्र.सं. 1029, राज. शो सं. चौपासनी, जोधपुर
11. वही
12. वही
13. मेवाड़ ठिकानों का सामाजिक एवं आर्थिक सर्वेक्षण : सं. धर्मपाल शर्मा, ईश्वरीसिंह राणावत, महोब्बत सिंह राठौड़, प्र. शो. प्रति. उदयपुर, 2008, पृ. 198
14. मेवाड़ संस्कृति एवं परम्परा : धर्मपाल शर्मा, प्र. शो. प्रति. उदयपुर, 1999, पृ. 183
15. वही, पृ. 179
16. वही, पृ. 184
17. वही
18. रीत किरावर री बही, शाहपुरा, क्र.सं. 1029, राज. शो सं. चौपासनी, जोधपुर
19. वही
20. मेवाड़ संस्कृति एवं परम्परा : धर्मपाल शर्मा, प्र. शो. प्रति. उदयपुर, 1999, पृ. 200
21. रीत किरावर री बही, शाहपुरा, क्र.सं. 1029, राज. शो सं. चौपासनी, जोधपुर

# आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में पं. मदन मोहन मालवीय का योगदान

डॉ. कमल कान्त शर्मा

नारडा कला, बहरोड़, अलवर



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

सारांश : पुरातन भारतीय ज्ञान-सम्पदा एवं सांस्कृतिक धरोहर की प्रतिमूर्ति महामना पं. मदन मोहन मालवीय आत्मत्याग आदि सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे। मालवीय जी के जीवन का प्रत्येक पल देशहित के चिंतन एवं कार्यों में व्यतीत हुआ था। उन्नति का कोई भी ऐसा विषय या क्षेत्र नहीं, जिसमें उन्होंने अग्रणी भूमिका न निभाई हो। मालवीय जी हमारी सभ्यता-संस्कृति के एक प्रबल प्रकाश स्तम्भ थे। उन्होंने सदियों के शोषण, अत्याचार से दबी-कुचली भारतीय आत्मा को प्राचीन ऋषियों के सनातन एवं शाश्वत संदेशों से पुनः जागृत करने और नव-निर्माण की नूतन उम्मीदों के संचार द्वारा उनमें साहस, शौर्य, स्वाभिमान एवं स्वावलंबन की भावना भरने का प्रयास किया। भारतीयों को भारतीयता की शिक्षा देने और भारतीय संस्कृति की अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से मालवीयजी ने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना की। इस हेतु उनके समक्ष एक ही लक्ष्य था, आधुनिक युगीन विज्ञान, तकनीकी और उद्योग को प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ संयुक्त कर परिष्कृत रूप देना। महामना भारत की नेतृत्व प्रतिभा को भली-भांति पहचानते थे एक सुनहरे भविष्य की रूप-रेखा उनकी कल्पना में उभर चुकी थी जिसे साकार करने के लिए समाज के सर्वाधिक क्रियाशील अंग के सहयोग की आवश्यकता थी। उन्होंने अनुभव किया कि आदर्श चरित्रों के अधिकारी युवक-युवतियां ही भविष्य का सामना कर सकते हैं, परन्तु उन्हें ऐसी शिक्षा के माध्यम से तैयार करना होगा जो आधुनिक होने के साथ-साथ धर्म और नीति पर भी पर्याप्त बल दे। वे अध्यात्मिक सद्गुणों, नैतिक मूल्यों तथा सांस्कृतिक उत्कर्ष के असाधारण संश्लेषण थे। अंग्रेजी शासन के दौरान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जो विघटन देखने को आया था, उसको सुधारने में मदन मोहन मालवीय का विशेष योगदान रहा।

**संकेताक्षर :** आधुनिक शिक्षा, पं. मदन मोहन मालवीय, संस्कृति, स्वाभिमान, भविष्य, विज्ञान।

**भा**रत रत्न महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी का जन्म प्रयाग (इलाहाबाद) में पंडित बृजनाथ और मूना देवी जी के घर 25 दिसंबर 1861 में को हुआ था। पिता बृजनाथ जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। अतः प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत भाषा में पंडित हर देव धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला में हुई। म्योर सेण्ट्रल कॉलेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय सहित विभिन्न शिक्षण संस्थानों से शिक्षा हासिल करके एक कुशल अधिवक्ता, निर्भीक पत्रकार, संवेदनशील समाज सुधारक, भारत की भावी पीढ़ी को भारतीयता का पाठ पढ़ाने वाले एक सफल शिक्षक के रूप में जाने गए। ब्रिटिश साम्राज्य के उस दौर में मालवीय जी ने सामाजिक न्याय और समानता पर मजबूती से अपना पक्ष रखा। अस्पृश्यता, अशिक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह पर खुल कर प्रहार किया। समाज की रूढ़िवादी परंपराओं का न सिर्फ विरोध किया अपितु जीवन भर उन्हें दूर करने का प्रयास करते रहे। उनके सरल स्वभाव का प्रभाव ही था कि वे उस दौर के सबसे लोकप्रिय शख्सियत बन गए। सहज ही लोग उनकी बातों को अनसुना कर पाते थे। मालवीय जी भारत के गौरवशाली अतीत को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिये आधुनिक विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा को आवश्यक मानते थे। वे आधुनिक विज्ञान की शिक्षा को जन-जन तक ले जाना चाहते थे। यह तभी संभव हो सकता था जब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। विज्ञान और तकनीकी राष्ट्र की धरोहर तभी बन सकती है जब उसकी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनेगी। उनका दृढ़ मत था कि भारतीय आसानी से विज्ञान की

शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान को समर्पित उनके जीवन में समाज के प्रत्येक तबके को जोड़ कर रखने की गजब की शक्ति थी। उन्होंने 'सत्यमेव जयते' के नारे को जन जन तक लोकप्रिय बनाया। 4 फरवरी 1916 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की नींव डाल कर भारतीयों को अंग्रेजी के साथ साथ हिंदी का एक विषय के रूप में अध्यापन आरंभ कराया। भारत में शिक्षा की क्रांति की मशाल जगाई। उन्होंने स्वयं 'मकरंद' उपनाम से रचनाएं लिखी, जो उस दौर में बेहद पसंद की जाने लगी। हिंदी को प्रोत्साहन देने में आपका अप्रतिम योगदान है। मालवीय जी की भविष्यवाणी थी, कि हिंदी एक दिन राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित होगी।

तत्कालीन ब्रिटिश शासन में कालाकांकर के देशभक्त राजा रामपाल सिंह के अनुरोध पर हिंदी, अंग्रेजी अखबार हिंदुस्तान का 1887 से संपादन किया, इंडियन ओपीनियन के संपादन में सहयोग दिया साथ ही वर्ष 1907 में साप्ताहिक अभ्युदय को निकालकर कुछ समय तक संपादित किया, वर्ष 1909 में लीडर एवं मर्यादा पत्रिका निकालकर लोगों को जागरूक करने का काम किया। भारत की पत्रकारिता के क्षेत्र में आज भी उनका स्थान सर्वप्रथम है। स्वतंत्रता संग्राम में इन अखबारों का अहम रोल रहा है।

पंडित मदन मोहन मालवीय जी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के चार बार अध्यक्ष चुने गए, वर्ष 1909 में लाहौर, 1918 और 1930 में दिल्ली तथा 1932 में कोलकाता में कांग्रेस के अधिवेशन के अध्यक्ष रहे। मालवीय जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर 35 वर्ष तक कांग्रेस की सेवा की और राष्ट्र सेवा में अपना योगदान दिया। जब ब्रिटिश सरकार ने चौरा-चौरा कांड में लगभग 170 लोगों को फांसी की सजा सुनाई तब पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने मुकदमें की पैरवी करके लगभग 151 लोगों को बचाया। उनकी योग्यता का लोहा अंग्रेजी हुकूमत भी मानती थी। वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन, लाला लाजपतराय के साथ साइमन कमीशन का विरोध, नमक सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन में अपनी अहम भूमिका निभाई। मालवीय जी ने वर्ष 1931 में पहले गोलमेज सम्मेलन में देश का प्रतिनिधित्व किया और वर्ष 1937 में राजनीति से सन्यास लेकर समाज सेवा से जुड़ गए।

महामना असमानता और तुष्टिकरण की नीतियों के विरुद्ध थे। उन्होंने 1916 के लखनऊ पैक्ट के दौरान मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल का पुरजोर विरोध किया। वो नहीं चाहते थे कि भारत विभाजन हो इसलिए उन्होंने महात्मा गांधी जी से आग्रह किया था कि वे देश के विभाजन को किसी कीमत में स्वीकार न करें। उनके बारे में एनी बेसेंट ने कहा था कि 'मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि विभिन्न मतों के बीच केवल मालवीय जी भारतीय एकता की मूर्ति बने खड़े हुए हैं।' पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने भारत के स्वराज के लिए अपनी अंतिम सांस तक तपस्या और संघर्ष किया लेकिन अफसोस आजादी मिलने के कुछ समय पूर्व 12 नवंबर सन् 1946 को आपका निधन हो गया। महामना की देशभक्ति से प्रभावित होकर महात्मा गांधी उन्हें बड़े भाई और भारत निर्माता की संज्ञा देते थे। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी का योगदान अमर है, उनकी तपस्या और संघर्ष के इतिहास को पढ़ कर हर भारतीय हमेशा प्रेरणा लेता रहेगा।

### भारतीय शिक्षा : पं. मदन मोहन के विचार

व्यक्ति और समाज के अभ्युदय के लिए बौद्धिक विकास से भी अधिक महत्वपूर्ण है चरित्र का निर्माण और उसका विकास। मात्र औद्योगिक प्रगति से ही कोई देश खुशहाल, समृद्ध और गौरवशाली राष्ट्र नहीं बन सकता। अतः युवाओं का चरित्र निर्माण इस प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक प्रमुख लक्ष्य होगा। उच्च शिक्षा द्वारा यहां केवल अभियंता, चिकित्सक, विधिवेत्ता, वैज्ञानिक और कुशल व्यापारी तथा शास्त्रज्ञ विद्वान ही तैयार नहीं किए जाएंगे, बल्कि ऐसे व्यक्तियों का निर्माण किया जाएगा, जिनका चरित्र उज्ज्वल हो, जो कर्तव्य परायण और मूल्य निष्ठा से ओतप्रोत हों। यह विश्वविद्यालय केवल अर्जित ज्ञान के स्तर को प्रमाणित कर डिग्रियां देने वाली संस्था मात्र न होकर सुयोग्य और सद्चरित्र नागरिकों की पौधशाला होगा।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के मौके पर महामना मदनमोहन मालवीय का भाषण अपने आप में कालजयी है। यह भारत के विश्वविद्यालयों के पुनीत उद्देश्य और प्रासंगिकता के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। 21वीं सदी में शिक्षा पर एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट 'लर्निंग : द ट्रेजर विदिन' में कहा गया है कि इस सदी में बहुत से तनावों और द्वंद्वों से हमें गुजरना पड़ेगा, जैसे- वैश्विक और स्थानीय, सार्वभौमिक व

वैयक्तिक, परंपरा और आधुनिकता, दीर्घकालिक व अल्पकालिक सोच, प्रतियोगिता और सहयोग, ज्ञान का असीमित प्रसार और मानव की ग्राह्य क्षमता, आध्यात्मिकता व भौतिकता। इसलिए इस सदी की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे ये तनाव और द्वंद्व कम किए जा सकें, साथ ही संतुलन बनाए रखा जा सके।

आज के युवा अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति ज्यादा जागरूक, सजग और चिंतित हैं। वे अपने आने वाले कल को सदृढ़ करना चाहते हैं। भविष्य के प्रति चिंतित होना और सपने देखना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन उनके सामने बहुत से सवाल हैं, जिनका उत्तर आसान नहीं है। ये सवाल शिक्षा की प्रासंगिकता और गुणवत्ता को लेकर हैं, उनकी रोजगार परायणता को लेकर हैं, रचनाधर्मिता और मानवीयता से संबंधित हैं। आज के युवा और उनके पालक सर्वश्रेष्ठ उच्च शिक्षा की चाहत रखते हैं। ऐसी शिक्षा, जो कि युवाओं में वांछित ज्ञान, कौशल और दक्षता का विकास करे, उन्हें सही मायने में शिक्षित और संस्कारित बनाए, उनमें सही और गलत को समझने का नजरिया विकसित करे, उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने योग्य बनाए, उन्हें सदी की कसौटी पर खरा उतरने योग्य बनाए, उनमें प्रतिस्पर्धात्मक विश्व-रंगमंच पर सफल होने के लिए आवश्यक गुणों और क्षमताओं का विकास करे।

महामना मानते थे कि 'जीवन का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मूलमंत्र हो। शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो कि विद्यार्थी अपनी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक शक्तियों का विकास कर आगे चलकर किसी व्यवसाय द्वारा सच्ची और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सकें, कलापूर्ण सौंदर्यमय जीवन व्यतीत कर सकें, समाज में आदरणीय और विश्वासपात्र बन सकें तथा देशभक्ति से, जो मनुष्य को उच्च कोटि की सेवा को प्रेरित करती है, अपने जीवन को अलंकृत कर राष्ट्र की सेवा कर सकें।'

एक आदर्श नागरिक ही किसी गणतंत्र की पहचान होता है- ऐसी सोच के साथ मालवीयजी ने बहुआयामी शिक्षा को परम आवश्यक माना और भारत को अशिक्षा तथा अज्ञान के अंधकार से निकालने का संकल्प किया। शिक्षा को महामना ने राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शर्त के रूप में देखा- एक ऐसी शिक्षा, जो प्राची और प्रतिची के समन्वय से बनी हो और मनुष्य मात्र के सर्वांगीण कल्याण में अभिवृद्धि करती हो। मालवीयजी

शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण और मजबूत 'चेंज एजेंट' के रूप में मानते थे। उन्होंने राष्ट्र निर्माण की संकल्पना में प्रजातांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय सहमति को सदैव उच्चतम वरीयता दी। काशी हिंदू विश्वविद्यालय मालवीयजी की देशभक्ति और प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का जीवंत उदाहरण है।

आज भारत विश्व के शक्तिशाली और विकसित राष्ट्रों के बराबर होने की ओर बढ़ रहा है। निरसंदेह, इसके पीछे हमारे प्रतिभासंपन्न युवाओं की कर्मठता और बौद्धिक योग्यता है। भारतीय युवाओं की सिद्ध क्षमताओं ने विश्व में आज अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है। वह चाहे कला का क्षेत्र हो, विज्ञान हो, वाणिज्य हो, प्रबंधन का क्षेत्र हो या इंजीनियरिंग, चिकित्सा व तकनीक का।

भारत के विकास की राहें सरल अवश्य हुई हैं, किंतु अब भी हमारे सामने अनेक कठिन चुनौतियां हैं। गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, आतंकवाद, सामाजिक विषमता आदि अनेक मोर्चों पर अभी बहुत कुछ करना शेष है। हमारे सामने अपनी आबादी के एक-तिहाई हिस्से को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने, सामाजिक विकास के संकेतकों में निरंतर प्रगति करने, मानव विकास सूचकांक में विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में अपना स्थान बनाने और सहस्राब्दि विकास लक्ष्य के अनुरूप अपने राज-समाज को परिवर्तित करने की बड़ी चुनौतियां मौजूद हैं। आतंकवाद और सामाजिक हिंसा की समस्याएं रह-रहकर हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर रही हैं। पर्यावरण का प्रश्न विकराल रूप में हमारे सामने है।

इन तमाम चुनौतियों से जूझने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन बन सकती है। शिक्षा वह नहीं, जो सिर्फ विद्यार्थियों को ज्ञानशील बनाए, अपितु वह उन्हें क्रिया-कौशल से युक्त भी करे। ऐसी शिक्षा, जो मानवीय आवश्यकताओं से जुड़ी हो और रोजगारपरक होने के साथ ही शांति व मानव विकास के प्रतिमानों के अनुकूल भी हो। शिक्षा का अंतिम पड़ाव श्रेष्ठ और जिम्मेदार नागरिक बनाना है। संस्कारनिष्ठ और गुणवत्ता युक्त शिक्षा ही सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता और विश्व बंधुत्व को बढ़ा सकती है। शिक्षा हर समाज और राष्ट्र की रीढ़ होती है। हमारा वर्तमान और भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हमारी शिक्षा पद्धति कैसी है।<sup>3</sup>

महामना मदन मोहन मालवीयजी ने बनारस के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (बीएचयू) की स्थापना 4 फरवरी

1916 में करने के साथ ही भारत में आधुनिक शिक्षा की बुनियाद रखी थी। इसका शिलान्यास वायसराय लॉर्ड हार्डिंग ने किया। मालवीयजी का मकसद महज देश में विश्वविद्यालय की स्थापना करना ही नहीं, बल्कि ऐसे विश्वविद्यालय के माध्यम से समाज, राष्ट्र एवं विश्व को उच्च शिक्षा की सम्यक दृष्टि प्रदान करना रहा था।<sup>4</sup>

## 21वीं सदी में और भी प्रासंगिक हैं महामना

पुनर्जागरण काल में शिक्षा में होने वाले बदलाव में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विशेष योगदान रहा है। उन्होंने शिक्षा में प्राचीन भारतीय मूल्यों एवं मानदंडों के साथ आधुनिक ज्ञान व विज्ञान का बेहतरीन समन्वय किया। महामना के शिक्षा दर्शन का अनुसरण कर देश की शिक्षा को नई दिशा दी जा सकती है। महामना पूरे जीवन शिक्षक थे। उन्होंने शिक्षा में भारतीय संस्कृति और हिंदू विचारों को समाहित किया। महात्मा पंडित मदन मोहन मालवीय हिन्दुत्व की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे।

पं. मदन मोहन मालवीय जी कई संस्थाओं के संस्थापक तथा कई पत्रिकाओं के सम्पादक रहे। इस रूप में वे हिन्दू आदर्शों, सनातन धर्म तथा संस्कारों के पालन द्वारा राष्ट्र-निर्माण की पहल की थी। इस दिशा में प्रयाग हिन्दू सभा की स्थापना कर समसामयिक समस्याओं के संबंध में विचार व्यक्त करते रहे। सन् 1884 ई. में वे हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा के सदस्य, सन् 1885 ई. में इण्डियन यूनियन का सम्पादन, सन् 1887 ई. में भारत-धर्म महामण्डल की स्थापना कर सनातन धर्म के प्रचार का कार्य किया। सन् 1889 ई. में हिन्दुस्तान का सम्पादन, 1891 ई. में इण्डियन ओपीनियन का सम्पादन कर उन्होंने पत्रकारिता को नई दिशा दी। मालवीय जी एक सफल पत्रकार थे और हिन्दी पत्रकारिता से ही उन्होंने जीवन के कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया। वास्तव में मालवीय जी ने उस समय पत्रों को अपने हिन्दी-प्रचार का प्रमुख साधन बना लिया और हिन्दी भाषा के स्तर को ऊँचा किया था। धीरे-धीरे उनका क्षेत्र विस्तृत होने लगा। पत्र सम्पादन से धार्मिक संस्थाएँ और इनसे सार्वजनिक सभाएँ विशेषकर हिन्दी के समर्थनार्थ और यहाँ से राजनीति की ओर इस क्रम ने उनसे सम्पादन कार्य छुड़वा दिया और वे विभिन्न संस्थाओं के सदस्य, संस्थापक अथवा संरक्षक के रूप में सामने आने लगे। पत्रकार के रूप में उनकी हिन्दी सेवा की यही सीमा है,

यद्यपि लेखक की हैसियत से वे भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। हिन्दी के विकास में उनके योगदान का तब दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ। हिन्दी की सबसे बड़ी सेवा मालवीय जी ने यह की कि उन्होंने उत्तर प्रदेश की अदालतों और दफ्तरों में हिन्दी को व्यवहार योग्य भाषा के रूप में स्वीकृत कराया। इससे पहले केवल उर्दू ही सरकारी दफ्तरों और अदालतों की भाषा थी। यह आन्दोलन उन्होंने सन् 1890 ई. में आरम्भ किया था। तर्क और आँकड़ों के आधार पर शासकों को उन्होंने जो आवेदन पत्र भेजा उसमें लिखा कि “पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध की प्रजा में शिक्षा का फैलना इस समय सबसे आवश्यक कार्य है और गुरुतर प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि इस कार्य में सफलता तभी प्राप्त होगी जब कचहरियों और सरकारी दफ्तरों में नागरी अक्षर जारी किये जायेंगे। अतएव अब इस शुभ कार्य में जरा-सा भी विलम्ब न होना चाहिए। सन् 1900 ई. में गवर्नर ने उनका आवेदन पत्र स्वीकार किया और इस प्रकार हिन्दी को सरकारी कामकाज में हिस्सा मिला। श्काशी हिन्दू विश्वविद्यालयश् के कुलपति की स्थिति में उपाधिवितरणोंत्सवों पर प्रायरु मालवीय जी हिन्दी में ही भाषण करते थे। शिक्षा के माध्यम के विषय में मालवीय जी के विचार बड़े स्पष्ट थे। अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था कि भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में आने वाली वर्तमान कठिनाईयों का कोई अंत नहीं है। सबसे बड़ी कठिनायता यह है कि शिक्षा का माध्यम हमारी मातृभाषा न होकर एक अत्यंत दुरुह विदेशी भाषा है। सभ्य संसार के किसी भी अन्य भाग में जन-समुदाय की शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नहीं है।

इसके साथ ही सन् 1891 ई. में इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण व विशिष्ट मामलों में अपना लोहा मनवाया था। सन् 1913 ई. में वकालत छोड़ दी और राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया ताकि राष्ट्र को स्वाधीन देख सकें। यही नहीं, वे आरम्भ से ही विद्यार्थियों के जीवन-शैली को सुधारने की दिशा में उनके रहन-सहन हेतु छात्रावास का निर्माण कराया। सन् 1889 ई. में एक पुस्तकालय भी स्थापित किया। इलाहाबाद में म्युनिस्पैलिटी के सदस्य रहकर सन् 1916 तक सहयोग किया। इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। सन् 1907 ई. में बसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर एक साप्ताहिक हिन्दी पत्रिका अभ्युदय नाम से आरम्भ

की, साथ ही अंग्रेजी पत्र लीडर के साथ भी जुड़े रहे। पिता की मृत्यु के बाद पंडित जी देश-सेवा के कार्य को अधिक महत्व दिया। 1919 ई. में 'कुम्भ-मेले' के अवसर पर प्रयाग में प्रयाग सेवा समिति बनाई ताकि तीर्थयात्रियों की देखभाल हो सके।<sup>5</sup>

स्वतंत्रता के कई दशक बीत जाने के बाद भी समता, समानता और सहभागिता का घोर अभाव दुःखद है। तीसरा, हम अपनी संस्कृतियों से जुड़े सकारात्मक तत्वों की रक्षा के लिए क्या यत्न करें? हमें अपने मूल्यों, अपनी नैतिकता, अपने कर्तव्यों के विविध आयामों और उनके आधारों पर मंथन करना होगा। चौथा, हमारी राष्ट्रीय राजनीति समाज के लिए व्यापक तौर पर उपयोगी कैसे बने? राजनीति यदि समाज के व्यापक कल्याण के आदर्शों पर अग्रसर नहीं होगी, तो उससे लाभ के बजाय हानि ही हासिल होगी। और पांचवां, प्रकृति और पर्यावरण, जिसे- नदी, वन, वनस्पति आदि का संवर्धन कैसे करें?

आज हम देख रहे हैं कि प्रकृति के दोहन और पर्यावरण के क्षरण से उत्पन्न हुई स्थितियां हमारे अस्तित्व के लिए प्रश्नचिह्न बन चुकी हैं। इन पांचों सवालों पर मालवीय जी ने अपने लंबे सार्वजनिक जीवन में हर मोड़ पर कट्टरपंथी ताकतों और विदेशी औपनिवेशिक शासकों के गठजोड़ का असरदार मुकाबला किया। उनके कार्यों, गतिविधियों और संदेशों में हम अपनी समस्याओं को दूर करने के प्रभावी सूत्र पा सकते हैं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि हम अपने पुरखों की, राष्ट्रनिर्माताओं की बनायी राह पर आगे चलने में कई कारणों से कमजोरियां दिखा रहे हैं। आज के दौर में राजनीतिज्ञ शिक्षा को राष्ट्र निर्माण का आधार बनाने के बजाय निजी संपत्ति के संचय का माध्यम बनाने में जुटे हुए हैं। छुआछूत, उत्पीड़न और महिलाओं के जीवन की बाधाओं को दूर करने के बजाय हर समस्या का वोट बैंक बनाने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। हिंदू धर्म समेत सभी धर्मों के शुभ तथ्यों को भुलाया जा रहा है। राजनीति के अपराधीकरण और दिशाहीनता के बारे में कुछ कहना जरूरी नहीं रह गया है। पर्यावरण तो पूरी तरह से प्रगति के बहाने दुर्दशाग्रस्त है। ये सब गंभीर चिंता के विषय हैं, जिन पर हमें प्राथमिकता से ध्यान देने की आवश्यकता है। इसलिए, महामना मालवीय आज पहले से भी कहीं अधिक अनुकरणीय और आदरणीय हैं।<sup>6</sup>

मालवीय जी संस्कृत भाषा की शिक्षा से वे केवल

दर्शन-अध्यात्म नहीं, बल्कि गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद और साहित्य के क्षेत्र में भी अपने विद्यार्थियों को उन्नत बनाने हेतु उनका सुझाव -

### शिक्षा का माध्यम

महामना शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल मातृभाषा को ही उचित मानते हैं। ध्यान दीजिए, यह भाषण वर्ष 1929 का है, जब अंग्रेजों का शासन भारत पर था और किसी भारतीय के लिए उन्नति का मार्ग अंग्रेजी से होकर ही जाता था, इसके विपरीत महामना चिंता व्यक्त करते हैं कि शिक्षा क्षेत्र में अंग्रेजी का प्रयोग व्यापक रूप से होने के कारण भारतीय भाषाओं को भुलाया जाने लगा है। महामना को इस बात का गौरव है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी में एम.ए. की उपाधि के लिए विषय के रूप में मान्यता है तथा यहाँ विद्वानों का एक समूह कला, विज्ञान तथा आयुर्विज्ञान विषयों की पाठ्यपुस्तकों की रचना हिन्दी में कर रहा है।

### कला और विज्ञान : शिक्षा तथा अनुसंधान

मालवीय जी कला तथा विज्ञान की सार्वजनिक शिक्षा में वृद्धि तथा नवीन आयामों पर अनुसंधान के पक्षधर थे। यह बात हम शिक्षा क्षेत्र से जुड़े हुए व्यक्तियों के लिये आश्चर्यजनक और आनन्ददायक है कि 1929 ई. में, जब देश में शिक्षा क्षेत्र बहुत विकसित नहीं था, तब भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम.ए. तथा एम.एस-सी. कक्षाओं तक प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति, समाजशास्त्र, दर्शन तथा मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि मानविकी के विषयोंय हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, मराठी, बंगला आदि भाषाओं तथा गणित, ज्योतिष विज्ञान, भौतिकी तथा रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जीव विज्ञान तथा भूगर्भशास्त्र जैसी विज्ञान की शाखाओं के शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम की रचना की जा चुकी थी। न केवल शिक्षण, अपितु प्रयोग तथा अन्वेषण-अनुसंधान के काम के लिए व्यवस्थित पुस्तकालय तथा प्रयोगशालाओं की व्यवस्था भी विश्वविद्यालय में थी।

सक्षम शिक्षकों की अगली पीढ़ी तैयार करने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र की व्यवस्था मालवीय जी की दूरदृष्टि की ओर संकेत करती है। इसके साथ ही विधि महाविद्यालय भी है, ताकि जो विद्यार्थी वकालत के क्षेत्र में जाना चाहते हैं, उनके लिए भी शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का आयुर्वेद कॉलेज भी वर्ष 1929 के

पहले कार्यशील हो चुका था। विद्यार्थियों के प्रयोगात्मक ज्ञान के लिए एक सौ रोगियों के ढहरने की व्यवस्था से युक्त चिकित्सालय भी था। उच्चकोटि के भारतीय आयुर्वेद के अध्ययन के साथ-साथ उस कॉलेज में आधुनिक चिकित्साविज्ञान एवं शल्यक्रिया आदि के भी अभ्यास की पर्याप्त व्यवस्था थी।

### स्त्री शिक्षा

मालवीय जी समाज के संतुलित विकास के लिए स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था को अनिवार्य मानते थे। इस दीक्षान्त भाषण में भी वे इसकी चर्चा करते हैं। 1929 ई. में, जब भारत में सामान्य भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए शिक्षा दुर्लभ थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महिला विद्यालय प्रारम्भ किया जा चुका था जिसके साथ एक सौ छात्राओं के ढहरने की व्यवस्था से युक्त अलग छात्रावास था, जिसकी प्रबन्धक तथा एफ.ए. (सीनियर सेकण्डरी) स्तर तक की छात्राओं के शिक्षण के लिए चार महिला शिक्षिकाएँ भी थीं। स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं की छात्राएँ सभी विषयों की शिक्षा पा सकती थीं। मालवीय जी केवल स्त्री शिक्षा के पक्ष में व्याख्यान नहीं देते बल्कि एक समुचित व्यवस्था खड़ी करके समाज के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करते हैं।<sup>1</sup>

### कला-कौशल तथा व्यावसायिक शिक्षा

रोजगारपरक शिक्षा, अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता देने वाली शिक्षा, कला-कौशल तथा उद्योग-धंधे की शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा, आज सब दूर शिक्षाविदों, सरकारों तथा नीति-निर्माताओं के बीच चर्चा और चिन्तन के विषय बने हुए हैं। किन्तु आज से लगभग एक शताब्दी वर्ष पूर्व महामना इस दिशा में विचार कर अभियांत्रिकी का एक महाविद्यालय प्रारम्भ कर चुके थे। विद्यार्थियों के शिक्षा पूर्ण करने के बाद स्वाभिमानपूर्ण स्वावलम्बी जीवन जीने के योग्य बनाने के लिए तो मालवीय जी व्यावसायिक शिक्षा की बात करते ही हैं किन्तु उनका यह विचार विद्यार्थियों के व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ राष्ट्र जीवन से भी जुड़ा हुआ। इस दीक्षान्त व्याख्यान में वे कहते हैं, “प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ विज्ञान, कला-कौशल तथा व्यवसाय सम्बन्धी ऐसी शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाये, जिससे देश में उद्योग-व्यवसाय तथा घरेलू धंधों की उन्नति हो।”

इससे मालवीय जी की दूरदर्शिता तथा समय के आगे

चलने की सोच स्पष्ट होती है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में यंत्र-बिजली की इंजीनियरिंग की शाखाएँ तो थीं ही, धातु-विज्ञान तथा औद्योगिक रसायन विज्ञान विभाग भी स्थापित हो चुका था जोकि तब तक विश्व के अनेक देशों की उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रारम्भ नहीं हुए थे। मालवीय जी इस बात का गौरव अनुभव करते हैं कि भारत में किसी भी अन्य विश्वविद्यालय में इन विषयों की सुविधा उपलब्ध नहीं है किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इस दिशा में पहल की है। वे इसमें छात्रों की कठोर चयन-प्रक्रिया, उच्च शैक्षिक गुणवत्ता और उच्च परिणामों को लेकर भी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। वे उल्लेख करते हैं कि व्यावहारिक विज्ञान की शिक्षा केवल पुस्तकीय न रह जाये। इसके लिए इंजीनियरिंग कॉलेज के विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष एक निश्चित अवधि के लिए रेलवे, कारखानों और खदानों में काम होते हुए देखने तथा प्रत्यक्ष कार्य करके सीखने के लिए भेजा जाता है। इसका परिणाम है कि इस इंजीनियरिंग कॉलेज से उपाधि प्राप्त कर समाज जीवन में गए विद्यार्थियों को उनकी प्रयोग-कुशलता के कारण बिजली-उत्पादन, रेलवे तथा खनन सम्बन्धी उद्योगों में सरलता से नियुक्ति मिल जाती है।

अपने लिए विचार करने की बात है कि पिछली शताब्दी का यह तीसरा दशक था। तब तक भारत में न तो देशभर में रेलवे लाइनें पहुँची थीं और न ही बिजली उत्पादन, वितरण तथा बिजली से चलने वाले उपकरणों का निर्माण करने वाले उद्योगों की बड़ी संख्या थी। परन्तु भविष्य के भारत को दृष्टि में रखते हुए मालवीय जी ने इंजीनियरिंग के इन विषयों और उनके प्रयोग कौशल को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

इसी प्रकार, औद्योगिक एवं व्यावसायिक रसायन विज्ञान की शिक्षा के विषय में मालवीय जी कहते हैं कि यह विभाग ऐसे युवाओं को तैयार कर रहा है जो रोजगार के लिए नौकरी खोजने के बजाय स्वयं का लघु-घरेलू उद्योग प्रारम्भ कर सकेगा। इससे जहाँ स्व-रोजगार को बढ़ावा मिलेगा, वही महामना के समाज-चिंतन की दूसरी दिशा को भी बल मिलेगा, अर्थात् देशी घरेलू उद्योगों तथा व्यवसायों का विकास होगा। युवा वर्ग में स्वयं के परिश्रम से जीविका उपार्जन करने का स्वभाव बनेगा, श्रम के प्रति निष्ठा बढ़ेगी, स्वाभिमान का उदय होगा।

दीक्षान्त भाषण में महामना कहते हैं, “निर्धनता और बेकारी का प्रश्न जटिल होता जा रहा है। इसका हल करना नितान्त आवश्यक है। मेरी समझ में यदि नवयुवकों को व्यावसायिक तथा व्यावहारिक विज्ञान की शिक्षा दी जाये तो यह समस्या बहुत अंशों में हल हो सकेगी। वे बड़ी तनखाह वाली सरकारी नौकरियों की मृगतृष्णा अथवा पहले से ही ठसाठस भरे हुए पेशों की ओर न झुकेँ।” रोजगारपरक शिक्षा का जो अर्थ आज ‘सरकारी नौकरी’ को माना जाने लगा है, उसका स्वावलम्बन पूर्ण आयाम मालवीय जी सुझाते हैं।

इस बात को मालवीय जी भारत की अर्थव्यवस्था के स्वावलम्बन से भी जोड़ते हैं। वे आगे कहते हैं, “इस प्रकार हम धीरे-धीरे विदेशी वस्तुओं के आयात को कुछ अंशों में कम कर सकेंगे तथा देश से बाहर जाने वाले अपने कच्चे माल को भी रोक सकेंगे। इस क्षेत्र में उपयुक्त शिक्षा के द्वारा सरकार से राष्ट्रीय व्यवसाय की वृद्धि के लिए थोड़ी सी सहायता प्राप्त करके दस हजार भारतीयों को प्रतिवर्ष रोजगार दिया जा सकता है।” यह मालवीय जी का भारत की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर तथा स्वतःपूर्ण बनाने का स्वप्न है। इसके लिए वे सरकार और विश्वविद्यालयों के बीच सहयोग बढ़ाने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।<sup>9</sup>

### चरित्र निर्माण की शिक्षा

महामना कहते हैं, “विश्वविद्यालय का चौथा ध्येय धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण है। हम धर्म को चरित्र निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार मानते हैं। हम देशभक्ति को सर्वोत्तम शक्ति मानते हैं, जो मनुष्य को उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा करने की ओर प्रवृत्त करती है।” आज जहाँ समाज जीवन में धर्म की व्याख्या को लेकर विवाद हों, एक धार्मिक आस्था को अन्य आस्था की तुलना में श्रेष्ठ या कमतर बताया जाता हो, महामना के ये उदात्त विचार शिक्षा के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त हैं। मालवीय जी चरित्र निर्माण की शिक्षा के लिए धार्मिक-पौराणिक आख्यानों, नीति विषयक कथाओं, पूर्वज महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को छात्रों को सुनाया जाना आवश्यक मानते हैं ताकि उनमें अपने राष्ट्रीय महापुरुषों तथा जीवन-मूल्यां के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो सके।

### सुसंगठित जीवन का आधार : शारीरिक व्यायाम

मालवीय जी नैतिकता और चरित्र निर्माण के लिए

केवल धार्मिक शिक्षा से संतोष नहीं करते। वे शारीरिक व्यायाम, खेलकूद, साहित्य-संस्कृति से सम्बन्धित विषयों तथा कार्यक्रमों को युवाओं के सम्पूर्ण चरित्र गठन के लिए आवश्यक मानते हैं। वे बताते हैं कि उस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययनरत 2600 विद्यार्थियों में से 1600 विद्यार्थी छात्रावासों में रहते हैं। शिक्षकों के आवास भी छात्रावास में ही हैं। व्यवस्था इस प्रकार से की गई है कि शिक्षक और विद्यार्थी परस्पर सम्पर्क में रहकर उन्नति के प्रयास करें। सहजीवन के माध्यम से जीवन की शिक्षा का मालवीय जी का यह अभिनव प्रयोग है।

वे उपस्थित जनसमुदाय को इसकी उपयोगिता बताते हैं, “छात्रों ने स्वयं अपनी सामाजिक तथा साहित्यिक सभाएँ, नाटक-मण्डलियों तथा खेल-समितियों और विश्वविद्यालय की राज्य-परिषद् की स्थापना की है। इस पार्लियामेंट में उन्हें सभी प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर बहस करने का पूर्ण अधिकार है। वे अनेक प्रकार के खेलों का आयोजन करते हैं, अपने कप्तानों को चुनते हैं और अपना हिसाब-किताब स्वयं रखते हैं। कुछ विद्यार्थी विश्वविद्यालय की सैनिक शिक्षा दल के सदस्य हैं जहाँ उन्हें उत्तम रीति की सैनिक शिक्षा दी जाती है। वातावरण शुद्ध और समृद्धिकारी है। गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रत्येक शिक्षार्थी स्वयं अपना गुरु है तथा अपने सहपाठियों को भी शिक्षा देता है। आत्मगौरव का भाव इस प्रकार विद्यार्थियों में बढ़ रहा है जो भविष्य के लिए अच्छा शकुन है।”

मालवीय जी का यह विचार स्पष्ट करता है कि सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए केवल पुस्तकीय शिक्षा का पाठ्यक्रम ही पर्याप्त नहीं बल्कि जीवन के विविध पक्षों का संतुलित संयोजन ही युवाओं को जीवन की दिशा देता है। इसीलिए वे औद्योगिक-व्यावसायिक शिक्षा, चरित्र निर्माण की शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, सैनिक शिक्षा तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों, सभी को शिक्षा का अपरिहार्य अंग मानते हैं और इन सभी के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने समुचित व्यवस्था की हुई है।<sup>9</sup>

### पं. मदन मोहन जी का अलीगढ़ से था गहरा सम्बन्ध

भारत रत्न पंडित मदन मोहन मालवीय का अलीगढ़ से भी काफी लगाव था। वह दो बार अलीगढ़ गये थे। आजादी के बाद उन्हीं के नाम से जीटी रोड स्थित पुस्तकालय का नाम बदलकर मालवीय पुस्तकालय

रखा गया। अलीगढ़ के बाबू तोताराम कोर्ट-कचहरी में हिंदी भाषा के प्रचलन का आंदोलन किए हुए थे। उनके इस आंदोलन से मालवीयजी भी बहुत प्रभावित थे। इसलिए वह अलीगढ़ दो बार आए। बताया जाता है कि वह 1931 व 1936 में अलीगढ़ आए थे। हालांकि, मालवीय पुस्तकालय का नामकरण आजादी के बाद हुआ है। यह पुस्तकालय 125 साल पुराना है। एक अंग्रेजी के नाम से इस पुस्तकालय का नाम रखा गया था। रेलवे रोड निवासी 83 वर्षीय महेश कुमार माथुर बताते हैं कि उस समय देश अंग्रेजों की गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। इसलिए पुस्तकालय का नाम बदलने की किसी के जेहन में बात नहीं आई। 1947 में देश आजाद हुआ। फिर, लोगों ने खुले में जीने का पहली बार एहसास किया। भय और आशंकाएं दूरी थीं। महेश कुमार बताते हैं कि कुछ लोगों ने पुस्तकालय का नाम बदलकर मदन मोहन मालवीय के नाम से रखने का निर्णय लिया। उसमें से कुछ लोग पुस्तकालय की कमेटी में भी थे। चूंकि शिक्षा के क्षेत्र में मदन मोहन मालवीय का बड़ा योगदान था। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना कर उन्होंने आधुनिक शिक्षा की नींव रखी थी, इसलिए सभी ने सहमति जता दी और मालवीय पुस्तकालय के रूप में यह प्रसिद्ध हो गया। मालवीयजी की हस्ताक्षर की तस्वीर भी पुस्तकालय में मौजूद है।<sup>10</sup>

**निष्कर्षतः** पं. मदन मालवीय जी में मानवता कूट-कूटकर भरी हुई थी। पं. मदन मोहन मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा एक ऐसा प्रकाश है, जो गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा के अंधकार को दूर करता है और इसी ध्येय से उन्होंने राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य से काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की, जहां विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ उनका चरित्र निर्माण भी किया जा सके, जिससे वे हमेशा अपनी मातृभूमि से प्रेम करें और जनकल्याण में

भागीदार बनें। उनके हृदय में देश और देशवासियों के प्रति अपार स्नेह था। उन्होंने शिक्षा, धर्म और राजनीति सभी क्षेत्रों में अग्रणी योगदान दिया।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दर, एस. एल., सोमस्कन्द, एस., हिस्ट्री ऑफ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966, पृ. 61
2. सिंह, देवेन्द्र प्रताप, शुक्ल, श्यामसुन्दर, महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय, विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, संस्कृत भवन, कुरुक्षेत्र, 2011, पृ. 154
3. शिक्षा पर महामना की सोच, हिन्दुस्तान, 23 दिसम्बर, 2011
4. मदन मोहन मालवीय ने बीएचयू में रखी थी भारत की आधुनिक शिक्षा की बुनियाद, दैनिक भास्कर, 25 दिसम्बर, 2017
5. 21वीं सदी में और भी प्रासंगिक हैं महामना, न्यूज हरपल, 25 दिसम्बर, 2017
6. कुमार, आनन्द आलेख "महामना मालवीय आज भी प्रेरक", प्रभात खबर, 25 दिसम्बर, 2020
7. कौशिक, अशोक, मदन मोहन मालवीय, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2008, पृ. 32
8. पंवार, मदनलाल, मदन मोहन मालवीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ. भूमिका से साभार
9. दर, एस. एल., सोमस्कन्द, एस., हिस्ट्री ऑफ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966, पृ. 24
10. महामना मालवीय का अलीगढ़ से था गहरा नाता, हिंदी भाषा आंदोलन से थे प्रभावित, दैनिक जागरण, दैनिक जागरण, 25 दिसम्बर, 2020

# ग्रामीण कुरीतियों को दूर करने में समाचार पत्रों की भूमिका



shodhshree@gmail.com

डॉ. सन्तोष कुमार दवे

सीनियर रिसर्च फ़ैलो, आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली

## शोध सारांश

समाचार-पत्रों ने प्रारम्भ से ही सती प्रथा के विरोध में अपना स्वर मुखर किया है। पत्रों के माध्यम से ही प्रसिद्ध समाज सेवी राजाराम मोहनराय के रूप में कानून के नीचे ला खडा किया। समाचार पत्रों में सती-प्रथा के विरोध में छपने वाली खबरों के साथ ही लेखकों द्वारा बार-बार यह मुद्दा उठाया जाना कि सती-प्रथा एक निर्बल असहाय नारी पर अत्याचार की सीमा का अंत है, जनता को सती प्रथा के विरोध में खडा कर दिया और देखते ही देखते इस प्रथा का अंत संचार के इस माध्यम की देख-रेख में होता गया। इस तरह से झाड फूंक, टोना-टोटका, बाल विवाह, मृत्यु भोज, विधवा विवाह, महिला शिक्षा, भोपे, भूत-प्रेत आदि ऐसे कई कारण हैं जिन पर ध्यान आकृष्ट कर समाचार पत्रों ने जन सामान्य को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

**संकेताक्षर :** सती-प्रथा, अत्याचार, निर्बल, टोना-टोटका, झाड-फूंक, कोडी व पैसा, समाचार पत्र, ग्रामीण संवाददाता, समस्या एवं समाधान, संचार के माध्यम।

**सा**माजिक पत्रकारिता में ग्रामीण पत्रकार के लिए गांवों में अंधविश्वास के चलते कई कार्यक्रम ऐसे होते हैं जिनके परिणाम शुभ नहीं होते हैं ऐसे में यदि एक ग्रामीण संवाददाता गांव में मनायें जाने वाले उस कार्यक्रम, पर्व या उत्सव का विरोध करे तो संवाददाता भविष्य में अकेला पड जाता है तथा ग्रामीण फिर उसकी मदद नहीं करते हैं। ग्रामीण संवाददाता ने गांवों में शिक्षा के बिना पनपे अंधविश्वासों को पत्रों के माध्यम से शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर दूर करने का जो प्रयास किया उसके शुभ संकेत आज देखने को मिले हैं।

बहुत सारी सामाजिक मान्यताओं को अंधविश्वास की बंद गली से निकालकर वैज्ञानिक विवेक के खुले-उजले चौराहे तक लाने में भी समाचार पत्रों ने क्रांतिकारी भूमिका निभाई है।

ग्रामीण परिवेश में यूं तो सैंकड़ों तरह के अंध विश्वास ग्रामीणों के दिलों में घर कर बैठे हैं लेकिन मुख्य रूप से झाडफूंक, टोना-टोटका, बाल-विवाह, मृत्यु भोज, सतीप्रथा, विधवा विवाह का विरोध, महिला शिक्षा का विरोध, भोपे, भूत-प्रेत, आदि ऐसे कई कारण हैं जिसके चलते ग्रामीण कई मर्तबा घोर आपत्ति में फंस जाते हैं। गांवों में पनपती सबसे बड़ी समस्या जो आज भी विद्यमान है वो है झाडफूंक, टोने तथा टोटके। जिसके कारण अशिक्षित किसी बीमारी का ईलाज करवाने की अपेक्षा थान या किसी भोपो के चुंगल में फंसकर बीमारी को बडा करते रहते हैं क्योंकि भोपे उन्हें ऊपर की हवा और तरह-तरह की अंधविश्वास परक बाते कर लूटने के सिवाय कुछ नहीं करते।

कई बार तो ज्यादा गम्भीर बीमारी होने पर व्यक्ति को मरना पडता है क्योंकि झाडफूंक या टोने-टोटके आदि के कारण बीमार व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और तडफ-तडफ कर मरता है। ये सब करने वाले लोग इनका कारण भूत लगना या फिर प्रेत बाधा करना कारण बताते हैं और उसके निवारण के लिए धन की मांग कर बड़ी राशि ऐंठते हैं राशि नहीं होने पर चाहे उन्हें मकान गिरवी रखना पडे उसकी चिन्ता नहीं। इसी प्रकार बालको में नजर लगने का दोष भी अंधविश्वास की श्रेणी में आता है बालको के गले में आज भी गांवों में ताबीज इसलिए होते हैं ताकि उन्हें नजर न लगे। बालको को दस्त अधिक लगने पर किसी स्वास्थ्य क्रेन्द्र पर जाने की बजाय पानी में “कौडी व पैसा”

डालना भी अंधविश्वास है। किसी बीमारी से या ईलाज के अभाव व झाड़फूँक के कारण बालक के कोई शारीरिक तकलीफ हो जाए या कुपोषण के कारण अंग भंग जैसी विकृति हो जाये तो आज भी गांवों में यह बात होती है कि किसी महिला के बच्चा हो नहीं रहा था तो उसने मेरे बच्चों के कपडे या बाल काट दिये जिससे मेरा बच्चा मर गया अर्थात् किसी बालक के बाल या कपडे काटने से किसी बालक-हीन महिला के भी बालक हो जाता है यह कैसे संभव है यह यदि अंधविश्वास की हद-पार नहीं तो क्या है? जिसे सामाजिक पत्रकारिता करने वाला पत्रकार पत्रों के माध्यम से ऐसे भोपो के काले कारनामे उजागर कर दूर करने का प्रयास करता है जिसके सुखद परिणाम सामने आने लगे हैं।

हम देखते हैं कि सामाजिक परिवर्तन अगर एक तरफ बहुत दुष्कर और धीमी प्रक्रिया है, तो दूसरी ओर वह उस स्थिति में सहज भी हो सकता है, जब संचार के माध्यमों को उपयोग इतनी सुझबुझ से किया जाए कि वह वर्ग विशेष के सामान्य आचार-विचार के अनुरूप जान पड़े। इसमें माध्यम से धीरे-धीरे लोगों की मानसिकता एकदम बदली जा सकती है।<sup>1</sup>

गांवों में बाल विवाह दूसरी बड़ी समस्या है जिसके कारण समाज में गंभीर परिणाम सामने आये हैं। ग्रामीण बालविवाह को जायज ठहराते हैं और वे अपना तर्क देते हैं कि प्रथम मासिक धर्म से पूर्व बालिका का विवाह हो जानें से धर्म होता है और इसीलिए वो धर्म पत्नी कहलाती हैं जबकी प्रथम मासिक धर्म तो वैज्ञानिक मत है कि बालिका में 13 वर्ष की उम्र में हो जाता है तो 13 वर्ष की उम्र से पूर्व विवाह होने से बालिका जब मां बनती है तो उसमें तथा होने वाले बालक में कितने शारीरिक दोष होंगे ?

समाचार-पत्रों ने बाल विवाह के विरुद्ध काफी संघर्ष किया जिसके परिणाम स्वरूप शारदा एक्ट बना और बाल विवाह को कानूनी रूप से अपराध घोषित किया गया। “यदि हर विलास शारदा” ने यह कदम नहीं उठाया होता तो ठेठ देहात में आज भी अक्षय तृतीया के अबूझ सावों में हजारों स्कूल जाने की उम्र में बालिकाएं माताएं बन गई होती। समाचार पत्रों की ओर से किए गए इस प्रयास के कारण ही जो बालविवाह पहले आम चौराहो पर आयोजित किए जाते थे वही अब चोरी-छुपे होने लगे और लोग बाल विवाह में भाग लेने से कतराने लगे।<sup>2</sup>

समाचार पत्रों में वरिष्ठ लेखकों, बुद्धिजीवियों के विचार छपने लगे जिन्हे पढकर और वास्तविक जीवन में जनता को हो रही परेशानियों को समझाकर जनता बाल विवाह से दूर भागने लगी, सरकार द्वारा भी समय-समय पर बाल विवाह के विरुद्ध समाचार पत्रों में कानूनी चेतावनी तथा उसके द्वारा होने वाले दुष्परिणाम से अवगत कराया जाता रहता है तथा अब देश की साक्षरता प्रतिशत बढ़ने पर जनता में भी सोचने-समझने की शक्ति आ गई है अतः वह समाचार पत्रों की सहायता से क्या अच्छा है?, क्या बुरा है? यह समझने लगी है जिससे स्वतः ही यह सामाजिक बुराई अपने अन्त के निकट पहुँच चुकी है, जिसका श्रेय सम्पूर्ण रूप से ग्रामीण पत्रकारिता को जाता है।

मृत्यु भोज भी गांवों में एक बड़ी समस्या है। ग्रामीण बताते हैं कि मृत व्यक्ति के पीछे जितना खर्च किया जाता है वो सब उसकी आत्मा को मिलता है। ऐसे में इस आर्थिक युग में आर्थिक तंगी होने पर भी ग्रामीण लाखों रूपयें कर्ज कर, कहते हैं कि जिन्दा जीव न खाये उतना मरने पर खर्च कर दिया जाता है। जिससे ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी बढ रही है लोग बात रखने के लिए अपने पुस्तैनी खेत तक गिरवी रख देते हैं। समाचार पत्रों ने इस दिशा में भी व्यापक जागृति लाई और मात्र मृत्यु भोज प्रायः बन्द नहीं अपितु सूक्ष्म हो गया है और मोसर प्रथा का रूप ले चुकी यह बुराई भी जड से मिटने के करीब है जिसका श्रेय भी समाचार पत्रों को जाता है। संघर्ष करने से पहले इस मत को दृढतापूर्वक समझना जरूरी है कि केवल परम्पराओं से लडने वालों को ही समाज से टक्कर लेनी पडती है, ऐसी बात नहीं है। समाज को स्वस्थ बनाने के लिए उसमें जागृति लानी होगी। किसी भी अंधानुकरण के विरुद्ध विद्रोह आवश्यक है।<sup>3</sup>

सतीप्रथा भी समाज की एक बड़ी बुराई थी जो आज प्रायः समाप्त है क्योंकि सती रेग्यूलेशन एक्ट 1829<sup>4</sup> तो पूर्व में बन गया था लेकिन राजस्थान में दिवराला का सती काण्ड एक बार उसे फिर ताजा कर गया तब से अब तक ऐसा कदम नहीं उठा है।

रामायण या महाभारत काण्ड में भी सती प्रथा का वर्णन नहीं है सामान्यतया ‘सती’ शब्द पवित्रता के साथ सर्वदा उद्धृत होता रहा है। सती का अर्थ चिरकाल से सत्य पर आधारित चरित्रवान व पति के प्रति पूर्ण आस्था व पति धर्म का पालन करने वाली महिला से रहा है। साधारणतया सती का अर्थ केवल सत्य है,

पतिव्रता धर्म से हैं, चरित्र से हैं, जो चरित्र उज्ज्वल धवल होता है वहीं दूसरे प्रसंग में ऐसे शब्द का अर्थ पति के साथ पति की मृत्यु पर अग्नि प्रवेश कर दाह करने से भी लिया जाता रहा है। यही कारण है कि 'सती' शब्द का प्रयोग जहां कहीं भी लिया जाता है वहाँ पर आज भी इस राष्ट्र में साधारणतया विधवा दाह के प्रसंग को छोड़ दिया जाय तो समाज में हर व्यक्ति उसके प्रति आदर व श्रद्धा के साथ नतमस्तक हो जाता है। साधारणतया "सती" श्रद्धात्मक है परन्तु अध्यादेश में "विधवा-दहन" शब्द का उपयोग न कर उसे "सती" की व्याख्या में लेना दुर्भाग्यपूर्ण है।

राजपूत राजाओं के समय युद्ध के समय वीर गति प्राप्त होने पर राजपूत महिलाएँ सामूहिक रूप से जौहर कर लिया करती थी जिससे दुश्मन उनके साथ अमानवीय व्यवहार न करे। भविष्य में उनकी इज्जत न लूटे व उन्हें दासी बन कर न रहना पड़े। लेकिन कतिपय अन्य कारणों के चलते जैसे सम्प्रति विवाह, राज्य में हिंसा आदि अन्य मुद्दों के चलते पति के मर जाने पर उसके सगे-सम्बन्धी उसकी पत्नी को धर्म का वास्ता देकर पति की चिता के साथ दहन करने को मजबूर कर देते थे। इतिहास में कहीं भी किसी भी धार्मिक ग्रंथ में प्रसिद्ध राजाओं की पत्नियों में सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता है तथापि कहीं-कहीं पर जौहर का उल्लेख मिलता है जो कि अपनी इज्जत, आबरू को बचाने के लिए किया जाता था, न कि अपने पति की मृत्यु पर। तथापि सती प्रथा अनवरत रूप से जारी है।

प्रसिद्ध समाज सेवी राजाराम मोहनराय की भाभी को भी इस प्रथा का शिकार होना पड़ा। इसके पश्चात् उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और सर्वप्रथम कलकत्ता में इसके खिलाफ "बंगदूत" के माध्यम से लोगों में जागृति जगाने का प्रयास किया गया, जिसके फलस्वरूप बंगाल सती रेग्यूलेशन एक्ट 1829 जिसमें सती प्रथा को जलाने या जलने को प्रतिबंधित ही नहीं किया गया बल्कि उसके लिए सजा का प्रावधान भी किया गया।

समय के चलते तथा संचार के साधनों के विकास के साथ ही यह प्रथा आज लगभग खत्म हो गई है लेकिन फिर भी यदा-कदा एक आधी घटना हो जाने से यह पुनः समाज में चर्चा का विषय बन जाती है लेकिन संचार के साधनों के बढ़ते जाल से यह प्रथा अपने अस्तित्व को ढूँढने के लिए विवश हो गई है।

समाचार-पत्रों ने प्रारम्भ से ही सती प्रथा के विरोध में अपना स्वर मुखर किया है, पत्रों के माध्यम से ही प्रसिद्ध समाज सेवी राजाराम मोहनराय के रूप में कानून के नीचे ला खड़ा किया। समाचार पत्रों में सती-प्रथा के विरोध में छपने वाली खबरों के साथ ही लेखकों द्वारा बार-बार यह मुद्दा उठाया जाना कि सती-प्रथा एक निर्बल असहाय नारी पर अत्याचार की सीमा का अंत है, जनता को सती प्रथा के विरोध में खड़ा कर दिया और देखते ही देखते इस प्रथा का अंत संचार के इस माध्यम की देख-रेख में होता गया।

विधवा विवाह या महिला शिक्षा के प्रति भी ग्रामीणों में घोर अंधविश्वास है। ग्रामीणों की शंका रहती है कि बालिका पढ़ गई तो वह अपने फैसले खुद करेगी तथा महिला शिक्षित होने पर वह ग्रामीण तौर-तरीकों को मानेगी नहीं, जैसे घूँघट प्रथा, लोक लाज आदि कारण ऐसे हैं जिनसे ग्रामीण महिला शिक्षा से कतराती है। वही शिक्षा के लिए बाहर भेजने पर भी उनमें चरित्र को लेकर डर सा प्रायः रहता है। विधवा विवाह भी नहीं होना एक अभिशाप है और उसका कारण भी परोक्ष रूप से शिक्षा ही है क्योंकि शिक्षा के अभाव में ग्रामीणों का यह जवाब होता है कि "विधवा विवाह से क्या मतलब जब एक ही सहारा नहीं निभा सका तो दूसरे से क्या भरोसा? लेकिन इन दृष्टिकोणों को आज समाचार पत्रों ने काफी हद तक दूर कर लिया है। ग्रामीणों ने महिला शिक्षा व बालिका शिक्षा की तरफ ध्यान देना शुरू किया तब से अब तक सैकड़ों की संख्या में नारी उच्चाधिकारी व हर क्षेत्र में नारियों ने अपना नाम लिखवा दिया है वहीं कुछ प्रतिशत छोड़े तो अधिकांश जातियों में विधवा विवाह भी आज बहुतायत होते हैं। एक और दहेज रूपी दानव कई बालाओं को समय से पूर्व ही लील रहा था। ऐसे में समाचार पत्रों ने अपना दायित्व समझकर इस दिशा में व्यापक स्तर पर कार्य किया।

दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए सबसे लम्बी लड़ाई लड़ने वाला यह एक अकेला माध्यम है, जिसने अपने उद्भव के साथ ही समाज में फैली इस सामाजिक कुरीति के विरोध में बिगुल बजा दिया। समाचार पत्रों के माध्यम से अनेक लेखकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, राजनेताओं बुद्धिजीवियों ने दहेज प्रथा के विरुद्ध अपने विचार इन्हीं समाचार पत्रों के माध्यम से दिए जिससे लोगों में आर्य-समाज में विवाह करने तथा कानूनी रूप से न्यायालय में सादगी से विवाह करने

का प्रचलन बढ़ा और एक हद तक दहेज के लिए सताने वाले लोगों के खिलाफ कानून किस तरह कार्यवाही करता है इसका भी वर्णन नित्य-प्रतिदिन समाचार पत्रों में देखने को मिल जाता है, तो कई हत्या करके पश्चाताप करने वाले दहेज लोभियों के संस्करण भी लोगों को नसीहत देते नजर आते हैं। इस तरह समाचार-पत्र दहेज प्रथा व उसके समर्थन में खड़े लोगों के लिए एक काला नाग बनकर खड़े हैं।

विकास के लिए संचार आवश्यक है, पर वह अपने आप में पर्याप्त नहीं है। उसकी अग्रगामी और पूरक भूमिकाएं विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती है और योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायक होती है।<sup>5</sup>

### **सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. जनसंचार: राधेश्याम शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, 1993, पेज नम्बर 434।
2. जनसंचार: राधेश्याम शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, 1993, पेज नम्बर 436।
3. परम्परा और परिवर्तन, डॉ. हरिशंकर त्रिवेदी, अखिल प्रकाशन, 1999, पेज नम्बर-85।
4. सती रेग्यूलेशन एक्ट 1829, गजट नोटिफिकेशन एमेडमेंट, 1987, नम्बर-3, 1988।
5. भारतीय जन-जीवन, चिंतन के दर्पण में, खंड-एक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यानमाला के अंतर्गत दिए गए व्याख्यानों का संग्रह, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1993, पेज नम्बर 120।
6. अन्य स्रोत-ग्रामीण क्षेत्र के बुजुर्गों तथा सामाजिक कृतीतियों के विरुद्ध मुहिम से जुड़े स्वयंसेवी संगठनों के पदाधिकारियों तथा महिला एवं बाल विकास विभाग के अधिकारियों से चर्चा का आधार।

# जनसंख्या परिदृश्य : पाली नगर के विशेष सन्दर्भ में



shodhshree@gmail.com

डॉ. नरेश कुमार ओझा

सहायक आचार्य, श्री आई माता महाविद्यालय, पाली

## शोध सारांश

भौगोलिक अध्ययन में किसी क्षेत्र के भौतिक स्वरूप एवं जनसंख्या के अर्न्तसम्बन्धों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में जनसंख्या केन्द्र बिन्दु होता है। किसी क्षेत्र में भौतिक तत्व एवं मानव संसाधन एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। जनसंख्या के अभाव में अन्य भौगोलिक तत्व का कोई महत्त्व नहीं होता है। मानव ने अपनी क्रियाशीलता एवं बौद्धिक क्षमता से विश्व में अनेक महत्त्वपूर्ण एवं आश्चर्यजनक कार्य सम्पादित किये हैं, जिनमें नगरीय क्षेत्रों की रचना एक तम विकसित उपलब्धि है। मानव के विविध कार्य कलापों द्वारा नगरों के स्वरूप, आकार एवं प्रकारों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अतः किसी नगर के अध्ययन में उसकी जनसंख्या के स्वरूप, वृद्धि, घनत्व, लिंगानुपात, व्यावसायिक संरचना, सामाजिक, सांस्कृतिक स्वरूप आदि तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक है। इनके बिना नगर का विकास एवं निर्माण की कल्पना करना व्यर्थ है। प्रस्तुत शोध पत्र का यही मूल उद्देश्य है।

**संकेताक्षर :** भौगोलिक, जनसंख्या, स्वरूप, वृद्धि, घनत्व, लिंगानुपात, प्रौद्योगिकी, संरचना, बौद्धिक, ओद्योगिक, वितरण, जनगणना, विषमता, अनुसंधान।

**वि**श्व में मानव ने ग्राम एवं नगरों को अपना निवास स्थान एवं कार्य क्षेत्र बनाया है, इनमें से नगरों को उसने अपना प्रमुख कार्य क्षेत्र बनाया है। मानव के विविध कार्य कलापों द्वारा नगरों के स्वरूप, आकार एवं प्रकारों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। वर्तमान में मानव पृथ्वी तल पर अपूर्ण वेग से परिवर्तन करने वाला एक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली भौगोलिक कारक है। मानव की वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक उपलब्धियां भौचक्का कर देने वाली है तथा अब कुछ भी उसकी पहुँच से बाहर नहीं है<sup>1</sup>। नगरों के विकास में भी मानव का ही महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः किसी नगर के अध्ययन में उसकी जनसंख्या के स्वरूप, वृद्धि, घनत्व, लिंगानुपात, व्यावसायिक संरचना, सामाजिक, सांस्कृतिक स्वरूप आदि तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक है। इनके बिना नगर का विकास एवं निर्माण की कल्पना करना व्यर्थ है।

## 2.1 जनसंख्या

वर्ष 2001 में पाली जिले की कुल जनसंख्या 1820251 थी, जिनमें से 1429364 व्यक्ति ग्रामीण तथा 390887 व्यक्ति शहरी थे। इस जिले की शहरी जनसंख्या का अधिकतम भाग 48.40 प्रतिशत पाली नगर में तथा न्यूनतम 2.70 प्रतिशत भाग मारवाड़ जंक्शन में निवास करता है।

भारत की जनगणना 2001 के अनुसार पाली नगर की कुल जनसंख्या 187641 है। यहां की जनसंख्या जिले की कुल जनसंख्या का 10.30 प्रतिशत है। इस नगर में पुरुषों की संख्या 99267 एवं स्त्रियों की संख्या 88374 है<sup>2</sup>। नगर की यह जनसंख्या यहां के कुल 45 वार्डों में निवास करती है। नगर की इस जनसंख्या का 24.91 प्रतिशत भाग आन्तरिक 15 वार्डों में तथा 75.09 प्रतिशत भाग बाह्य 30 वार्डों में निवास करती है। पाली जिले के कुल 11 नगरों में से सर्वाधिक जनसंख्या पाली नगर में ही निवास करती है।

## 2.1(1) वितरण

नगर में जनसंख्या का वितरण असमान हैं, जोधपुर-मारवाड़ जंक्शन रेल्वे मार्ग नगर के मध्य में से होकर गुजरता है। इस रेल्वे मार्ग के उत्तर में 20.60 प्रतिशत जनसंख्या एवं दक्षिण में 79.40 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती हैं। पाली नगर में सर्वाधिक जनसंख्या वार्ड संख्या 15 में (9209) निवास करती हैं, जो नगर की कुल जनसंख्या का 4.90 प्रतिशत है। सबसे कम जनसंख्या वार्ड संख्या 28 में (2604) निवास करती है, जो नगर की कुल जनसंख्या का 1.38 प्रतिशत है। नगर में सर्वाधिक जनसंख्या का क्षेत्र वार्ड संख्या 8,9,15,17,32,39 है, जहां पर 6000 से अधिक जनसंख्या निवास करती हैं। ये क्षेत्र महाराजा श्री उम्मेद मिल क्षेत्र, मण्डिया रोड़, औद्योगिक क्षेत्र, बांगड़ कॉलेज क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र सरदार समंद रोड़ वाले है। मध्यम जनसंख्या वाले क्षेत्र वार्ड संख्या 1, 2, 3, 4, 6, 7, 11, 13, 14, 16, 18, 19, 20, 22, 23, 24, 25, 29, 31, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 40, 41, 42, 43, 44, 45 है। इन वार्डों में 3000 से 6000 तक जनसंख्या निवास करती हैं ये वार्ड नगर के मध्य में मण्डिया, मण्डली खुर्द, सुभाष नगर, रेल्वे स्टेशन के पास आदि स्थानों में स्थित है। कम जनसंख्या वाले क्षेत्र वार्ड संख्या 5, 10, 12, 21, 26, 27, 28, 30 है। इन वार्डों में 3000 से कम जनसंख्या निवास करती है।

नगर की जनसंख्या का असमान वितरण पर यहां की धरातलीय विषमता, औद्योगिकरण, प्रशासनिक केन्द्र, परिवहन मार्ग आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है, नगर की घनी आबादी वाले क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्रों, श्री उम्मेद मिल एवं बांगड़ कॉलेज क्षेत्र के आस-पास स्थित है, नगर के मध्य में लोडिया एवं बड़ा तालाब स्थित है। इन तालाबों के पश्चिम में तथा बाण्डी नदी के दाहिने किनारे के निकट घनी आबादी निवास करती है। रेल्वे लाइन के निकट, नगर के मध्यवर्ती भाग, लेबर कॉलोनी आदि स्थानों में जनसंख्या का वितरण मध्यम हैं। नगर के दक्षिण में बाण्डी नदी की धाराएँ, लोडिया तालाब के पूर्वी भाग एवं नगर के बाहरी क्षेत्र में जनसंख्या का वितरण कम हैं।

## 2.1(2) घनत्व

किसी क्षेत्र की जनसंख्या एवं क्षेत्रफल के आनुपातिक सम्बन्ध को जनसंख्या घनत्व कहते हैं। किसी क्षेत्र के

अध्ययन में जनसंख्या घनत्व संकल्पना की सरलता के कारण इसका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। इसमें जनसंख्या का आकार एवं भूमि क्षेत्रफल का अनुपात ज्ञात किया जाता है। इसका लक्ष्य किसी क्षेत्र के संसाधनों पर जनसंख्या का दबाव मालुम करना होता है<sup>3</sup>।

वर्ष 2001 के अनुसार पाली नगर का औसत घनत्व 1180 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। यह घनत्व इस नगर के वर्ष 1991 के औसत घनत्व 1630 से कम हैं, क्योंकि वर्ष 1993 में पुनायता, मण्डली खुर्द, मानपुरा, मण्डिया गांवों के क्षेत्रों को पाली नगर परिषद् में सम्मिलित कर लिया गया था। पाली जिले के नगरीय घनत्व 31.55 से यह घनत्व अधिक हैं। राजस्थान के अन्य नगरों जयपुर (3514), अजमेर (2618), उदयपुर (4976) एवं कोटा (2705) की तुलना में यह घनत्व कम है। पाली जिले के जैतारण (533), मारवाड़ जंक्शन (763), सादड़ी (285), तखतगढ़ (659) आदि नगरों से यह घनत्व अधिक है। इसका कारण पाली नगर का जिला मुख्यालय होना, औद्योगिक विकास, जन सुविधाओं की उपलब्धता आदि है। पाली नगर का यह घनत्व सोजत (1803), सुमेरपुर (3885), रानी(1549), बाली (2275) नगरों से कम है।

जनसंख्या घनत्व प्रतिरूप का गहन अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है, कि नगर के घनत्व में विषमता पाई जाती हैं। इसका कारण धरातलीय स्वरूप, औद्योगिक एवं रोजगार केन्द्रों की स्थिति, परिवहन सुविधा, जल एवं चिकित्सा की सुविधाओं की भिन्नता आदि हैं। नगर में सर्वाधिक घनत्व वार्ड संख्या 25 (49637) में तथा सबसे कम घनत्व वार्ड संख्या 16 (202) में है। जनगणना प्रतिवेदनों के अनुसार 1981 में पाली शहर की जनसंख्या का घनत्व 7071 था, वह घटकर 1991 में 1630 तथा 2001 में 1180 हो गया है। पाली नगर में 1981-2001 की अवधि में जनसंख्या घनत्व में ह्रास का कारण समय-समय पर नगरपालिका के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी रही है। इस अवधि में जनसंख्या घनत्व वृद्धि दर पुराने क्षेत्र की और घटती रहती है। इस नगर के पुराने क्षेत्र के 2.38 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 19642 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. में निवास करते हैं, जबकि नगर के बाह्य 156.62 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 900 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. में निवास करते हैं। नगर के कुछ वार्डों का घनत्व 45600 से भी

अधिक हैं जो नगर के औसत घनत्व से 38 गुणा अधिक है। नगर में सर्वाधिक औसत घनत्व इसके केन्द्रीय वार्डों में पाया जाता है। नगर के केन्द्रीय भाग

से बाहर की ओर स्थित वार्डों में औसत घनत्व में कमी आती रहती है (तालिका 2.1)।

**तालिका 2.1**  
**पाली नगर की वार्डों के अनुसार जनसंख्या वितरण एवं घनत्व 2001**

वार्डों की संख्या	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	कुल जनसंख्या	वर्षिक जनसंख्या का प्रतिशत
पाली (न.प.)	159	187641	1180
बाह्य वार्ड			
1	3.30	4806	1456
2	0.77	3494	4538
3.	0.26	3571	13735
4.	0.90	3282	3647
8	9.60	7398	771
9	7.62	7099	932
14	0.42	3650	8690
15	4.74	9209	1943
16	18.76	3791	202
17	22.61	7101	314
18	15.89	4854	305
19	0.41	4158	10141
20	0.20	3254	16270
23	0.22	3502	15918
30	0.56	2658	4746
31	1.09	5557	5098
32	2.63	7162	2723
33	0.23	3309	14387
34	1.67	3343	2002
35	6.03	4251	705
36	2.05	2710	1810
37	2.62	4895	1868
38	21.63	4962	229
39	5.13	9067	1767
40	0.70	3438	4911
41	10.60	4266	402
42	0.20	3311	16555
43	4.78	3926	821

44	0.38	3072	8084
45	10.62	4798	452
आन्तरिक वार्ड			
5	0.79	2694	3410
6	0.14	3168	22629
7	0.24	4359	18163
10	0.13	2625	20192
11	0.11	3013	27391
12	0.08	2740	24250
13	0.10	3650	36500
21	0.08	2627	37529
22	0.07	3316	47371
24	0.08	3650	45625
25	0.08	3971	49638
26	0.08	2677	33463
27	0.13	2497	19208
28	0.10	2604	26040
29	0.18	3156	17533

स्त्रोत :- भारतीय जनगणना प्रतिवेदन 2001, राजस्थान।

## 2.2 जनसंख्या स्थानान्तरण

किसी भी नगर के विकास एवं विस्तार में जनसंख्या स्थानान्तरण एक महत्वपूर्ण तथ्य होता है। जनसंख्या का स्थानान्तरण रोजगार प्राप्ति, उच्च शिक्षा, पर्याप्त जन सुविधाओं की प्राप्ति, उच्च शिक्षा, पर्याप्त जन सुविधाओं की प्राप्ति आदि (शिक्षा, बिजली, परिवहन, मनोरंजन आदि) के कारण होता है। पाली नगर में प्रारम्भ से ही उक्त सुविधाओं की उपलब्धता होने के कारण आस-पास के क्षेत्रों से जनसंख्या का स्थानान्तरण होता गया है। पाली नगर की स्थापना 10वीं सदी से भी प्राचीन हैं। यह मारवाड़ क्षेत्र का प्रमुख व्यापारिक नगर रहा हैं। पाली नगर का पुराना शहर बाण्डी नदी के दाहिनी किनारे के पास मुख्य मन्दिरों एवं सी टी टैंक के पास, टेड़ी मेड़ी संकड़ी गलियों के रूप में विकसित हुआ था। सन् 1882-85 के मध्य पाली नगर के उत्तर में रेल्वे लाइन का बनना तथा सन् 1941 में सेठ मगनीराम बांगड़ द्वारा स्थापित श्री उम्मेद मिल के बाद पाली नगर के चतुर्दिश भागों में जन स्थानान्तरण होने लगा। इस मिल की

स्थापना के कारण स्थानीय एवं बाहरी क्षेत्रों के हजारों लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। रोजगार प्राप्ति की सुविधा से नगर के आस-पास के गांवों एवं राज्य के अनेक भागों से लोग आकर यहां बस गये। इन कारणों से पाली नगर की जनसंख्या 1941 में जो 12356 थी, वह 1951 में बढ़कर 24100 हो गयी।

1961 में पश्चात् पाली नगर के भीतरी क्षेत्रों में अनेक कपड़ा रंगाई छपाई की इकाईयां स्थापित हो गयी। पुराने शहर के बाहर वाले क्षेत्र में अनेक आवासीय कॉलोनियों की स्थापना के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, जल विद्युत आपूर्ति आदि की अनेक सुविधाओं के उपलब्ध होने से जन स्थानान्तरण तीव्र गति से हुआ। इस कारण से 1981 में नगर की कुल जनसंख्या 91568 हो गयी हैं।

पाली नगर में वर्ष 1981 से 2001 तक औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना, मीटर गैज लाइन का बड़ी रेल्वे लाइन से जुड़ता, अनेकों, आर्थिक गतिविधियों की विकास, काजरी की स्थापना, नया बस स्टेण्ड का निर्माण, राष्ट्रीय राजमार्ग 14 पर बने सुमेरपुर, सोजत

नये बाइपास का निर्माण, नया गांव यातायात योजना आदि के विकसित होने से नगर के जन स्थानान्तरण में वृद्धि हुई है। जन स्थानान्तरण की यह प्रकृति पुराने शहर से बाहर की ओर है। वर्ष 1978 में नगर परिषद् की स्थापना हो जाने से एवं औद्योगिक विकास हो जाने से भविष्य में पाली नगर की जनसंख्या में निरस्त वृद्धि होगी। नगर के उत्तरी भाग, दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग में जन स्थानान्तरण की प्रवृत्ति क्रियाशील रहेगी।

### 2.3 जनसंख्या वृद्धि

मारवाड़ क्षेत्र के प्रमुख व्यापारिक पाली नगर का ऐतिहासिक विकास 10वीं शताब्दी से भी प्राचीन हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व यह नगर जोधपुर रियासत का अंग रहा है। 1901 से पूर्व नियमित रूप से जनगणना नहीं होने से नगर की शुद्ध जनसंख्या ज्ञात नहीं हो सकती हैं। भारत की प्रथम जनगणना वर्ष 1901 में नगर जनसंख्या 12673 थी, जो पाली जिले की 3.21 प्रतिशत थी। वर्ष 2001 में इस नगर की जनसंख्या बढ़कर 187641 हो गयी हैं। इस प्रकार नगर की शताब्दी वृद्धि लगभग 15 गुणा हुई है (तालिका 2.2), जबकि इस शताब्दी में पाली जिले की जनसंख्या में 4.62 गुणा की वृद्धि हुई है। वर्ष 2011 में नगर की

जनसंख्या 225000 एवं 2023 तक 29000 होने की संभावना है।

जनसंख्या शताब्दी वृद्धि प्रवृत्ति का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि 1901 से 1941 के दशको में पाली शहर की जनसंख्या में अधिक उतार-चढ़ाव नहीं आया हैं। 1911 से 1921 में जनसंख्या में कमी, अनेक प्राकृतिक एवं अन्य विपदाओं के कारण हुई हैं। इस अवधि में आधारभूत सुविधाओं का भी अभाव रहा हैं, परन्तु इसके पश्चात् के दशकों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। वर्ष 1941 से 1951 की अवधि में जनसंख्या में लगभग दुगुनी वृद्धि हुई है। 1951-1961 के दशक में औद्योगिक विकास परिवहन सुविधा, आधारभूत सुविधाओं के विस्तार आदि के कारण जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1961-81 की अवधि में जनसंख्या वृद्धि तीन गुणा हो गयी, जबकि 1981-2001 की अवधि में जनसंख्या वृद्धि सामान्य रही है। यह वृद्धि 1981 में 83.75 प्रतिशत, 1991 में 49.44 प्रतिशत 2001 में 37.12 प्रतिशत रही है। वर्ष 1901 से 2001 की शताब्दी अवधि में सर्वाधिक वृद्धि वर्ष 1951 में 95.05 प्रतिशत रही है। जबकि 1921 में 21.72 प्रतिशत की कमी रही है (तालिका 2.2)।

### तालिका 2.2

#### पाली नगर, जनसंख्या वृद्धि प्रवृत्ति 1901 से 2001

वर्ष	जनसंख्या	दशकीय अन्तर	दशकीय प्रति.अन्तर
1901	12673	-	-
1911	12939	+00266	+02.10
1921	10129	-2810	-21.72
1931	10994	+00865	+08.54
1941	12356	+1362	+12.39
1951	24100	+11744	+95.05
1961	33303	+09203	+38.19
1971	49834	+16531	+49.64
1981	91568	+41734	+83.75
1991	136842	+45274	+49.44
2001	187641	+50799	+37.12

स्त्रोत:- भारतीय जनगणना, प्रतिवेदन 1981, 1991, 2001 जिला पाली।

वर्ष 2001 में पाली जिले के अन्य नगरों की तुलना में पाली नगर की जनसंख्या में वृद्धि दर सर्वाधिक 61 प्रतिशत रही है। जैतारण नगर में सबसे कम 9.4 प्रतिशत की वृद्धि रही है। पाली नगर के जिला मुख्यालय होने के कारण औद्योगिकरण, नगरीकरण, उच्च जन्मदर, घटती मृत्युदर, विविध नगरीय सुविधाओं की उपलब्धता, परिवहन एवं संचार की सुविधाओं की उपलब्धता आदि नगर जनसंख्या वृद्धि में सहायक रहे हैं। 1941 से 2001 के मध्य श्री उम्मेद मिल की स्थापना, अन्य कपड़ा रंगाई छपाई इकाईयों की स्थापना, जवाई बांध का निर्माण, ब्रॉडगेज रेलवे लाइन का निर्माण आदि के कारण भी यहा की जनसंख्या वृद्धि दर में तीव्र बढ़ोतरी हुई है।

पिछले 10 वर्षों में नगर में 5 औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना, नये राजकीय एवं अर्द्ध राजकीय कार्यालयों की स्थापना, नगर में राष्ट्रीय मार्ग 14 व दो बाइपास बनने, पाली से जोधपुर तक राष्ट्रीय मार्ग 65 के निर्माण होने, कई ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों का निर्माण, नया गांव के पास नया ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों का निर्माण, नया गांव के पास नया ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों का निर्माण, नया गांव के पास नया ट्रान्सपोर्ट नगर का निर्माण, काजरी कार्यालय की स्थापना आदि से नगर में औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास बड़े पैमाने पर हुआ है, और नगर जिला मुख्यालय होने से यातायात का प्रमुख केन्द्र बन गया है। उपर्युक्त कारणों से पाली नगर की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

**तालिका 2.3**  
**पाली नगर की जनसंख्या वृद्धि**

वर्ष	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	जनसंख्या			दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)
		कुल जनसंख्या	पुरुष	स्त्रियां	
1981	12.95	91568	49921	41647	83.75
1991	83.97	136842	71681	63161	49.44
2001	159.00	187641	99267	88374	37.41

स्रोत:- भारतीय जनगणना, प्रतिवेदन 1981, 1991, 2001 जिला पाली।

पाली नगर में वर्ष 1981 से 2001 की अवधि के मध्य जनसंख्या वृद्धि की दशा नगर के स्त्री-पुरुषों की संख्या में भी देखने को मिलती हैं। वर्ष 1981 में पुरुषों की संख्या जो 49921 थी, वह वर्ष 2001 में बढ़कर 99267 हो गयी है। इस प्रकार इस अवधि में पुरुषों की संख्या में 98.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यही दशा स्त्रियों की संख्या में भी पाई जाती है। उक्त अवधि में स्त्रियों की संख्या जो 1981 में 41647 थी, वह 112.20 प्रतिशत बढ़कर 88374 हो गई है। इस प्रकार वर्ष 1981 से 2001 में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई है। पुरुषों की शताब्दी वृद्धि दर 1991 में जो 47.59 प्रतिशत थी वह घटकर 2001 में 34.72 प्रतिशत रह गयी है यही दशा स्त्रियों की संख्या में भी देखने को मिलती है। स्त्रियों की शताब्दी वृद्धि दर 1991 में जो 51.65 प्रतिशत थी वह भी घटकर 39.19 प्रतिशत रह गई है। इस प्रकार 1991-2001 की अवधि में पुरुषों एवं स्त्रियों की जनसंख्या वृद्धि में ऋणात्मक विचलन रहा है।

### 2.4 लिगानुपात

किसी क्षेत्र की जनसंख्या के अध्ययन में जनसंख्या संगठन का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। किसी क्षेत्र की याजना निर्माण में विभिन्न जनसंख्या लक्षणों जैसे जन्मदर, मृत्युदर, वैवाहिक स्तर, आर्थिक विकास, साक्षरता, ग्रामीण एवं नगरीय आदि के विश्लेषण के लिये पुरुष एवं स्त्री के अलग-अलग आंकड़ों की आवश्यकता रहती है, क्योंकि इनकी संख्या से समाज की सामाजिक एवं आर्थिक दशाए प्रभावित होती है। अतः लिगानुपात का अध्ययन आवश्यक है।

**फ्रैकलिन के अनुसार :-** लिंग अनुपात किसी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का एक सूचक है तथा प्रादेशिक विश्लेषण के लिये अत्यन्त लाभदायक यंत्र है। लिंग अनुपात का प्रभाव जनसंख्या वृद्धि, विवाह स्तर एवं व्यावसायिक संरचना पर भी पड़ता है।

पाली नगर में 1981 में 49921 पुरुष तथा 41647 स्त्रियाँ थी। यह संख्या बढ़कर 1991 में पुरुष 73681 तथा स्त्रियां 63161 तथा 2001 में

पुरुष 99267 व स्त्रियां 88374 हो गयी। उक्त अवधि में लिंगानुपात (प्रति 1000 पुरुष पर स्त्रियों की संख्या) क्रमश 834, 857 तथा 890 था। वर्ष 2001 में पाली जिले में लिंगानुपात 915 था, जबकि पाली नगर में यह लिंगानुपात 890 ही था। इसी वर्ष में पाली जिले के सादड़ी नगर में सर्वाधिक लिंगानुपात 1003 था। वर्ष 1901 से आगामी दशकों में लिंगानुपात में सदैव 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक अन्तर रहा है। पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या से अधिक रही है। वर्ष 1937 से 1961 में लिंगानुपात में प्रतिदशक कमी हुई है जो 3.5 प्रतिशत रही है। वर्ष 1971 में यह अनुपात 831 रहा है। इसके पश्चात् अगले दशकों में यह अनुपात बढ़ता रहा है। नगर में लिंगानुपात घटने की दशा वर्ष 2001 में 0-6 आयु वर्ग में लिंगानुपात 915 रहा है, जबकि वर्ष 1991 में यह लिंगानुपात 882 था।

नगर में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की कम संख्या होने के प्रमुख कारण जैविक, प्रसव काल में स्त्रियों की मृत्युदर की अधिकता, बालिकाओं को कम महत्व देना, रोजगार हेतु पुरुषों का स्थानान्तरण, व्यावसायिक कार्यों में पुरुषों की प्रधानता आदि रहे हैं। पाली नगर में इसका प्रधान कारण रोजगार हेतु आस-पास के क्षेत्रों से पुरुषों का अधिक आना एवं पुरुषों का अपने निवास स्थान पर अस्थाई निवास रहा है।

राज्य के अन्य नगरों की तुलना में पाली नगर का लिंगानुपात (890), अजमेर (910), बांसवाड़ा (922),

उदयपुर (897) से कम तथा बीकानेर (871), जयपुर (876), जोधपुर (875) और कोटा (884) से अधिक है। जयपुर, बीकानेर नगरों में स्त्री-पुरुष अनुपात कम होने का कारण औद्योगिकरण एवं पुरुष श्रमिकों का नगरों में अधिक मात्रा में आवास है।

पाली नगर में विभिन्न वार्डों के लिंगानुपात में भिन्नता पायी जाती है। सर्वाधिक लिंगानुपात वार्ड संख्या 27 (972) में तथा निम्नतम वार्ड संख्या 15 (768) में है। पाली नगर के कुल 45 वार्डों में से नगर के लिंगानुपात 890 से अधिक वार्ड संख्या 2,10,11,12,13,16,17,19,21,22,24,26,27,28,35,36,45 में है, जहां लिंगानुपात 920 से 970 तक पाया जाता है। इन वार्डों में अधिक लिंगानुपात का कारण ये क्षेत्र व्यापारिक एवं पुराने शहर के भाग है। जहां के परिवारों में स्त्रियां साथ ही रहती है। नगर में न्यूनतम लिंगानुपात वार्ड संख्या 4,15,37,40,41 में 768 से 840 तक है। इसका कारण इन वार्डों में श्रमिक बस्तियां एवं पुलिस लाईन होने से पुरुषों की संख्या अधिक है। उदाहरणार्थ वार्ड संख्या 15 में न्यूनतम लिंगानुपात 768 है, क्योंकि इस वार्ड में स्थित औद्योगिक क्षेत्रों के निकट श्रमिक बस्तियां हैं। जहां अधिकतर बाहर के पुरुष श्रमिक निवास करते हैं। वार्ड संख्या 1,5,7,29,30,34,44 में लिंगानुपात नगर लिंगानुपात के अनुरूप ही है। (तालिका 2.5)।

**तालिका 2.5**  
**पाली नगर लिंगानुपात 2001**

नगर/वार्ड संख्या	लिंगानुपात (महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष)	नगर/वार्ड संख्या	लिंगानुपात (महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष)
पाली	890	-	-
1	897	24	941
2	947	25	971
3	905	26	954
4	841	27	972
5	887	28	964
6	910	29	894
7	888	30	896
8	871	31	861

9	857	32	901
10	939	33	877
11	926	34	896
12	938	35	926
13	915	36	954
14	862	37	840
15	768	38	880
16	957	39	861
17	921	40	847
18	916	41	796
19	939	42	843
20	911	43	820
21	963	44	887
22	941	45	918
23	903	-	-

स्रोत:- भारतीय जनगणना प्रतिवेदन 2001

वर्ष 2001 में पाली जिले के नगरों में लिंगानुपात की भिन्नता की दशाएं पायी जाती हैं। पाली जिले के नगरों में सर्वाधिक लिंगानुपात सादडी नगर में 1003 है तथा न्यूनतम लिंगानुपात पाली नगर में ही 890 पाया जाता है। अन्य नगरों में पाली के लिंगानुपात से अधिक लिंगानुपात बाली में 965, सोजत रोड में 945, तखतगढ़ में 958, मारवाड जंक्शन में 928 पाया जाता है।

## 2.5 ग्रामीण व नगरीय प्रारूप :-

जनसंख्या के आधारभूत तत्वों में जनसंख्या का ग्रामीण एवं नगरीय प्रारूप महत्वपूर्ण है। ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन भौली एक दूसरे से भिन्न होती है। दोनों तरफ की जनसंख्या के लक्षण भी भिन्न भिन्न होते हैं। किसी क्षेत्र की जनसंख्या का विश्लेषण करते समय वहां की जनसंख्या के ग्रामीण व नगरीय स्वरूप को समझना परम आवश्यक है।

किसी बस्ती को नगरीय क्षेत्र में निधारण करने हेतु वहां की जनसांख्यिकीय लक्षणों एवं वहाँ उपलब्ध सुविधाओं का ध्यान रखा जाता है। जनगणना प्रतिवेदन 2001 के अनुसार निम्नलिखित क्षेत्रों को नगरीय माना गया है।

(अ) वे सभी क्षेत्र जहाँ नगरपालिका/नगर निगम या छवनी बोर्ड या अधिसूचित नगरीय क्षेत्र हों।

(ब) ऐसे सभी क्षेत्र जिन पर निम्नलिखित मानदण्ड पूर्णतया लागू हो। :-

1. कम से कम 5000 की जनसंख्या।
2. काम करने वाले पुरुष जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत गैर कृषि कार्यों में लगा हुआ हो।
3. जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. हो।

इस प्रकार जनगणना प्रतिवेदन 2001 के अनुसार नगरीय इकाइयों दो प्रकार की हैं। प्रथम प्रकार की इकाइयों वे हैं जो नगरपालिका/ नगर निगम आदि सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार घोशित हो। दूसरे प्रकार के नगर जनगणना के उद्देश्य के अनुसार नगरीय इकाई माना जाता है, जबकि राजस्व अभिलेख में इन्हें ग्राम ही दर्शाया जाता है। पाली जिले में उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार निम्न नगरीय क्षेत्र हैं।

1. जैतारण (न.पा.)
2. सोजत (न.पा.)
3. सोजत रोड़ (जनगणना कस्बा)
4. पाली (नगर परिषद्)
5. मारवाड़ जंक्शन (जनगणना कस्बा)
6. रानी (न.पा.)
7. सादड़ी (न.पा.)
8. तखतगढ़ (न.पा.)
9. सुमेरपुर (न.पा.)
10. फालना (न.पा.)
- बाली (न.पा.)

पाली नगर का विकास 10वीं शताब्दी से पूर्व ही हो गया था। उस समय यह मारवाड़ क्षेत्र का प्रमुख

व्यापारिक, 9वाणिज्यिक केन्द्र रहा है। स्वतंत्रता के बाद यह नगर पाली जिले का मुख्यालय, औद्योगिक, व्यापारिक, परिवहन, धार्मिक, राजनीतिक आदि का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसका शहरीकरण के रूप में 1991 के बाद तीव्र गति से विकास हुआ है।

पाली जिले की वर्ष 2001 की कुल जनसंख्या 1820251 में से 1429364 ग्रामीण तथा 390887 नगरीय जनसंख्या थी जिनका शहरी प्रतिशत 21.48 व ग्रामीण प्रतिशत 78.52 था। कुल जनसंख्या में से अधिकतम 16.89 प्रतिशत व्यक्ति पाली तहसील में तथा न्यूनतम 5.64 प्रतिशत व्यक्ति रोहट तहसील में निवास करते थे। जिले की नगरीय जनसंख्या का अधिकतम भाग 48.00 प्रतिशत पाली नगर में तथा न्यूनतम 2.70 प्रतिशत भाग मारवाड़ जंक्शन में निवास करते हैं। पाली जिले में 1981 से ही नगरीय जनसंख्या वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक रही है। वर्ष 2001 में नगरीय जनसंख्या वृद्धि 20.88 प्रतिशत तथा ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि 22.89 प्रतिशत रही है।

इस प्रकार जिले में नगरीय जनसंख्या का अनुपात निरन्त बढ़ रहा है। नगरीकरण में वृद्धि का कारण औद्योगिक विकास रोजगार की उपलब्धता, सुविधाओं की उपलब्धता, जनसंख्या वृद्धि आदि रहा है।

## 2.6 कार्यशील एवं व्यवसाय अनुसार वितरण

### 2.6 (1) कार्यशील जनसंख्या

निम्न (तालिका 2.6) के अनुसार पाली नगर में वर्ष 1981-2001 की अवधि में कार्यशील जनसंख्या के स्वरूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इस नगर में वर्ष 1981 में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत 29.50 था, जो 1991 व 2001 में क्रमशः 28.73 एवं 29.92 प्रतिशत रहा है। नगर में कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता पाली जिले के सन्दर्भ में भी न्यून रही है। पाली जिले में यह सहभागिता वर्ष 1981 से 2001 तक क्रमशः 37.18, 38.13 एवं 39.8 प्रतिशत रही है। इन तीनों शताब्दी वर्षों में नगर की कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता लगभग 8 प्रतिशत कम रही है।

**तालिका 2.6**  
**कार्यशील एवं व्यावसायिक संरचना 1981, 1991 2001**

वर्ष	कुल जनसंख्या	कार्यशील जनसंख्या					मुख्य श्रमिकों की व्यावसायिक संरचना			
		मुख्य श्रमिक	सीमान्त श्रमिक	कुल कार्यशील श्रमिक	काम नहीं करने वाले श्रमिक	कार्यशील कुल श्रमिकों का प्रतिशत	कृषक	कृषि श्रमिक	घरेलू उद्योग श्रमिक	अन्य श्रमिक
1981	91568	26658	346	27004	64564	29.50	598	437	1477	24146
1991	136842	38305	1010	39315	97527	28.73	804	1230	1022	35249
2001	187641	20524	5636	56160	131481	29.92	1497	552	2215	46260
तीन दशकों का औसत प्रतिशत	-	-	-	29.44	70.56	-	2.39	1.98	4.24	91.39

स्रोत:- भारतीय जनगणना प्रतिवेदन, 1981, 1991, 2001 जिला पाली।

पाली नगर में कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता राज्य के अन्य नगरों यथा कोटा में 34, जयपुर, अजमेर, उदयपुर आदि में 30 प्रतिशत से भी कम रही है। वर्ष 2001 में नगर की कार्यशील जनसंख्या की भागीदारी में पुरुष-स्त्रियों की प्रतिशत संख्या बहुत अधिक अन्तर है। इस वर्ष में जहाँ पुरुषों की सहभागिता 48.99 प्रतिशत थी, वही महिलाओं की सहभागिता मात्र 8.51 प्रतिशत ही थी। इस प्रकार

पाली नगर में कार्यशील पुरुषों पर 51.01 प्रतिशत पुरुष आश्रित है, तथा कार्यशील स्त्रियों पर 91.49 प्रतिशत स्त्रियाँ आश्रित है। पाली जिले में अन्य नगरों में भी कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता भिन्न भिन्न है। वर्ष 2001 में पाली जिले के 11 नगरों में सर्वाधिक कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता 36.6 प्रतिशत सादड़ी नगर में तथा न्यूनतम सहभागिता 28.5 प्रतिशत मारवाड़ जंक्शन नगर में थी, जबकि पाली

नगर में 29.92 प्रतिशत ही थी, जो जिले की कार्यशील जनसंख्या 31.1 से कम थी।

पाली नगर के विभिन्न वार्डों में वर्ष 2001 में कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता की मात्रा भिन्न-भिन्न हैं। इसका कारण वार्डों की जनसंख्या में आयु संरचना, रोजगार की उपलब्धता, महिलाओं का घरेलू कार्य में रहना, कार्य के प्रति लोगों का दृष्टिकोण आदि हैं। नगर के 45 वार्डों की कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता 26.43 प्रतिशत के मध्य है जो नगर की औसत सहभागिता 29.69 से अधिक विचलन को दर्शाती हैं। नगर के वार्ड संख्या 2, 3, 4, 6, 8, 10, 11, 12, 13, 19, 20, 22, 23, 25, 27, 29, 32, 34, 39, 40, 44, 45 में कार्यशील जनसंख्या प्रतिशत 30 से कम है, तथा वार्ड संख्या 16 व 24 में कार्यशील जनसंख्या 35 प्रतिशत से अधिक है। इन दोनों वार्डों में औद्योगिक इकाईयों तथा व्यापारिक केन्द्र स्थिति हैं। अतः इन वार्डों में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है। वार्ड संख्या 1, 5, 7, 9, 14, 15, 17, 18, 21, 26, 28, 30, 31, 33, 35, 36, 37, 38, 41, 42, 43 में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत 30 से 35 है।

पुराने नगर के वार्डों में कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता नगर औसत 29.69 से कम है। इन वार्डों में पालीवाल ब्राह्मण, जैन एवं महाजन समाज के लोग निवास करते हैं। जिनकी महिलाओं का कार्यशील जनसंख्या में योगदान बहुत कम होता है। उदाहरणार्थ वार्ड संख्या 6, 11, 12 वार्डों में स्त्रियों की कार्यशील जनसंख्या में सहभागिता मात्र 5.14, 5.59 तथा 4.91 प्रतिशत ही हैं। नगर के बाह्य 30 वार्डों में से वार्ड संख्या 14, 15, 16, 21, 24, 35, 42 में सहभागिता 30 से 42 प्रतिशत तक हैं जो नगर की औसत सहभागिता से अधिक हैं। जनसंख्या की कार्यशील जनसंख्या के विश्लेषण से वह स्पष्ट होता है कि नगर में सर्वाधिक कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्रों श्रमिक बस्तियों एवं प्रमुख व्यापारिक, वाणिज्यिक क्षेत्रों में पाया जाता है। नगर के उत्तरी एवं पूर्वी भागों में, नगर के दाहिनी एवं पश्चिम क्षेत्रों के अनुकूल आर्थिक गतिविधियों का विकास नहीं हुआ है। अतः उत्तरी एवं पूर्वी भागों में कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता कम पायी जाती है।

## 2.6 (2) व्यावसायिक संरचना

मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न

आर्थिक गतिविधियों में क्रियाशील रहता है। अतः उसके जीवन यापन में उसकी आर्थिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण योगदान है। किसी नगर विकास के अध्ययन में वहां की जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु पाली नगर की कुल संख्या की व्यावसायिक संरचना का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। वर्ष 1971 से पूर्व के दशकों में जनगणना प्रतिवेदन में व्यावसायिक की नौ श्रेणियों का वर्णन किया गया था, परन्तु इसके पश्चात् के सभी जनगणना प्रतिवेदनों में समस्त व्यावसायिक गतिविधियों को निम्न प्रमुख चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है। 1. कृषक 2. कृषक मजदूर 3. घरेलू उद्योग में कार्यरत व्यक्ति 4. अन्य कार्य में कार्यरत व्यक्ति। नगर के संदर्भ में प्रथम दो श्रेणियों महत्वपूर्ण नहीं है, जबकि शेष दो श्रेणिया किसी सारगर्भित निष्कर्ष तक पहुँचने में सहायक है। आर्थिक गतिविधियाँ की चतुर्थ श्रेणी (अन्य कार्य) जिसमें सभी प्रमुख नगरीय गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। अधिक उपयोगी हैं, जिसका विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है।

जनगणना प्रतिवेदनों के अनुसार वर्ष 1981-2001 की अवधि में नगर की कुल कार्यशील श्रमिक संख्या (मुख्य श्रमिक + सीमान्त श्रमिक) के प्रतिशत में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इस अवधि में कुल कार्यशील की संख्या का प्रतिशत जो वर्ष 1981 में 29.50 प्रतिशत हो गया है। नगर में मुख्य कार्यकारी श्रमिकों की चारों श्रेणियों में वर्ष 1981 से 2001 की अवधि में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इस अवधि में कुल श्रमिकों में से कृषकों की औसत संख्या 2.39 प्रतिशत, कृषक श्रमिकों की 1.98 प्रतिशत, घरेलू श्रमिकों की 4.24 प्रतिशत तथा अन्य श्रमिकों की 91.39 प्रतिशत संख्या रही है। इस प्रकार उक्त अवधि में मुख्य श्रमिकों में सर्वाधिक औसतम कार्यशील जनसंख्या 91.39 प्रतिशत रही है (तालिका 2.9)। जो नगर के औद्योगिक एवं नगरीयकरण के विकास की दशा को प्रदर्शित करती हैं।

वर्ष 2001 में इस नगर में मुख्य कार्यकारी श्रमिकों की संख्या 50524 या 90 प्रतिशत तथा सीमान्त श्रमिकों की संख्या 5636 या 10 प्रतिशत है। इस प्रकार इस वर्ष में कुल कार्यशील जनसंख्या की संख्या 56160 है। नगर की मुख्य कार्यकारी श्रमिकों का 3.65 प्रतिशत भाग कृषक, कृषक श्रमिक तथा कृषि के

अन्य कार्यों में संलग्न है, तथा 3.94 प्रतिशत भग घरेलू उद्योगों में कार्यरत है। नगर में सर्वाधिक 82.37 प्रतिशत संख्या अन्य कार्य करने वालों की है। मुख्य श्रमिकों की संख्या में से अन्य कार्यों में यथा

पशुपालन, खनिज खनन, वन कार्य, बागवानी, व्यापार वाणिज्यिक कार्य, भण्डारण, यातायात एवं संचार औद्योगिक गतिविधियों, सरकारी अर्द्धसरकारी सेवाएँ आदि में कार्यरत है (तालिका 2.7)।

**तालिका 2.7**  
**पाली नगर व्यावसायिक संरचना-2001**

क्रम संख्या	व्यवसाय	व्यक्ति	कार्य करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत
1	कृषक	1 4 9 7	2.67
2	कृषि मजदूर एवं अन्य कृषि सम्बन्धी कार्य	5 5 2	0.98
3	घरेलू उद्योग	2 2 1 5	3.94
4	अन्य कार्य	4 6 2 6 0	82.37
5	कुल प्रधान कार्यकारी जनसंख्या	5 0 5 2 4	89.96
6	सीमान्त कार्यकारी जनसंख्या	5 6 3 6	10.04
कुल व्यावसायिक कार्यकारी जनसंख्या		5 6 1 6 0	100.00

स्रोत:- भारतीय जनगणना प्रतिवेदन, 2001 जिला पाली।

इस प्रकार की मुख्य कार्यशील जनसंख्या का 24.60 प्रतिशत पुराने नगरीय क्षेत्र में तगिा 75.40 प्रतिशत नगर के बाह्य क्षेत्र में रहती हैं। घरेलू उद्योगों में संलग्न कार्यशील जनसंख्या का 60 प्रतिशत से अधिक भाग नगर में केन्द्रीय भाग एवं उसके निकट वाले वार्डों में रहते हैं। यहा पर कुम्हार, बड़ई, कुम्हार, सोनी, जुलाहा आदि द्वारा अपना पैजिक घरेलू कार्य किया जाता है। कई परिवारों द्वारा कपड़े की रंगाई-छपाई, प्लास्टिक की चूड़ी निर्माण, हथ करघे पर कपड़ा बुनाई, लोहे के छोटे-छोट ओजार एवं घरेलू वस्तुओं का निर्माण आदि किया जाताहै। कृषि तथा उससे सम्बन्धित कार्य जैसे पशुपालन, बागवानी आदि का कार्य वार्ड संख्या 16, 17, 18, 35, 38, 39, 45 में किया जाता है। ये वार्ड नगर के बाहरी क्षेत्र में स्थित है। पाली नगर मुख्यतः औद्योगिक एवं व्यापारिक शहर है। वर्ष 1981-1991 की अवधि में यहां की प्रधान कार्यशील जनसंख्या का सर्वाधिक 44.91 प्रतिशत भाग उद्योगों

में 20.27 प्रतिशत व्यापार एवं वाणिज्य में, 16.69 प्रतिशत अन्य सेवाओं में, 6.55 प्रतिशत कृषि एवं इससे सम्बन्धित कार्यों में 6.04 प्रतिशत निर्माण कार्यों में तथा 5.54 प्रतिशत यातायात एवं संचार कार्यों में कार्यरत है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. Hussain Mazid : Human Geograph, Rawat Publication Jaipur, 2007, P.67
2. District Cencus Handbook of Pali Census of India 2001
3. Chandna, R.C. : Population Geography, Kalyani Publication New Delhi, 2004, P.34
4. Ibid : P.204
5. District Cencus Handbook of Pali Census of India 2001
6. Tripathi, R.D. : Denography & Population Study, Vasundhra Publication, Gorakhpur, P.209

# जयपुर क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन

सुनिल कुमार

सहायक आचार्य, श्री परमहंस स्वामी माधवानन्द महाविद्यालय, जाड़न, पाली



shodhshree@gmail.com

## शोध सारांश

प्राचीन समय में जयपुर वस्तुतः ढूँढड़ राज्य था जो आमेर, दौसा तक फैला हुआ था। धीरे-धीरे इसका विस्तार होता गया। इस क्षेत्र की प्रसिद्धि भौगोलिक दृष्टि से- सांभर झील, जो कि प्राकृतिक खारे पानी की बड़ी झील है जहाँ नमक का उत्पादन होता है, जो कि टैथिस सागर का अवशेष है। साथ ही आमेर और बैराठ की पहाड़ियाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पति के लिए विश्व प्रसिद्ध है और यह क्षेत्र खनिज संसाधन की दृष्टि से भी सम्पन्न है। जिसमें अभ्रक, चाईना क्ले, लौह अयस्क, काला संगंमरमर इत्यादि प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वन्य जीव के संरक्षण के लिए नाहरगढ़ तथा जमवारामगढ़ में अभ्यारण्य स्थित है इसमें असंख्यक जीव जन्तु निवास करते हैं। इस प्रकार जयपुर क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त होता है।

**संकेताक्षर :** प्राकृतिक विभाजन, जलवायु, नदी प्रवाह, मृदा वितरण, बांध, खनिज ढूँढंड।

**ज**यपुर राज्य राजपुताने के उत्तर-पश्चिम व पूर्व में अवस्थित है। यह 25°41' अक्षांश से 29°34' उत्तरी अक्षांश तक और 77°41' से 77°13' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। जबकि इसका विस्तार 15601 वर्गमील हैं।

इस राज्य का क्षेत्र तीन प्राकृतिक भागों में विभाजित है, ये भाग हैं- पहाड़ी - भाग, रेतीला भाग और मैदानी भाग। राज्य के दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर पहाड़ी भू-भाग हैं, जिसमें अरावली की शाखाएँ फैली हुई है तथा इनके बीच में नदियों के मैदानी भाग समाविष्ट है। अत्तरी अरावली प्रदेश में जयपुर क्षेत्र के उत्तर-पूर्व की समस्त पर्वत श्रेणियाँ सम्मिलित है, जिनमें जयपुर में बंबाई (792 मीटर), बैराठ (704 मीटर), भौराच, अलवर (792 मीटर), खोह (920 मीटर) आदि आती हैं। उत्तर-पूर्वी भाग तथा दक्षिण के पहाड़ी भाग के अलावा उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम का भाग रेतीला और कहीं-कहीं पर सपाट मैदानी भाग भी है।

इस क्षेत्र की जलवायु शुष्क व गर्म है। यहाँ का औसत तापमान 87° फारेनहाइट है।<sup>1</sup> सर्वाधिक 112° व न्यूनतम 35° फारेनहाइट रहता है। वर्षा कहीं पर अधिक तो कहीं पर कम होती हैं, जो जून के अन्त में प्रारम्भ होकर सितम्बर के अन्त तक होती हैं। मई-जून माह गर्म होते हैं। इस समय उत्तरी भागों में गर्म हवा (लू) चलती है तथा दिसम्बर-जनवरी से सर्दी पड़ती हैं। मौसम के अनुसार बाजरा, गेहूँ व अन्य खाद्य पदार्थों का लोग भोजन में प्रयोग करते हैं।

जयपुर के आस-पास के क्षेत्र में कई नदियाँ भी प्रवाहित होती है। इनमें इस क्षेत्र की मुख्य नदी बनास तथा बाणगंगा हैं। बनास नदी मालपुरा और सवाई माधोपुर की भूमि को सिंचित करती हुई दक्षिणोन्मुखी होकर चम्बल में जा मिलती है। इसका बहाव राज्य में 110 मील है।<sup>1</sup> जबकि बाणगंगा नदी बैराठ के पहाड़ों से निकलकर आमेर, दौसा और हिण्डौन होती हुई भरतपुर की ओर चली जाती है। यह जयपुर राज्य में 90 मील के भू-भाग को सिंचित करती हैं और अन्त में आगरा जिले में यमुना नदी में मिल जाती हैं। इन दो प्रमुख नदियों के अलावा बान्डी, साबी, ढूँढ, गम्भीरी, डाई, मोरेल, माही, चम्बल आदि नदियाँ भी इस भू-भाग में बहती हैं। ये अधिकांशतः बरसाती नदियाँ हैं।

जयपुर राज्य मृदा वितरण की दृष्टि से कछारी प्रदेश में शामिल है। साथ ही यहाँ काली, पीली, रंकड़, पटपड़, खरड़, मटियाली आदि प्रकार की मृदा भी पाई जाती हैं। रेतीली और सख्त काटैड़ी मृदा भी कहीं-कहीं पर मिलती है। इस

प्रकार धरातल और मिट्टियों के विभिन्न प्रकारों के आधार पर कुछ लोक प्रचलित नाम तोरावाटी, शेखावाटी, चाकसू हाली, टोंक हाली, राजावाटी, मैड का कूडला आदि हैं।<sup>1</sup>

इस क्षेत्र में कभी छोटे-बड़े 116 बांध थे, जिनमें से कई बाँधों का निर्माण नादियों और नालों के पानी को रोककर किया गया था जिनमें मुख्य बाँध टेरडी सागर छपरवाड़ा सागर, मोरा सागर, गोपालपुरा, सैथल, किरवाल सागर, ढील नदी बाँध, कालिख बाँध, बुचारा बाँध, रामगढ़ बाँध व नया सागर बाँध है। इन सभी बाँधों से सिंचाई होती थी। परन्तु वर्तमान में वर्षा की अपर्याप्तता के कारण ये अधिकांश सूखे पड़े हैं।

खनिज संसाधनों की दृष्टि से भी यह क्षेत्र राज्य के प्रमुख खनिज सम्पदा सखाने वाले जिलों की श्रेणी में शामिल हैं। यहाँ नमक (साँभर झील), घीया पत्थर अभ्रक, लोह अयस्क (मोरिजा, नीमला, माउण्डा, कोटपूतली), चाइना क्ले (बुचारा, खेलना, किशोरपुरा, टोरडा), डोलामाइट, चूना पत्थर (माउण्डा, कोटपूतली), फ़ैल्सपार, बैरोलियम आदि खनिज पदार्थ पाये जाते हैं तथा भैंसलाना (कोटपूतली) की खादान से राज्य में एकमात्र काला संगमरमर प्राप्त होता है।<sup>4</sup>

आज का जयपुर क्षेत्र प्राचीन एवं मध्यकाल में “दूँढाइ” कहलाता था। इस क्षेत्र का नाम “दूँढाइ” क्यों पड़ा इसके बारे में विभिन्न इतिहासकार, चारण-भाटों के दस्तावेज तथा लोक मान्यताएँ अलग-अलग मत देते हैं और अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।<sup>5</sup>

पूर्व जयपुर राज्य के ब्रिटिश रेजीडेन्ट जे. पी. स्ट्रेटन के अनुसार दूँढाइ शब्द धूल भरे रेगिस्तान के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो दूर-दूर तक अपने शुष्क भू-भाग में फैला हुआ था।

सूर्यमल्ल मिश्रण भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ “वंश-भास्कर” में इस किंवदन्ती का उल्लेख करते हैं कि चौहान राजा बीसलदेव को एक ऋषि कन्या की पवित्रता भंग कर देने के कारण श्राप प्राप्त हुआ और उसे राक्षस बनना पड़ा। तब उसने जोबनेर की पहाड़ी की चोटी को अपना निवास स्थान बनाया और उस क्षेत्र में दूँढ-दूँढ कर मानवों का भक्षण करने लगा। इस कारण उसका नाम “दूँढिया” पड़ा तथा कालान्तर में यह क्षेत्र दूँढाइ रूप में जाना गया। उक्त घटना के आधार पर ही इतिहासकार कर्नल टॉड ने भी जोबनेर के समीप बीसलदेव के प्रायश्चित्त किये जाने का उल्लेख किया है। उस पहाड़ को बीसल का दूँढ कहा जाता है। दूँढ पहाड़ से ही दूँढाइ बना परन्तु कर्नल टॉड ने

बीसलदेव के राक्षस बनने की बात का उल्लेख नहीं किया है।<sup>6</sup>

**दूँढ-दूँढि खाये नरानि, ताते दूँढ नाम।  
देवपुरी अजमेर पुर, रम्य करी बैरान।।**

इस प्रकार उपरोक्त विभिन्न मत, मान्यताएँ और किंवदन्तियाँ तर्क संगत प्रतीत नहीं होती हैं। अतः भौगोलिक आधार पर इस क्षेत्र के भू-भाग पर बहने वाली दूँढ नदी के प्रवाह क्षेत्र का बोध कराने के लिये यह इलाका “दूँढाइ” कहलाने वाला मत अधिक तर्क संगत प्रतीत हो सकता है।<sup>7</sup>

इसी प्रकार जयपुर राज्य की सीमा का निर्धारण भी कठिन रहा है। लेकिन जयपुर रियासत के ऐतिहासिक स्रोतों, चारण-भाट की बहियों, परम्परागत लोक मान्यताओं आदि दस्तावेजों के आधार पर जयपुर राज्य की सीमा के निर्धारण का प्रयास किया जा सकता है।

**उत्तर टोंक वेडा सैं, सैथल सैं आथूणी धरा।  
इसडा मिनख बसै दूँढाइ में, परबत से उरा-उरा।।<sup>8</sup>**

इस प्रकार जयपुर राज्य की वास्तविक सीमा का निर्धारण करना कठिन रहा है। कई बार क्षेत्रगत भू-भाग के विलय आदि की स्थिति में भी इसकी सीमाओं में बदलाव हुआ है। फिर भी उपरोक्त सभी मतों के आधार पर ज्ञात होता है कि आधुनिक जयपुर, दौसा, अलवर, टोंक, सवाईमाधोपुर, लालसोट, चाकसू, साँभर, नीमकाथाना आदि का क्षेत्र दूँढाइ क्षेत्र में शामिल रहा था।<sup>9</sup>

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैम्स टॉड कर्नल, एनल्स एण्ड एंटीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, पृष्ठ-87
2. मिश्रा वी. सी., राजस्थान का भूगोल, पृष्ठ-12
3. सिंह रामलोचन, भारत में भूगोल का विकास, पृष्ठ-78
4. खुल्लर डी. आर. भारत का भूगोल, पृष्ठ-61
5. नाइला, झूथाला, दूँढाइ : संस्कृति और परम्परा, जनपदीय अनुसंधान, जयपुर, 1971, पृष्ठ-30
6. सक्सेना, आशुतोष, राजस्थान का ऐतिहासिक पुरातत्व, साहित्य सागर, जयपुर, 1978, पृष्ठ-6
7. देव, पुष्य सिंह, जयपुर का इतिहास एवं पुरातत्व, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2014 पृष्ठ-40
8. दूगड़, रामनारायण (अनुवादक) मुँहणोत नैणसी की ख्यात (द्वितीय खण्ड), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर (द्वितीय संस्करण) 2010, पृष्ठ-23
9. मेहता, पृथ्वीसिंह, हमारा राजस्थान, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1650, पृष्ठ-23

# महाराजा भीमसिंह का प्रशासनिक संगठन (1793-1803 ई.स)



shodhshree@gmail.com

ममता रानी

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

प्राचीन काल से ही न्याय प्रक्रिया प्रशासनिक तंत्र का अंग रहा है, किसी राज्य को व्यस्थित व भाक्तिशाली बनाने के लिए प्रशासन का सुव्यवस्थित होना अति आवश्यक है। मारवाड़ में विभिन्न राजाओं ने अपने-अपने समय में राज्य को प्रशासन का विस्तार किया। मारवाड़ में प्रशासनिक अधिकारियों का क्रमबंध अध्ययन मारवाड़ की ओहदाबही में किया गया है। 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक मारवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप सुस्पष्ट हो चुका था। मारवाड़ में छत्तीस कार्यालय थे। प्रत्येक ओहदेदारों के लिए अपने कार्यालय संबंधी समस्त कार्यों का तत्परता एवं निष्ठा के साथ दायित्व का निर्वाह किया गया है।

**संकेताक्षर :** ओहदेदार, मुसायब, मुसरफ, दरोगाई, परधानगी, पोतदार, चौकीनवेस।

**प्रा**चीन काल से ही न्याय प्रक्रिया प्रशासनिक तंत्र का अभिन्न अंग है। राजा कितना भी शक्तिशाली हो परन्तु उसकी प्रशासनिक व्यवस्था पर उसकी शक्ति निर्भर करती है। राजा अपने न्याय पद्धति से ही महान बनता है। मारवाड़ की ओहदाबही में प्रशासनिक अधिकारियों का क्रमबंध अध्ययन किया गया है। मारवाड़ में छत्तीस कार्यालय थे। प्रत्येक ओहदेदारों के लिए अपने कार्यालय संबंधी समस्त कार्यों का तत्परता एवं निष्ठा के साथ दायित्व का निर्वाह किया गया है। प्रशासनिक कार्यों का वर्गीकरण विभिन्न विभागों की स्थापना करके और उनके ओहदेदार और सहायक ओहदेदारों की नियुक्ति की गई है। जैसे-जैसे राज्य का विस्तार और महाराजा की नियुक्ति होती गई ओहदेदार के पद व संख्या दोनों ही बदलती गई।

महाराजा का कर्तव्य होता था कि वह अपने राज्य में प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रखे। इसके लिए किले के बाहर व अन्दर सभी प्रकार के कार्यालय व विभाग थे। प्रत्येक विभाग में मुख्य अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। मारवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप अठारवी सदी के उत्तरार्द्ध तक सुस्पष्ट हो चुका था। समकालीन ख्यातों वातो, अभिलेखों, सिक्को, परवाने और बहियों आदि स्त्रोतों के अध्ययन से यहां की शासन प्रणाली का पर्याप्त ज्ञान होता है। इन्हीं ख्यातों, बहियों से महाराजा भीमसिंह के समय के अनेक ओहदेदारों की जानकारी मिलती है।



प्रशासनिक पदाधिकारी:- प्रशासनिक अधिकारियों के लिए ओहदेदार शब्द प्रयुक्त हुआ है। उच्च प्रशासनिक अधिकारियों का विवेचन-

1. **मुसायब:-** मुसायब राजा का प्रमुख होता था। राज-दरबार का यह एक प्रतिष्ठित पद माना जाता था। यह राज्य के हित में अपनी सुझ-बुझ से सलाहकार की भूमिका निभाते हुए अपनी सेवाएँ अर्पित करता था। महाराजा भीमसिंह गद्दीनसीन हुए तब मुसायब के पद पर धाय भाई शिभूदान था। शिभूदान 1849 वि.स. की मुसायब नियुक्त किया गया ओर वह वि.स. 1851 तक रहा। भंडारी शोभाचंद (पोमसी का पुत्र) को वि.स. 1851 भाद्रपद की मास में मुसायब के पद पर नियुक्त किया गया। वि.स. 1852 को इसे मुसायब के पद से हटा दिया गया। 'राठौड़ री ख्यात' में वि.स. 1852 में शोभाचंद को मुसायब के पद पर नियुक्त किया गया।

2. **दीवान:-** ओहदेदारों में यह पद सर्वोच्च माना गया है। दीवान की भासन प्रबन्ध में मुख्य भूमिका रहती थी। इसका प्रमुख कार्य ठिकानेदारों पर नियंत्रण करना तथा परगनों के प्रबंध के साथ सुरक्षा के लिए कारगर उपाय करने का कार्य इसी का होता था।

(1) देश दीवान

(2) तन दीवान

महाराजा भीमसिंह के समय वि.स 1850 (1793 ई.) में भंडारी भानीदास दीवान था। वि.स. 1852 (1795 ई.) में भंडारी शिवचंद (शोभाचंद का पुत्र) को दीवान नियुक्त किया।<sup>1</sup> वि.स. 1853 में सिंघवी जोधराज, वि.स. 1854 अश्विन सुदि 14 को, 1856 वैशाख सुदि 11 को मुहणोत सिरदारमल सवाई राम सूतरामोत को दीवान नियुक्त किया। 1859 में गोपालदास को कार्य सौंपा गया। 1860 ई. में जेठ वदी 14 में मोहनोत ग्यानमल को दीवान का पद दिया गया।

3. **बख्सी:-** यह सेना का प्रमुख अधिकारी होता था। महाराजा भीमसिंह के राज्यारोहन के समय (20 जुलाई 1793) में अखैराज

बख्सी के पद पर था। वि.स. 1851 मार्गशीर्ष वदि 8 को शिवचंद शोभाचंद ई.स. 1797 में पुनः अखैराज, ई.स. 1798 में भवानीदास, ई.स. 1798 को सिंघवी अखैराज को नियुक्त किया गया।<sup>3</sup>

4. **परधानगी:-** प्रधान प्रमुख व सर्वश्रेष्ठ होता था। वि.स. 1854 चैत्र सूद 8 को महाराजा भीमसिंह ने सवाईसिंह को विधिवत प्रधान नियुक्त किया।

5. **गढ़ जोधपुर किलेदार:-** किले की सुरक्षा का दायित्व और किले की सुव्यवस्था की जिम्मेदारी किलेदार की होती थी। किले के अंदर व बाहर की गतिविधियों पर इसे ही नजर रखनी पड़ती थी। महाराजा भीमसिंह के समय धायभाई शिभूदान था। वि.स. 1855 में खीची सुरता, वि.स. 1857 में खीची कला तथा वि.स. 1860 में खीची चैना को नियुक्त किया।

6. **गढ़ जोधपुर किले मुसरफ:-** किले का मुसरफ एक प्रकार से किलेदार का सहायक और लेखा सम्बन्धी दायित्व का निर्वाह करता था। किलेदार की अनुपस्थिति में गढ़ की व्यवस्था का कार्य मुसरफ के द्वारा ही किया जाता था। वि.स. 1850 को महाराजा भीमसिंह ने दवे जगनेश्वर को मुसरफ का पद दिया गया। वि.स. 1860 में पंचाली ईदर भाण को मुसरफ के पद पर नियुक्त किया गया।

7. **श्री हजुर री दफ्तर री दरौगाई:-** महाराजा का अपना कार्यालय का मुख्य अधिकारी दफ्तर का दरोगा होता था। राज्य के उच्च अधिकारियों की गतिविधियों व उपलब्धियों की सुचनाएँ इस कार्यालय में ही दर्ज होती थी। महाराजा भीमसिंह जब गद्दीनसीन हुए तब वि.स. 1849 जेठ वदि 2 में जोशी रामनाथ इस पद पर था वि.स. 1850 में आसोपा सूरजमल, वि.स. 1855 को सवाई राम को, वि.स. 1856 को मुहणोत विजेराज को तथा वि.स. 1859 को पंचाली बादरमल को वि.स 1859 को पंचाली किसनकरण को तथा वि.स 1860 में चौपड़ा रूपराम व उमेदमल को दरौगाई का पद सौंपा गया।

**8. व्यास पदवी:-** धार्मिक कथाओं एवं आचरणों का ज्ञान करने के लिए राजाओं के द्वारा के ब्रह्मणों में से सुयोग्य व्यक्ति को राजघराने का व्यास नियुक्त किया जाता था। राजघराने के सगाई सम्बन्धों तथा विरोधी भाक्तियों का दमन करने का दायित्व भी इन्हीं का था। महाराज भीमसिंह के समय वि.स. 1851 आषाढ़ वदि 8 को कुशलचंद सेरजी को व्यास की पदवी के साथ सिरोपाव, मोती, कड़ा तथा पालखी प्रदान कर उसका सम्मान किया। वि.स. 1857 जेठ सुद 10 को बिदिया धर भाऊ, वि.स. 1860 में कुशलचंद और पुरोहित चन्नभुज को आधी आधी पदवी तथा वि.स. 1862 में चन्नभुज को व्यास की पूरी पदवी मिलने का उल्लेख है।

**9. मरदानी दोढ़ी दरोगा (दोढ़ीदार):-** महाराजा के महलों के मुख्य द्वार के निकट अपने कक्ष में यह सदा उपस्थित रहता था। इसकी आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति महाराजा से मिल नहीं सकता था। महाराजा की दिनचर्या और सुविधा को ध्यान में रखते हुए मिलने का समय सुनिश्चित करता था। ओहदाबही में महाराजा भीमसिंह के समय वि.स. 1856 फालगुन वदि 1 को मरदानी डयोढ़ी का दरोगा शोभावत भगवानदास (खीवकरण का पुत्र) को नियुक्त किया गया।<sup>4</sup>

**10. पुरोहित (राजगुरु):-** यज्ञ-अनुष्ठान और संस्कार विषयक कार्य सम्पन्न करने वाला ब्राह्मण पुरोहित कहलाता था। जन्म से लेकर मृत्यु तक रीति रिवाज सम्पन्न करने का कार्य पुरोहित के द्वारा ही किया जाता था। महाराजा भीमसिंह के समय पुरोहित हरजीवन और नथमल का विवरण ग्रन्थों में मिलता है।<sup>5</sup>

**11. अनरै कोठर खानसामा:-** (अन्न के भंडार का मुख्य अधिकारी) महाराजा के गृह प्रबन्ध के दायित्व का निर्वाह करता था। महाराजा भीमसिंह के समय सिंघवी सवाईराम वि.स. 1853 आसोज सूद 7 को नियुक्त किया गया। वि.स. 1856 आषाढ़ वदि 12 को मुहणोत रुघनाथ इस पद पर रहे।

**12. प्याद बख्शी:-** (गैर सैनिक कर्मचारियों की

सेवाओं एवं रोजगार का आकलन करने वाला अधिकारी) बख्शी सेना का प्रमुख अधिकारी होता था वही प्याद बख्शी गैर सैनिक कर्मियों का एक ऐसा अधिकारी था जो मुत्सदियों और अहलकारों आदि कर्मियों के कार्यों का आकलन करता और उनके वेतन का भुगतान करता था। महाराजा भीमसिंह के समय वि.स. 1849 (1792) चैत्र वद 5 को जोशी भाणदत इस पद पर था।

वि.स. 1850 (1793) भाद्रपद वदि 1 को पंचाली केवलराम, 1851 (1794) भाद्रपद वदि 10 को पंचाली बंशीधर को वि.स. 1852 (1795) पौष वदि 7 को श्रीमाली व्यास मोतीराम को तथा वि.स. 1853 (1796) आसाढ़ वदि 11 को पारख अणदराम को नियुक्त किया गया।<sup>6</sup>

**13. चौकीनवेस:-** (पुलिस चौकी का अधिकारी):- चौकीनवेस कार्यालय का पुरा हिसाब इसी को रखना होता था तथा गढ़ में लाने ले जाने की वस्तुओं का ब्यौरा भी यही करता था। ओहदाबही की सूची में (वि.स. 1820-1892) में 49 बार नियुक्त किये गये। भीमसिंह के कार्यालय में वि.स. 1850 (1793) सावणसूद 6 को मुहणोत मोवणलाल, वि.स. 1851 (1794) कार्तिक वदि 7 को मुहणोत मोवणदास व इनका बेटा जसरूप को माघवदि 12 को वि.स. 1852 (1795) भाद्रपद वदि 12 को पंचाली रीधकरण, वि.स. 1852 (1795) भादवा वदि 12 को पंचाली अबाबगस वि.स. 1852 (1795) मार्गशीष वदि 14 को मुहणोत जसरूप और भंडारी माणकचंद वि.स. 1853 (1796) सावणसुदि 9 को आचारज गुमानीराम व रीधकरण को, वि.स. 1854 (1797) कार्तिक सूदि 13 को मुहणोत गणेशदास, वि.स. 1855 (1798) चैत्र वदि 12 मुहणोत हंसराज को, वि.स. 1856 (1799) फागण सूदि 6 भंडारी माणकचंद को, वि.स. 1857 (1800) फागण सूदि 6 को जोशी सूतराम को मुहणोत जेठमल को नियुक्त किया गया तथा वि.स. 1860 (1803) जेठ वदि 10 को दिवान की तरफ

से पंचाली जगजीवन को नियुक्त किया गया। वि.स 1860 (1803) आसोप वदि 15 को आसोपा सूरजमल को नियुक्त किया गया।<sup>7</sup>

**14. तबेले घोड़े रै मुसरफ (अश्वशाला का लेखा अधिकारी):-** राजपरिवार में घुड़सवारी हेतु अच्छी किस्म के घोड़े रखे जाते थे जिनकी देखभाल की व्यवस्था अश्वशाला के अधिकारी के द्वारा की जाती थी। वि.स. 1849 (1792) माघवदि 12 को आसोपा नाहार को वि.स. 1851 (1793) सावण वदि 13 को व्यास सूरत राम को महाराजा भीमसिंह ने नियुक्त किया। वि.स. 1851 (1794) सावण वदि 7 को आसोपा अजतराम, वि.स. 1852 रा वद 5 को व्यास रूपराम, वि.स. 1860 (1803) भाद्रवा वदि 15 को दवै रूपामा को नियुक्त किया गया।

**15. सुतरखाना दरोगा:-** सुतरखाना का तात्पर्य नर उष्टशाला से है। उँठों के रख-रखाव के साथ उन्हे सवारी के लिए तैयार करना तथा दौड़ आदि का अभ्यास की जिम्मेदारी दरोगा की ही होती थी। महाराजा भीमसिंह ने वि.स. 1852 भाद्रपद वदि 4 को ख्रीची दमा को इस पद पर नियुक्त किया।

**16. सुतरखाना मुसरफ:-** उँठों की खरीद करना, उँठ का परिचय (उम्र, भारीर के अंग का निशान विशेष, रंग आदि) और खर्च आदि का लेखाजोखा मुसरफ रखता था। महाराजा भीमसिंह ने वि.स 1850 (1793) भाद्रपद वदि 6 को पंचोली देवकरण की, वि.स. 1855 को भाद्रपद वदि 4 को वीजो गोरधन की नियुक्त की गई।

**17. खासे खजाने दरोगा:-** यह राजकोश का मुख्य अधिकारी होता था खासे खजाना में विभिन्न धातुओं के सिक्कों का संग्रहण किया जाता था। महाराजा भीमसिंह ने इस पद पर वि.स. 1854 जेठवद 11 को बीरा ईछराम वि.स. 1858 चैत्र वदि 7 को जोशी राजाराम को नियुक्त किया।<sup>8</sup> तथा वि.स. 1860 मार्गशीर्ष वदि 7 को छंगाणी पन्नालाल तथा वि.स. 1860 फाल्गुन वदि 8 को व्यास गोरधन को नियुक्त किया।

**18. कमठे कली रो कोठर पोतदार (लेखापाल):-** हिसाब रखने के लिए पोतदार नियुक्त किया जाता था। सभी लेखपाल ब्राह्मण जाति के ही नियुक्त किए जाते थे। महाराजा भीमसिंह के समय में वि.स. 1849 फाल्गुन सूदि 1 को विसो रामराय को, वि.स. 1852 सावण वदि 15 को बीरा माणकचंद को वि.स. 1852 माघ सूद 15 को व्यास वाणारानी को, वि.स. 1858 पोष वदि व्यास को इस पद पर नियुक्त किया गया।

**19. बारुद खानो का दरोगा:-** बंदूक व तोप चलाने के लिए बारुद का प्रयोग किया जाता था। इसके अलावा सुरंग लगाने के लिए बारुद की आवश्यकता होती थी। बारुद खाने में इसका संग्रहण किया जाता था। इस बारुद खाने की देख-रेख दरोगा के द्वारा की जाती थी। महाराजा भीमसिंह के समय इस कारखाने में वि.स. 1851 भाद्रपद सूदि 15 को जोशी अमरचंद को इस पद पर नियुक्त किया गया।<sup>9</sup>

**20. हाथियों के फीलर खाने मुसरफ:-** (हस्तिशाला का लेखाधिकारी) हाथियों को खरीदना और हाथियों के खर्च का पुरा हिसाब मुसरफ के द्वारा ही रखा जाता था।

इस पद पर महाराजा भीमसिंह ने वि.स. 1850 आसोज वदि 12 को व्यास रूपराम को वि.स. 1853 सावण वदि 8 को किरायत नथू को, वि.स. 1854 आषाढ़ वदि 11 को व्यास सालगराम को तथा वि.स. 1860 सावण वदि 13 को लौढ़ा किसनराम को नियुक्त किया गया।<sup>10</sup>

महाराजा भीमसिंह के समय प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ थी। महाराजा का कर्तव्य होता था वह राज्य में प्रशासन की व्यवस्था बनाए रखें। इसके लिए महाराजा के द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर विभिन्न विभागों में की गई। महाराजा भीमसिंह के काल में प्रशासनिक पदाधिकारियों में ब्राह्मण व पुरोहित जातियों का वर्चस्व था। इनकी प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप अभिलेखों, ख्यातों, सिक्कों, बहियों और परवानों से भासन प्रणाली का पर्याप्त ज्ञान होता है।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास में योगदान, सम्पादक डॉ. हुकमसिंह भाटी, पृष्ठ 250, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश भोध केन्द्र, जोधपुर, प्रथम संस्करण 2013
2. राठौड़ा री ख्यात, खण्ड-3, पृष्ठ 684, 685, मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास, डॉ. हुकमसिंह भाटी, पृष्ठ 251
3. ओहदाबही संख्या 1, इमेज न. 13, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर।
4. (i) ओहदाबही संख्या -1, इमेज न. 260  
(ii) महाराजा गम्भीरसिंह (ईंडर) का पत्र इयोद्धीदार भगवानदास के नाम वि.स. 1855 ठिकाना पाल री ख्यात, पृष्ठ 112
5. ठिकाना पाल री ख्यात, संपादक - डॉ. विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ - 13
6. सनद परवाना बही, वि.स. 1822, इमेज न. 12-13
7. ओहदाबही संख्या - 1, इमेज न. - 266
8. ओहदाबही संख्या - 1, इमेज न. - 270, 271
9. बाईजी सायब रा बही, वि.स. 1918-20, संख्या 836, पृष्ठ - 7, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर
10. ओहदाबही संख्या - 1, इमेज न. 278

# मारवाड़ में डाक कार्य में संलग्न पदाधिकारी और उनको दी जाने वाली सुविधाए (1750-1850)



shodhshree@gmail.com

सोनिया शर्मा

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

किसी भी राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था राज्य के उत्कर्ष में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। तथा प्रशासनिक सुद्रता हेतु संचार साधनों की उत्कृष्ट अति महत्वपूर्ण है। मारवाड़ में शासको द्वारा अपनी डाक व्यवस्था को अत्यन्त विश्वसत बनाने हेतु हरकारो के दरोगो की नियुक्ति स्वयं की देखरेख में होती थी। इस पद पर अधिकतर अपने विश्वसत की नियुक्ति की जाती थी। डाक पहुंचाने के लिए राज्य द्वारा अपने पद के अनुसार सोने की बूटादार शैली, कसूबल रंग की थैली तथा खाली सादे कागजो का प्रयोग किया जाता था।

**संकेताक्षर :** प्रशासनिक सुद्रता, हरकारा, कसूबल रंग की थैली, सादे कागज, डाक व्यवस्था।

राजपूताने में डाक विभागो की स्थापना से पूर्व प्रत्येक रियासत की अपनी अलग तथा नीजी व सरकारी डाक व्यवस्था थी। मारवाड़ रियासत द्वारा डाक कार्य हेतु समय-समय पर हरकारो के दरोगो की नियुक्ति की जाती थी, ताकि यहाँ की सूचना तंत्र में निरन्तर सुधार करते हुए वह संचार व्यवस्था को प्रभावी बना सके। डाक सवार बड़े चकोर तथा विभिन्न मार्गो के जानकार होने के साथ ही मुख जबानी समाचार कहने में भी निपूर्ण होते थे। गुप्त समाचार, जो पत्रों में नहीं लिखे जाते थे, सवार अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर ही कहता था। बीच मार्ग में डाक लूट जाने की आंशका के कारण मुख जबानी सूचना का अपना महत्व था। हरकारो का चयन करने का अधिकार हाकम का होता था। हरकारा विभाग के अनेक डाकिया होते थे, जिन्हे प्रशिक्षण दिया जाता था। हाकम डाक में भेजने वाली सूचना की जानकारी रखने के लिए उनका अंकन बहियों में करता था। डाक की सर्वोच्चता तथा भेजे जाने वाले के पद को देखते हुए उनको खास थैलियो में भेजा जाता था। जैसे :- जोधपुर महाराज अभयसिंह द्वारा उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह जी को राज का हालचाल पूछने तथा संकट में सहायता देने का आश्वासन देते हुए पत्र लिखा, तो उसे सोने की बुटादार थैली में डालकर फारसी लखोटे (एक डोरी जिससे कागज बांधा जाता था) में लपेटकर भेजा गया था।<sup>1</sup> इसी तरह जब शासक द्वारा अपने से निम्न अधिकारी के पास कोई खलीता भेजा जाता तो उसके लिए बिना थैली के सादा कागज प्रयोग में लिया जाता था।<sup>2</sup> मारवाड़ राज्य द्वारा तत्कालीन समय में निम्न दरोगो की नियुक्ति हरकारा पद पर की गई थी।<sup>3</sup>

1. व्यास नंदलाल संवत् 1823 पोष सुद 12
2. जोशी बालू संवत् 1824 रा पोष वद 6
3. आसोपा सुरजमल संवत् 1829 मीगसर सुद 6
4. व्यास सदाशिव संवत् 1830 मीगसर, सुद 13
5. व्यास सायबराय संवत् 1839 कार्तिक सुद 13
6. व्यास सदाशिव संवत् 1841 सावण सुद 13
7. आचाराज फतैराम संवत् 1842 आसाद वद 1
8. आसोपा नरसिंह संवत् 1843 वैशाख वद 10

9. ओझा मुगलेश्वर संवत् 1844 महा वद 12
10. किरायत माणकचंद संवत् 1844 वैशाख वद 10
11. व्यास रूपराम संवत् 1844 आसाद वद 14
12. व्यास रूपराम संवत् 1847 चैत्र सुद 2
13. आसोपा रेवादान संवत् 1847 जेठ वद 4
14. उपाध्याय रतनचंद संवत् 1849 आसाद वद 5
15. आसोपा अंततराम संवत् 1849 जेठ वद 1
16. लोहडा किसनराम संवत् 1852 सापण वद 10
17. आचाराज गुमानीराम संवत् 1853 सावण वद 1
18. ओझा मुक्तेश्वर संवत् 1853 पोष वद 5
19. सिरमाली रतनचंद संवत् 1854 पोष वद 5
20. सिरमाली अबंदत संवत् 1855 मोगसर वद 14
21. आसोपा अन्तराम संवत् 1856 आसाद वद 13
22. आचाराज गुमानीराम संवत् 1860 सावण वद 13
23. बोहरा चैतराम संवत् 1860 भादवा वद 15
24. बोहरा किसनराम संवत् 1875 जेठ वद 14
25. पुरोहीत भीखनदास संवत् 1876 जेठ सुद 3
26. व्यास गोरुराम संवत् 1891 आसाद सुद 14
27. उपाध्याय उदैचंद्र संवत् 1892 वैशाख वद 5
28. व्यास सवाई राम संवत् 1896 काती वद 11

इन हरकारो, कासीदो को वेतन राजकीय कोष से दिया जाता था। सन् 1757 में राज्य के कुल खर्च में इनकी राशि 0.09: थी, 1795 ई में कुल राज्य खर्च का 0.23: तथा 1809 ई 0.14: संदेशवाहको पर खर्च किया गया।<sup>4</sup>

**राज्य द्वारा की गई सुविधाएँ :-** प्राचीन काल से ही बाह्यणो को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। राजकीय पदो पर अधिकतर बाह्यणो को नियुक्ति की जाती थी। ओहदा वही नं.2 से हरकारा के दरोगा पर अधिकतर बाह्यण जाति के लोगो को ही नियुक्त किया जाता था।<sup>5</sup> बाह्यण जाति के अतिरिक्त जाटो को भी प्रशासन में विश्वस्त स्थान प्राप्त था। मारवाड़ महाराजा बख्तसिंह जी ने कुचेरो के जाटो के एक खानदान को मिरधा पद पर नियुक्त किया, तथा उसे सिलास नामक गाँव चाकरी में दिया। वही एक अन्य जाट परिवार ने महाराजा मानसिंह की जालौर धरे में सहायता की थी, तब प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह जी ने उसे

डूडियावास (नागोर) का गांव इनायत किया। राजकीय डाक लाने ले जाने वाले अधिकारी को मिर्धा कहा जाता था ये सामान्य तथा घुडसवारों के अधिकारी होते थे। मिर्धाओं का मुकर्रर होना मारवाड़ महाराजा मोटा राजा उदयसिंह के वक्त से आरम्भ हुआ था। जब महाराजा उदयसिंह मुगल सम्राट की ओर से गुजरात के सुल्तान मुजज्फर को पराजित करने गये तथा लड़ाई जीती, तो उसकी बधाई लेकर मारवाड़ से एक मिर्धा आया, तब सम्राट द्वारा उसे उपहार स्वरूप एक जोड़ी तुगलकी दी। तुगलकी, एक मुगल गहना था, जो कानो में पहना जाता था।<sup>6</sup> इसके अतिरिक्त मिर्धा उम्मेद राम को दरबार की तरफ से 1 थिरमो प्रदान किया गया था।<sup>7</sup> थिरमो, पुरुषो द्वारा पहनने जाने वाला एक उत्तम श्रेणी का वस्त्र था।<sup>8</sup> डाक ले जाने मिर्धाओं को राज्य की ओर से 2 दीवड़ा प्रदान किया गया था। दीवड़ा, बकरे के चमड़े या मोटे कपड़े का बना जल पात्र होता था।<sup>9</sup> पहरेदारो में जिन लोगो को चाँदी - सोने की छड़ी मिली हुई थी, वे चोबदार कहलाते थे, चोबदारो को मारवाड़ में छड़ीदार भी कहते थे, चोबदारो में जिन लोगो को सिर्फ चाँदी की छड़ी मिली हुई थी, वे मिरदे कहलाते थे। वे अपने को ड्योदी के गिरदे कहते थे, जिससे उनकी और मिरदे कासीदो की पहचान होती थी।<sup>10</sup>

पश्चिमी राजपूताना में विभिन्न बहियो में आजुरदार<sup>11</sup> कासीदो का बहुतायत से उल्लेख मिलता है। जब पेशवा के सरक्षक नाना फडनवीस की ओर से कृष्णा जी जगन्नाथ को मारवाड़ महाराजा विजयसिंह के काल में वकील नियुक्त किया तो उन्होने मारवाड़ के समाचार पेशवा तक पहुचाने के लिए कई पत्रवाहक भेजे, किन्तु जवाब न आने पर उन्होने आजुरदार कासीदो को संदेश के साथ भेजा। इसके अतिरिक्त महाराजा तख्तसिंह जी के समय की बहियों से ज्ञात होता है, कि महाराजा द्वारा मारवाड़ के विभिन्न गाँवों में सराये बनवाने के लिए उनकी कचहरियो को रुक्का भेजा गया, जिसमें आदेश है, कि वहाँ के गाँवों में आने वाले मुसाफिरो तथा संदेश वाहको को ठहरने की सुविधा देने के लिए सराये बनवाना है। जिसके लिए आदमी यहाँ से भेजा जा रहा है। जिसके साथ कचहरी का आदमी भेजे तथा स्थान देखकर उसके अनुसार सराय बनवा दे। जागीरदारो के गाँवों में सराये जागीरदारो से बनवाये तथा अगर जागीरदार इस काम में विलम्ब करते दिखे तो कचहरी से रूपयें खर्च कर सराये बनवा देना। खर्च के रूपयों की विगत लिखकर यहाँ भेज देना ये खर्चा

जागीरदारों से ब्याज सहित वसूला जायेगा। सराय में जागीरदार की तरफ से एक चौकीदार रखवा दे जो वहाँ की चौकीदारी तथा साफ सफाई का कार्य करता रहता।

अतः हज़ूर के हुकम माफिक सराये बनवाने का कार्य निम्न गाँवों तथा परगनों में करवावें।<sup>12</sup>

### कचहरियों की तफसीलवार विगत

1. जोधपुर कचहरी को रुक्का निम्न गाँवों के लिए
 

1. गाँव रोहट	1. गाँव खारडा
1. गाँव मोगड़ा	1. गाँव पीपाड़
1. गाँव बुचकला	1. गाँव मादलियो
2. मेड़ता कचहरी तथा गाँव
 

1. गाँव बोरुन्दा	1. गाँव ईदावड़
1. गाँव झडाऊ	1. गाँव रीयां
1. गाँव नथावड़ा	1. गाँव आलणियावास
1. गाँव धनेरिया	1. गाँव भखरी
3. सोजत कचहरी तथा गाँव
 

1. गाँव झादण	1. गाँव चंडावल
1. दरवाजा बाहर एक सराय नजदीक	
4. परबतसर कचहरी और गाँव
 

1. गाँव परबतसर में	1. गाँव कवलाद में
--------------------	-------------------
5. देसूरी कचहरी तथा गाँव
 

1. गाँव गुदोज	1. गाँव सांडेराव
1. गाँव दोला	
6. जैतारण कचहरी तथा गाँव
 

1. गाँव झूठा	1. गाँव बर
1. गाँव छीपीयो	

उपरोक्त सरायों में 2 घोड़े भी सदैव रखे जाते थे, ताकि संदेशवाहकों द्वारा यहाँ पर पहुँचने पर ये तैनात कासीद व घोड़े आगे डाक लेकर जा सकें।

इस प्रकार कहाँ जा सकता है, कि सम्राज्य की राजनीतिक, सामाजिक तथा वाणिज्यिक सुदृढता का महत्वपूर्ण आयाम सक्षम संचार प्रणाली है। विभिन्न रियासतों द्वारा अपने सूचना तंत्र को प्रभावी बनाने के लिए समय-समय पर इसमें परिवर्तन किये गये तथा

डाक व्यवस्था में नियुक्त हरकारों, कासीदों को वेतन के साथ अन्य भत्ते, इनाम तथा कई पट्टे इनायत किये गये, ताकि वे अपना कार्य निपुणता से कर सकें।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खंरीता बही नं.1, संवत् 1781-1830/1724-1773 ई, इमेज-4, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
2. खरीता बही नं.3 संवत् 1775-1858/1718-1801 ई. इमेज 224, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
3. ओहदा बही नं.2 वि.स. 1820-1900/1763-1843 ई, इमेज 106-07, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
4. देवड़ा, जी.एस.एल. राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, बीकानेर 1981, पृ.199
5. ओहदा बही नं.2, उपरोक्त, इमेज-106-07, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
6. सिंह, हरदयाल मुजमुई हालात व इन्तजाम राज मारवाड़ पृ. 608-613,
7. जोधपुर - हकीकत बही नं.4, संवत् 1841-1845/1784-1785 ई, इमेज 1261, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
8. मौहम्मद, डॉ. सदीक, राजस्थानी - हिन्दी शब्द कोश, जोधपुर 2002, पृ. 253,
9. सनद परवाना बही नं.4 संवत् 1823/1766 ई, इमेज 70, जोधपुर रिकार्ड, रा.रा.अ.बी.
10. सिंह, हरदयाल, रिपोर्ट मसुमशुमारी राज मारवाड़ 1891 ई, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश एवं राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर 2019, पृ. 557,
11. आजुर्दार - परिश्रमिक लेकर डाक ले जाने वाले कासीद
12. किले की दफ्तर सम्बन्धी अपील। तथा मुकदमा की अदालत की बही, संवत् 1913/1856 ई. पृ.55, जोधपुर रिकार्ड, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश

# मध्यकालीन मारवाड़ की कुलीन क्षत्राणियों के वीरता तथा साहस के कुछ अनछुए पहलू (वि.स.1200 से वि.स.1550)



shodhshree@gmail.com

कुसुम

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

## शोध सारांश

प्राचीन काल में हमारे समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक व आदर पूर्ण स्थान था। स्त्रियों की समाज में स्थिति अच्छी थी। स्त्रियां युद्ध, धार्मिक अनुष्ठान सामाजिक कार्यों तथा समय आने पर राजनीतिक मुद्दों पर सलाह तथा सहायता करती थी। मारवाड़ के इतिहास में क्षत्राणियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वह देशभक्ति, कर्तव्य परायणता तथा अपने आत्मसम्मान की रक्षा कैसे करनी है, भलीभाँति जानती थी। इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं, जिससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार इन क्षत्राणियों ने विकट परिस्थितियों में भी विवेकपूर्ण तथा साहसिक कार्य किए। हर युग में अनेक दृष्टि से नारी का योगदान सर्वथा सराहनीय रहा है। शोध पत्र में कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इन क्षत्राणियों के साहसिक कार्यों को प्रस्तुत किया है, इन क्षत्राणियों के सामाजिक तथा धार्मिक कार्य भी सराहनीय हैं। अपनी प्रजा के हितार्थ भी अनेक कार्य किए हैं। विदेशी आक्रमणों तथा मुगलों का यहां की धरती पर आगमन से और उनकी संस्कृति का तथा रहन-सहन का हमारी संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव संस्कृति पर ही नहीं स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन लाया। धर्म तथा स्वयं की रक्षा के नाम पर नारी को ऐसे सामाजिक बंधनों में जकड़ दिया गया कि उसका स्वतंत्र अस्तित्व लुप्त होता गया।

**संकेताक्षर :** आत्मसम्मान, कर्तव्यपरायणता, देशभक्ति, पराधीनता, अभिव्यक्ति, आध्यात्मिक, सौंदर्य, विवेकपूर्ण।

**न**ारी समाज का वह अंग है, जो सामाजिक स्तर पर अनेक भूमिकाओं को एक साथ निर्वाहित करती है। एक ही समय में वह विभिन्न रूपों में जीवित रहती है, इन रूपों में वह एक बहन, पुत्री, प्रेयसी, दोस्त, माता सब होती है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में नारी की अहम भूमिका रही है। त्याग, नम्रता पतिव्रत धर्म का पालन करना उसके प्रमुख लक्ष्य माने गए हैं। राजनीतिक स्थिति का प्रभाव देश की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर पड़ा। युद्ध ही जीवन का हिस्सा था। अपनी जान को देश के लिए न्यौछावर करना सौभाग्य समझा जाता था। मध्यकाल में सैकड़ों बार पुरुषों के हाथ से जाती हुई बाजी को पुनः प्राप्त करने में क्षत्राणियों ने अदम्य उत्साह एवं साहस का परिचय दिया है। किस प्रकार विकट परिस्थितियों में भी उन्होंने विवेकपूर्ण तथा साहसिक कार्य किए इन कार्यों से उनकी निर्णय क्षमता की जानकारी मिलती है।

इस शोध पत्र में (वि.स.1200 से वि.स.1550) तक की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा मारवाड़ की क्षत्राणियों की महान तथा साहसिक भूमिकाओं को प्रस्तुत किया है, यह जानने से पहले उस काल में स्त्री की सामाजिक, धार्मिक स्थिति तथा उनके अधिकारों को जानना और समझना आवश्यक हो जाता है।

## मध्यकालीन मारवाड़ में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

उस समय स्त्रियों का समाज में स्थान सम्माननीय था। विवाह से पूर्व कन्याएं अपने माता-पिता के संरक्षण में रहती थी, तथा विवाह के पश्चात पति ही उनका स्वामी होता था। विवाह में माता-पिता वधू को संपत्ति आभूषण इत्यादि उपहार में देते थे। समाज और परिवार में माता का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। समाज में पत्नी को पति की अर्धांगिनी मानकर परिवार में उसको सम्मान मिलता था। राज परिवारों, धनी तथा उच्च वर्गों में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। सामंत अपने स्वामियों को सुंदर गणिकाएं भेंटकर उन्हें प्रसन्न करते थे। हर्षनाथ अभिलेख से इसकी जानकारी

मिलती है<sup>3</sup>। गणिकाओं को समाज का अभिन्न अंग माना जाता था। और धनी वर्ग तथा राजसभाओं में इनको सम्मान प्राप्त था<sup>4</sup>। जिस गर्भवशाला में गणिकाओं को शिक्षा दी जाती थी वहां सभ्य परिवार की कन्याएं नहीं पढ़ती थी<sup>5</sup>।

उच्च परिवारों में उत्पन्न कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबंध किया जाता था। उनकी शिक्षा में संगीत, गायन, वादन नृत्य और चित्रकला इत्यादि सम्मिलित थे। परंतु सामान्य परिवारों में स्त्रियां अशिक्षित रहती थी।

युद्ध में पति के वीरगति को प्राप्त होने पर विधवाएं पारिवारिक संरक्षण में रहती थी। स्मृतियों में विधवाओं के लिए दो मार्ग बताए हैं प्रथम पति की स्मृति में पवित्र जीवन व्यतीत करना तथा दूसरा सती होना<sup>6</sup>। उस समय सती प्रथा प्रचलित थी। सती होना सम्मान तथा गौरवपूर्ण समझा जाता था। जहां वीर मातृभूमि की रक्षार्थ प्राण न्यौछावर करने जाते तो अपने परिवार की चिंता नहीं करते थे, क्योंकि उनकी पत्नियों स्वयं की रक्षा करने के लिए अपने आत्मसम्मान में जौहर कर लेती थी। जौहर आत्मसम्मान का परिचायक था।

### राजकीय स्तर पर स्त्रियों की स्थिति

राजकीय स्तर पर राजपरिवार की स्त्रियों को अनेक अधिकार प्राप्त थे। राजमाता तथा महारानी के अपने विशेष अधिकार थे। राजमाता का स्थान अधिक प्रभावशाली था। शासकों की माता को राजमाता कहा जाता था। राजमहल में रानियों के निवास को अंतःपुर का जाता था, जिसको जनानी इयोढी के नाम से भी जाना जाता था।

रानियों, महारानी पासवानों पड़दायतो आदि के रहने के लिए जनानी इयोढी में अलग-अलग व्यवस्था हुआ करती थी। जनानीइयोढी के प्रबंध हेतु एक अधिकारी नियुक्त होता था जो “दरोगा” कहलाता था। जनानी इयोढी के प्रबंध में नाजिर नामक कर्मचारी कार्य करते थे।

राजमाता का स्थान जनानी इयोढी में सर्वोच्च था<sup>7</sup>। राजमाता अपनी योग्यता तथा अनुभव से महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दों पर विचार-विमर्श करती थी तथा निर्णय प्रदान करती थी<sup>8</sup>। बहुपत्नि प्रथा के कारण शासकों के अनेक पत्नियों होती थी। महारानी का महत्व अन्य रानियों से अधिक हुआ करता था। महारानी को पटरानी के नाम से भी जाना जाता था। सामान्यतः यह पद सबसे बड़ी रानी को दिया जाता था।

पटरानी राजा के प्रत्येक धार्मिक व राजनैतिक कार्यों में साथ रहती थी।

### धार्मिक स्तर पर स्त्रियों की स्थिति

मारवाड़ शासकों की अपनी कुलदेवी में विशेष आस्था थी। इन शासकों पर देवी के आशीर्वाद तथा कृपा के चमत्कारों का वर्णन इतिहास में कई स्थानों पर मिलता है। अर्थात् नारी के शक्ति रूप में विशेष आस्था थी। मारवाड़ के राठौड़ शासकों की कुलदेवी नागणेवी माता है। प्रत्येक शुभ कार्य में देवी की पूजा की जाती थी<sup>9</sup>। युद्ध में जाने से पूर्व देवी का आशीर्वाद लिया जाता था तथा विजय होने पर देवी की कृपा समझी जाती थी। धर्मानुसार पत्नी को पति की अर्धांगिनी माना जाता था। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में पत्नि अपने पति के साथ रहती थी। रानियां धार्मिक कार्यों हेतु भूमिदान दिया करती थी<sup>10</sup>। मंदिरों के जीर्णोद्धार<sup>11</sup> करवाने तथा दीपदान का भी उल्लेख मिलता है। देवता विशेष की यात्रा के दिन गणिकाओं को सुंदर वस्त्रों एवं अलंकारों से सुसज्जित होकर उपस्थित होना होता था<sup>12</sup>।

भक्ति काल में नारी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य की अनुभूति हुई है। नारी के शारीरिक और मानसिक सौंदर्य का निरूपण किया गया है। नारी सौन्दर्य की उदात्तता, उसके तीनों रूपों माता-पत्नि और कन्या के भक्ति काल के कवियों ने अंकित की है। माता में परमात्मा विशेष की स्थापना देखी है। बौद्धिकता तथा तर्क वितर्क की भावना से रहित नारी के सरल हृदय आदर्शों तथा एक पक्षीय पवित्रता तथा पतिव्रत को उसने सदा ही शिरोधार्य किया है।

शोध पत्र के समय (वि. स. 1200 से वि. स. 1550) के इतिहास की जानकारी हमें शिलालेखों तथा ख्यातों और वंशावलियों से ही प्राप्त होती है, उसी के आधार पर मारवाड़ की कुलीन क्षत्राणियों के वीरता तथा साहस के कुछ अनछुये पहलू :-

### राज्य की सुरक्षा व विस्तार में राज कन्याओं की भूमिका

प्रत्येक राजा की जिम्मेदारी होती थी कि वह अपने राज्य तथा प्रजा की सुरक्षा का ध्यान रखें, इसके लिए स्वयं शासक का शक्तिशाली होना आवश्यक था। परंतु जब कभी वह किसी वीर पुरुष के बारे में सुनते तो उसे अपनी पुत्री (राजकुमारी) या बहन का विवाह करवा देते थे, या जिन शासकों से राज्य को भविष्य में खतरा हो सकता था, उनके साथ विवाह संबंध बना दिए जाते थे,

जिससे राज्य को उनसे कोई खतरा न रहे। राजकुमारियों की इच्छा जाने बिना यह निर्णय राज्यहित में लिया जाता था। इस निर्णय से राजकुमारी को किसी प्रकार की आपत्ति है, ऐसा भी, इतिहास में विशेष कोई जानकारी नहीं है। अतः राजकुमारियों के लिए भी राज्य सुरक्षा तथा अपनी प्रजा की सुरक्षा सर्वप्रथम थी।

(i) जब भीनमाल में मुसलमानों पर सीहा की विजय होने का समाचार चारों ओर द्रुतवेग से फैल गया था। गुजरात के सोलंकी राजा ने उसकी वीरता के समाचार सुन उसके साथ अपनी पुत्री के विवाह के नारियल भेजे<sup>13</sup>।

“कर्नल टॉड ने पुत्री के स्थान पर सोलंकी सरदार की बहन से विवाह होना लिखा है। सोलंकी राजकुमारी ने अपने इस विवाह से अपने पिता के राज्य की सुरक्षा को अपना कर्तव्य समझा”।

(ii) इसी प्रकार राव रणमल का वैभव देखकर सोनगरों का हित चाहने वाले कुछ लोग नागौर जाकर उनको समझाते हैं कि राठौड़ कम नहीं है, चूक कर सकते हैं, इसलिए अपने यहां इसका विवाह संबंध करवा दो तब लोलासोनगरे की पुत्रीका विवाह राव रणमल के साथ कर दिया गया<sup>(14)</sup>। जो राव रणमल को मारने की साजिश थी

### युद्ध सुलह में राजकुमारियों का योगदान

राज्य में शांति बनाए रखने तथा युद्ध को विराम देने के लिए सुलह की जाती थी कभी-कभी युद्ध लंबे समय तक चलता था, तथा कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकलता था, उसमें केवल जन धन की हानि ही होती जा रही हो तो ऐसे में एक पक्ष से सुलह का प्रस्ताव भेजा जाता था, जो अक्सर कुछ कमजोर पक्ष की तरफ से ही होता था, जो और अधिक हानि सहन नहीं करना चाहता था। सुलह में धन तथा जागीरें देना और अपनी राजकुमारी का विवाह विपक्ष के शासक से करवाने का प्रस्ताव भेजा जाता था।

इसमें एक नारी (राजकुमारी) द्वारा अपने राज्य की सुरक्षा परिवार तथा प्रजा की सुरक्षा की भावना राज्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अहसास तथा कर्तव्य परायणता झलकती थी। वह अपनी जिंदगी एक सुलह में काम दे देती थी। अपने भविष्य को जाने बिना, सोचे बिना विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी थी। जिस राज्य में वह जा रही थी, क्या उसे अन्य रानियों जैसा सम्मान मिलेगा या नहीं? या वह अपना आत्म

सम्मान बनाए रख पाएगी। ये सभी बातें द्वितीय स्थान पर रखकर देश भक्ति सर्वोपरी होती थी। यह कार्य करना तथा ऐसा जज्बा राजपूतों के खून में है वह अपनी मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर सकते हैं।

(i) जब राठौड़ राव छाड़ा अपने पड़ोसी जैसलमेर के भाटियों के लिए कष्टदायक बन रहे थे, तब चाचिग ने उन्हें दंड देने के लिए सौंदे की सेना की सहायता प्राप्त की। लेकिन छाड़ा और उसके पुत्र टीडा की सलाह से कन्या का विवाह उसके साथ कर उसका क्रोध शांत किया। लक्ष्मीचंद ने अपनी “तवारीख जैसलमेर” में भी लिखा है- राव छाड़ा ने कुवंर टीडा की सलाह से फौज खर्च दे, बेटी परणा सुलह कर ली<sup>15</sup>।

(ii) मंडोर नागौर के अधीन था और तुर्कों का थाना था जो वहां बसने वाले ईदा राजपूतों को बड़ा तंग करते थे एक बार ईदा राजपूतों से घास मंगवाने पर, राजपूत घास से भरी बैलगाड़ियों के भीतर बैठकर किले में प्रवेश कर मुसलमानों पर टूट पड़े तथा मंडोर पर अधिकार कर लिया। ईदा रायधवल तथा उंदा ने अपने भाई बंधुओं को समझाया कि मंडोर गढ ज्यादा समय तक अपने पास नहीं रहेगा, अत एव इसे राव विरम के पुत्र चूंड़ा को दे दिया जाए। ईदा राजपुतो ने यह बात मान ली, तथा ईदा रायधवल ने अपनी पुत्री का विवाह चूंड़ा के साथ कर मंडोवर उसे दे दिया<sup>16</sup>। इस सम्बंध में प्रसिद्ध सौरठा है-

“यह ईन्दा रो पाड, कमधज कदे न बीसरे,  
चूंड़ो चंवरी चाड, दियो मंडोवर दायजे”।।

(iii) शृंगार देवी मारवाड़ के महाराजा राव जोधा की पुत्री थी मेवाड़ के महाराणा कुंभा के समय रणमल की हत्या के उपरांत मेवाड़ और मारवाड़ में उत्पन्न संघर्ष का हल महाराणा कुंभा की दादी हंसाबाई के प्रयासों से हुआ तथा मेवाड़ मारवाड़ में मैत्री संधि हो गई। इस संधि को आंवल- बांवल की संधि के नाम से जाना जाता है, इस संधि के द्वारा मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा का निर्धारण कर दिया गया। जोधा ने शृंगार देवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ कर दिया<sup>17</sup>।

### प्रभावशाली तथा प्रेरणादायी रानियां

जहां रानी और राजकुमारी अपने राज्य के प्रति अपने कर्तव्य को समझती थी, वहीं अपने आत्म सम्मान व अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने में भी सक्षम थी। अपने

पति का युद्ध में साथ दे रणभूमि में उसका सहयोग करती थी। वह युद्ध कौशल के साथ-साथ राजनीतिक दांवपेच भी भली प्रकार से जानती थी। अगर कोई राजा किसी राजकुमारी या रानी के सौंदर्य का कायल हो जाता था तो वह राजकुमारी या रानी अपना स्थान सुरक्षित करने तथा मनचाहा कार्य राजा से करवाती थी। कभी-कभी राजा अपनी सबसे करीबी या प्रिय रानी की बात मानने में प्रशासन के नियमों की अवहेलना भी कर देता था।

### सिसोदणी रानी सुबली

जैसे राव टीडा और राव सोमन्त सिंह सोनगरा के बीच भीनमाल नामक स्थान में युद्ध हुआ तब सोनगरा राव की रानी सिसोदणी सुबली भी युद्ध में साथ थी, उसके रथ को राठौड़ों ने जा घेरा टीडा ने रथ मोड़ने की आज्ञा दी। रानी सिसोदणी के पूछने पर उसने अपनी इच्छा बतायी कि वह उसे अपनी रानी बनाना चाहता है। रानी सिसोदणी ने प्रस्ताव स्वीकार किया, परंतु शर्त यह रखी कि वह उसी के पुत्र को युवराज बनायेगा। राव ने मंजूर किया और उसके पुत्र का नाम कान्हडदेव हुआ जो युवराज नियुक्त हुआ<sup>(8)</sup>। रानी ने युद्ध में हारने की स्थिति में भी अपनी बुद्धिमत्ता तथा सौन्दर्यता का उपयोग किया और कठिन और विपरीत परिस्थितियों में भी जीत गयी। उसने अपने साथ अपने पुत्र का भविष्य भी सुरक्षित कर लिया था।

### प्रेरणादायी रानी रूपादे

राव मल्लीनाथ की पत्नी रूपादे एक प्रभावशाली तथा प्रेरणादायी व्यक्तित्व वाली नारी थी। वह संत उगमसी भाटी की प्रिय शिष्या थी। राव मल्लिनाथ अपनी रानी रूपादे से प्रभावित हो उगमसी भाटी के शिष्य हो गए और योग साधना की दीक्षा ग्रहण की। धीरे-धीरे इनकी भक्ति एवं आस्था ने इन्हें पराक्रमी योद्धा के साथ एक सिद्ध पुरुष बना दिया। किवदन्तियों के अनुसार भविष्य दृष्टा एवं देवताओं का चमत्कार प्राप्त सिद्ध पुरुष बन गए थे<sup>(9)</sup>। युद्ध को जीवन मानने वाले राव मल्लीनाथ रानी रूपादे की प्रेरणा से भक्ति और योग की तरफ उन्मुख हो गये।

### श्री कृष्ण भक्त शिरोमणी मीरां

मध्य काल में नारी के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य की अनुभूति हुई है। नारियों के शारीरिक और मानसिक सौंदर्य का निरूपण किया गया है। मध्यकालीन काव्य में मीरा को छोड़कर अन्य भक्त

एवं संत कवियों ने नारी की सार्थकता पुरुष वर्चस्व वादी ढांचे में ही सुरक्षित की है। मीरा के काव्य में एक और स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी और उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। अपने स्नेही तथा आत्मीय जनों के सानिध्य से इस प्रकार वंचित हो जाने पर भी मीरा दुःख के सागर में मग्न नहीं हुई बल्कि उसकी भक्ति साधना तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति दुगुने वेग से प्रबल हो उठी।

### भाटी राणगदे की मौत का बदला

भाटी राव राणगदे को जब राव चूंडा ने मारा तो उनकी पत्नी ने अपने पति की मृत्यु का बदला लेने की ठानी। उसने रावल केलण को कहलवाया कि अगर वह मुझे अपने घर में रखे तो पूंगलगढ़ उसको (राव केलण) दे देगी। राव केलण ने प्रस्ताव स्वीकार किया। पूंगल पर अधिकार होने के बाद केलण ने मुलतान के सुलेमान खां की सहायता से नागौर पर चढ़ायी की और चूंडा को मरवा डाला<sup>20</sup>। एक रानी ने अपने पति की मौत का बदला लेने के लिए दूसरा विवाह स्वीकार किया और अपना प्रण पूरा किया।

### देशभक्त तथा स्वामीभक्त क्षत्राणी

जब अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर जीतने के लिए अपने सेनानायक कमालुद्दीन को एक विशाल सेना के साथ जालौर भेजा तब उसने जालौर दुर्ग के चारों ओर घेरा डाला तथा युद्ध किया। अथक प्रयासों के बाद भी कमालुद्दीन जालौर दुर्ग नहीं जीत सका और अपनी सेना लेकर वापस लौटने लगा। तभी कान्हडदेव का अपने एक सरदार बिका दहिया से कुछ मतभेद हो गया। 1311 में बिका ने जालौर दुर्ग के असुरक्षित और बिना किलेबंदी वाले हिस्से का गुप्त भेद दे दिया। बिका के इस विश्वासघात का पता जब उसकी पत्नी को लगा तब उसने अपने पति को जहर देकर मार डाला। एक वीर और स्वामी भक्त क्षत्राणी को अपने पति का विश्वासघाती कुकृत्य सहन न हुआ। उसने अपने पति को नहीं एक देशद्रोही को मौत की सजा दी थी। यह कार्य एक क्षत्राणी ही कर सकती है उसने वि का को दूसरी बार विश्वासघात करने का मौका नहीं दिया।

### रानी मान्गलियानी का त्याग

जबराव वीरम की मृत्यु हुई तब रानी मान्गलियानी बालक चूड़ा को ले कालाऊ गाँव में आल्हा चरण के पास रहने लगी तथा सभी से अपना वास्तविक परिचय

छुपा कर रखा।<sup>21</sup> मजदूरनी बन गाँव में रही।<sup>22</sup> आज हम जो भी राव चूंडा का इतिहास पढ़ते हैं, वह नहीं होता अगर रानी मान्गलियानी इतना साहस नहीं करती और त्याग नहीं करती। उसने चूंडा को आल्हा चारण को सौंपा ही नहीं वरन् वह भी वही चूंडा के पास रही।

### रावत लूणा की पत्नी द्वारा जोधा की मदद

रावत लूणा लूणकरण की पत्नी भटियाणी जोधा की मौसी थी। जब जोधा के पास युद्ध के लिए राजपूत तो थे, परन्तु घोड़े नहीं थे। तब जोधा ने रावत लूणा से सहायता मांगी। रावत के पास लगभग 500 घोड़े थे। जोधा ने रावत लूणा से 200 घोड़े मांगे, परन्तु रावत ने जवाब दिया कि वह राणा पर आश्रित है, अगर घोड़े तुम्हें दिए तो राणा मेरी जागीर छीन लेगा। तब जोधा लूणा की स्त्री भटियाणी के पास गया। भटियाणी ने कहा कि चिंता मत कर मैं तुझे घोड़े दिलाती हूँ। फिर उसने अपने पति को बुलाकर कहा कि अमुक आभूषण तोषखाने में रख दो। जब रावत तोषखाने में गया तो उसकी स्त्री ने किवाड बंद कर बाहर से ताला लगा दिया। जोधा के साथ अपनी एक दासी भेजकर अस्तबल वालों से कहलवाया कि रावत जी का हुक्म है कि जोधा को सामान सहित घोड़े दे दो। जोधा वहाँ से 140 के लगभग घोड़े लेकर खाना हो गया<sup>23</sup>। अपनी मौसी की सहायता के बिना शायद जोधा अपनी विजय का सोच भी नहीं सकते थे।

### विदेशियों के आगमन का स्त्रियों की स्थिति पर प्रभाव

लगातार आक्रमणों से जीवन संघर्षमय हो गया था। फिर जब मुगल आगमन हुआ तो संस्कृति में परिवर्तन आया। मुगलों के रहन-सहन, शाही दरबार आदि ने पुरुषों को प्रभावित किया। मुसलमानों के वर्चस्व का जितना असर पुरुषों की स्थिति पर दिखायी देता है, उतना ही स्त्रियों की अधीनस्थ की भूमिका तैयार होने लगी। स्त्री का जो युग मान सम्मान तथा अधिकारों वाला था, विदेशियों के आते ही प्रतिबंध वाले युग का आगमन शुरू हो गया था।

बाल-विवाह, पर्दा प्रथा शुरू हो गई। स्त्री के दिव्य गुण धीरे-धीरे अवगुण बनने लगे। वह साम्राज्ञी से धीरे-धीरे आश्रिता बनती गई। उसके मानसिक विकास के द्वार पर ताले लगा दिए गए। उसकी उन्नति के मार्ग में प्रतिबंध लगा दिए गए। सुंदर स्त्रियों पर अधिकार करना, दासियाँ बना कर रखना तथा उसको भोग की

वस्तु समझने का नजरिया बनने लगा।

### उपसंहार

स्पष्ट है कि मारवाड़ में नारियों की स्थिति सम्माननीय थी वह राजमाता तथा पटरानी जैसे पदों से सुशोभित थी उसकी निर्णय क्षमता भी प्रशंसनीय थी उसमें कर्तव्यपरायणता तथा देशभक्ति जैसे गुण थे। वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा करना जानती थी, वह माता, पत्नी, बहन तथा पुत्री सभी रूपों में सराहनीय तथा सफल थी।

परन्तु विदेशी ताकतों के आगमन ने स्त्री की सम्माननीय स्थिति को पराधीनता में बदल दिया। लगातार आक्रमणों में भागीदारी, परिवार को सुरक्षा प्रदान करते रहने के कारण पुरुषों का गौरव बढ़ता चला गया। धीरे-धीरे स्थिति यह हुई कि सुरक्षा तथा सुविधा प्रदान करते रहने के कारण पुरुषों का वर्चस्व तथा समाज में मान्यता बढ़ती गयी तथा नारी मात्र भोग विलास का साधन बन कर रह गयी। पुरुष की इच्छा पूर्ति करना, बच्चों की देखरेख करना ही उसका कार्य रह गया।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समराइच्चकहा- पृ. 93-101
2. मनु स्मृति (2/145) में लिखा है, पिता से भी माता हजार गुणी सम्माननीय होती हैं।
3. एपिग्रापिया इण्डिका, 2 पृ. 121-22
4. नाट्य शास्त्र (अ. 17, 37)
5. कामसूत्र पृ. 364
6. विष्णु स्मृति 35/14  
बृहस्पति स्मृति 25/11
7. सोभाग्य सिंह शेखावत राजस्थानी निबंध संग्रह : पृ.-167
8. मारवाड़ रा परगना री विगत भाग-2 : पृ.-5
9. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद- जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ. 109
10. (i) एपिग्रापिया इण्डिका, 19 पृ. 351-52  
(ii) अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ. -196
11. एपिग्रापिया इण्डिका, 9 पृ. 12-15
12. एपिग्रापिया इण्डिका, 9 पृ. 62 व 158
13. मुहणोत नैणसी की ख्यात जि. 2 पृ. 50-55 ए मारवाड़ रा परगना री विगत भाग -1 पृ .7 , रावेडा री ख्यात भाग -1 पृ-11

14. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद- जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ. 146, संस्करण 2010 (पाद टिप्पणी)
15. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद-जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ. 116
16. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद- जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ. 137
17. 17-ओझा ; जोधपुर राज्य का इतिहास भाग -1 पृ. 160, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल: जि. 55 भाग-1 पृ. 79-82(ख्यातों में राजकुमारी का उल्लेख नहीं परन्तु चित्तोड़ से लगभग 12 मील उत्तर में स्थित धोसुंडी गाँव में वि. स. 1561में एक बावड़ी बनवाई गयी जिसकी प्रशस्ति में श्रंगार देवी का जोधा की पुत्री होने तथा रायमल के साथ विवाह का वृतांत मिलता है )
18. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद-जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ. 95 मुहणोत नैणसी की ख्यात में भी वर्णन मिलता है।
19. मारवाड़ रा परगना री विगत प्रथम भाग पृ.-16
20. मुहणोत नैणसी की ख्यात जि. 2 पृ. 358
21. राठोडा री ख्यात भाग -1 पृ.27, मारवाड़ रा परगना री विगत ; भाग -1 पृ. 21
22. मारवाड़ रा परगना री विगत भाग -1 पृ.20
23. (i) जोधपुर राज्य की ख्यात जि. 1 पृ. 42-3  
(ii) मुहणोत नैणसी की ख्यात जि. 2 पृ. 129-30  
(iii) बांकीदास ने भी रावत लूणा से घोड़े मिलना लिखा है।  
(ऐतिहासिक बातें संख्या-159)

# Vasudhaiva Kutumbkam - An Instrument to Bring Peace And Harmony In The World



shodhshree@gmail.com

**Prof. Anand Prakash Singh**

Principal, Govt. Degree College, Ganai Gangoli, Pithoragarh (Uttarakhand)

**Dr. Ram Singh Samant**

Assistant Professor, Mahayogi Gurugorakhnath Govt Degree College, Pauri Garhwal (Uttarakhand)

## **Abstract**

**'Udaracharitanam Tu Vasudhaiva Kutumbakam', Hitopadesha (1.3.71)**

*Meaning,*

*'This is my own relative and that is a stranger' – is the calculation of the narrow-minded; for the magnanimous-hearts, however, the entire earth is but one family.'*

*We are living in a very world where everyone is trying to supersede others and trying to prove that they are a better society or country in the world. Various peace conferences are being conducted and talks are being held but all in vain. Take the latest example of Indo-China or China-American relations or pandemic like Covid-19. It has become very difficult to bring social integrity in the world. All religions and sects advocate peace and harmony and all of them emphasize that maintaining brotherhood amongst all societies is the only way to bring peace in the world. Indian culture in specific, believes in brotherhood and peace and harmony. The concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' which originated in India looks at the whole world as a single family. The feeling of being members of the same family can only bring peace and harmony in today's world. A verse from Hitopadesha (1.3.71) states 'Udāracharitānām tu vasudhaiva kutumbakam', meaning, 'This is my own relative and that is a stranger' – is the calculation of the narrow-minded; for the magnanimous-hearts, however, the entire earth is but one family.' Indian scriptures are full of such ideas such as 'Sarvjan-Hitay, Sarvajan-Sukhay' which refers to work for everyone's interest and everyone's happiness.' All these saying again emphasize the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam.' This paper has been written by taking help of secondary tools like books, online study material, articles, etc. This paper tries to emphasize the importance of 'Vasudhaiva Kutumbkam' in maintaining peace and harmony in the world.*

**Keywords:** *Social Philosophy, Hindu Mythology, Mankind, Competition, Culture.*

**T**oday, in the world of competition, we are heading towards a cut-throat environment with no space for peace and harmony. It will be of no shame to state that we are living in a world of hatred, violence, terrorism and disturbance in all or every sphere of life. We do not want to see others develop as we are doing. We should not forget that a garden becomes a garden when all flowers have the opportunity to blossom, single flower cannot make a garden. This whole world is like a garden, and all human beings, different institutions and societies, states and countries are different flowers of the same garden. All of us can develop in the right sense when we live in peace and harmony. Progress hinders in the absence of peace and harmony. Wikipedia<sup>1</sup> states peace 'as a concept of societal friendship and harmony in the absence of hostility and violence. In a social sense, peace is commonly used to mean a lack of conflict (such as war) and freedom from fear of violence between individual or groups.' Harmony can be gained only when peace is maintained between different groups. Vocabulary.com<sup>2</sup> defines peace

as 'a stress-free state of security and calmness that comes when there is no fighting or war, everything coexisting in perfect harmony and freedom.' The concept of peace and harmony has been of importance ever since the emergence of mankind. Peace can be said as being in harmony with the God and its creations. Apart from this, we in today's world are heading towards fights at our national borders, leaving no space to destroy others. Talking about the importance of peace and harmony Albert Einstein once said that peace is not only the absence of war but the presence of justice of law and order in short of government. Mahatma Gandhi's philosophy of peace is 'ahimsa' or non violence which is one of the ways to give up hatred and destruction by the law of love and harmony amongst each other. Regarding the importance and necessity of need of peace and harmony, Gopinath Nair<sup>3</sup> opines that 'peace is simply having a feeling of security, calm and restfulness. We often tend to think of peace as being an international issue, far from our daily life but we do not realize that global peace can only be achieved if each country is settled and is at peace. The peace and happiness of each country can only be achieved if every citizen is at peace.'

**Ways to Find a Peaceful World:** It is high time that the solution of intolerance and war against each other should come to an end. UN Resolutions 1998 states that 'culture of peace is an integral part approach to preventing violence and violent conflicts, and an alternative to the culture of war and violence based on education of peace, the promotion of sustainable economic and social development, respect for human rights, equality between women and men, democratic participation, intolerance and free flow of information and disarmament.' We need to begin and think of start all over again for building a better world. Education regarding peace needs to be circulated amongst all human being. Education of peace can stop wars and bring the world into peace and harmony. As UNESCO declaration of culture of peace say, 'Since wars began in the minds of men; it is in the

minds of men that defenses of peace must be constructed.' Alexander Pope rightly said, 'to err is human, to forgive is divine.' Forgiveness is the tool to develop brotherhood amongst human beings. We can forgive others only when we have the feeling of social integration. Vijay Mehta<sup>4</sup> states that 'nonviolence is a positive doctrine of love, friendship and equality among all living beings of the universe. It is an antidote of violence. It embraces both the good and of humanity and devotion to the good of all living beings and the environment.' He further states that 'peace is an investment of our humanity's progress for a better future. The way of peace is to overcome evil with good, falsehood with truth and hatred with love.' Thus, we can say that social integration is the most important factor for universal peace. Hindu scriptures have suggested elaborately the ways to enhance brotherhood. If all the story of peace, harmony, and brotherhood is to said in a word than it would obviously be 'Vasudhaiva Kutumbkam.'

**Vasudhaiva Kutumbkam: A Mantra to Peace and Harmony:** Hindu mythology has always given importance to the family and its significance. It is a compulsion for the human beings, societies, nations and the world to adopt the principles of global brotherhood. Indian sages and saints have been thinking of the ways to bring peace in the whole of humanity and thus arrived the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam.' The concept of Vasudhaiva Kutumbkam arrives from the original Sanskrit verse from Maha Upanishad<sup>5</sup> which is the derivation of the shloka 'vasudha' meaning 'the earth,' 'eva' meaning 'indeed is,' 'kutumbkam' meaning 'family'; thus the word 'Vasudhaiva Kutumbkam' means 'the earth or world is one family.' The concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' refers the whole world as a family that is above all boundaries or divisions. This concept teaches tolerance and brotherhood for one and all. As a larger concept 'Vasudhaiva Kutumbkam' thus is a philosophy that attempts to forego national and international borders as it looks at the whole world as one family which is must to create peace

and harmony. 'Vasudhaiva Kutumbkam' is a philosophy that the entire humanity is one family, as all humanity is made of one life energy 'atma' or soul. Atma is the significant part of paramatma or God. Because we all are part of the same God, we tend to be brothers and belong to the same family. Today, the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' has been recognized by various organizations of the world like United Nations Organization, South Asian Association for Regional Cooperation. Organization of the Petroleum Countries, G-15, G-20, etc, have enshrined the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam.' Mutual cooperation and brotherhood are essential parts of India's civilizational values. United Nations High Level Political Forum 2017<sup>6</sup> confesses that 'the country has been appreciated by all stakeholders for its role in shaping the global agenda in all spheres including economic development. India recognizes that the promotion of global wellbeing requires institutionalizing the concept of 'one world' through partnerships based on solidarity, equity and sharing.'

Sohan Raj Tater<sup>7</sup> is of the opinion that the importance of the concept of universal peace through feeling of oneness is also present in all other religions like 'the vedas say, for wise people, the entire humanity is but one family. Ramayana preaches God is present in all human beings. The Gita teaches to be involved in the good of all humanity. Jainism preachers not indulge mind, body and speech in the evil of all other creatures. Islam prays to God to give prosperity to all humanity. Guru Granth Saheb believes that all humanity has sprung from light of one source i.e. God. Who is big, who is small? i.e. all are equal. Bible teaches to love their neighbors. All religions give the same divine message of unity of God and oneness of humanity.' Feeling the importance of youths in propagating brotherhood and cooperation, Ishita Das, 2013<sup>8</sup> believes that this ancient phrase also incorporates the principle of sustainable development as it highlights the importance of respect for the environment and

wildlife also. The concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' or 'One World, One Family' should be the motto of the present generation. She further states that the youth should harness and revive the age-old cultural values by propagating their significance and relevance on the social media platform, which connects the young and the old alike.

The world today has started to realize the importance of the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' to promote peace, harmony, brotherhood, cooperation, etc., without which would will be a no better place to live in. 'Vasudhaiva Kutumbkam' is both a cultural as well as spiritual concept which is gift of India to the wider world which tries to look into the whole world as a family which can only be maintained by love, peace, harmony, cooperation and mutual support. As a matter of fact, India had always thought of the world as a family and not as different nations. V C Srivastav<sup>7</sup> states that 'the idea of nationalism was alien to ancient Hindu thought and philosophy, according to him the idea of nation was given to the Indians by the Europeans.' For Mahatma Gandhi 'a nation was merely a unit of functionality such as family, villages, districts and all these units according to him should contribute individually and collectively for the betterment of mankind.' Thus it is clear that the aim of various units of functionality should be to made a world a better place to live. The Indian scriptures are full of such shlokas or verses or mantras that further emphasizes the importance of 'Vasudhaiva Kutumbkam.' As one of its prayers in Brihadraanyaka Upanishad says 'Sarve Bhavantu Sukhinah,' which means 'may all human beings be happy.' Thus this prayer also prays for each and every human being because again the culture of our country believes in; one world, one family. The one world culture is for "Sarvajana-hitaya, Sarvajana-sukhaya" – the welfare of all and the happiness of all. According to Ishawasyapnishad,<sup>8</sup> 'Ishavasya Idam Sarvam, Yatkincha Jagatyam Jagat Tien Tyaktam Bhunjeetha, Ma Gridhah Kasya Swidhanam,'

which pertains to 'O human beings! Enjoy this wealth in the need based sharing and caring spirit and not greed based acquisitive culture.' Thus the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' is very important and the whole world can be turned into a family on this basis alone. It endows us with a sense of human dignity and responsibility, awakening in us the divine nature which is our true self. We learn to respect man.<sup>9</sup> Talking about the importance of each and every creature in this world, Shrimad Bhagwat Mahapurana states 'Jivo Jivo Rakshante.' The world can be made a peaceful place only when one creature saves and helps other creatures.

**Conclusion:** It can be concluded that 'Vasudhaiva Kutumbkam' is the only solution for maintaining peace and harmony amongst each other. Somewhere or the other we are descendents of the same forefathers. We all are brothers. We are members of the same family. The following lines of Sharad Lakhnupal (2018)<sup>10</sup> will help to make it clear that we belong to one family.

'We are the birds of the same nest,  
 We may wear different skins,  
 We may speak different languages,  
 We may believe in different religions,  
 We may belong to different cultures,  
 Yet we share the same home—OUR EARTH.  
 Born on the same planet,  
 Covered by the same skies,  
 Gazing at the same stars,  
 Breathing the same air,  
 We must learn to happily progress together,  
 Or miserably perish together,  
 For man can live individually,  
 But can survive only collectively.'

Thus, last but not the least the concept of 'Vasudhaiva Kutumbkam' is the only solution for global peace and harmony. Nothing other than the above concept can make it possible. Needless to say that it is only through the

understanding the spirit of "Vasudhaiva Kutumbkam" that peace can be ushered in this world.

### References

1. *en.w.wikipedia.org*
2. *vocabulary.com*
3. *Nair, G. Peace Education and Conflict Resolution in School, Health Administrator, Vol: XVII, Number 1: pp 38 – 42*
4. *Mehta, Vijay, 2016, From Inner Peace to Global Peace, Connecting Minds – Unleashing Potential, 1st European Peace Summit 2016*
5. *Maha Upanishad VI.71–75*
6. *India, Voluntary National Review Report on Implementation of Sustainable Development Goals, United Nations High Level Political Forum 2017*
7. *Tater, Sohan Raj, Outcome of Spirituality: Vasudhaiva Kutumbakam, Advisor, Jan Vishwa Bharti University, Ludnun*
8. *Das, Ishita, 2013, One World, One Family: The Power of Youth in Deepening Cultural Ties, December 20, 2013. Available at <http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.2369691>*
9. *Srivastav, V.C., Director, HAS, Seminar on Nationalism, Religion, and Literature, Mysore, February 2020*
10. *Ishawasyopnishad first mantra*
11. *Singh, Minakshi, Global Culture and Society: Considering the Pluralistic Perspective of Indian Philosophy of Moral, International Conference on Role of Arts, Culture, Humanities, Religion, Education, Ethics, Philosophy, Spirituality and Science for Holistic Societal Development ISBN-978-93-85822-42-1, pp., 97–102*
12. *Lakhnupal, Sharad, 2018, Vasudhaiva Kutumbakam The World Is One Family, Arthritis & Rheumatology Vol. 70, No. 5, May 2018, pp 662–668*

# Ardhakathanaka: The Text and the Context

Dr. Kalpana Malik

Associate Professor, Motilal Nehru College, University of Delhi, Delhi



shodhshree@gmail.com

## Abstract

For a long time, it was a general belief that except for a few fragmentary pieces, the culture of writing an autobiography was not prevalent in India. Autobiography as a distinct literary genre emerged in the sixteenth century in Europe. However, the *Ardhakathanaka* composed by Banarasidas in the seventeenth century is perhaps the first full fledged autobiography in Indian literature. From early childhood, he had an interest towards reading philosophy and writing poetry. Banarasidas was a businessman by profession, but we owe to his literary inclinations an invaluable source material in the form of the *Ardhakathanaka*. In the present paper, an attempt has been made to understand the importance of this work, more so when it was written by the author without any precedents. An effort has been made to understand the title of the text, who were the audience whom the author had in mind while penning the work and what prompted him to lay bare his life in such a candid manner. The work becomes a very important source of history as we get an insight into the social and mercantile world of a middle-class Jain merchant.

**Keywords:** Autobiography, Memoir, Versified, Anecdotal, Bikhyat, Human Life and Stages, Language, Style, Past Karma, Mercantile.

The *Ardhakathanaka* is a versified composition written in 1641 by a Jain merchant, Banarasidas.<sup>1</sup> Banarasidas calls the *Ardhakathanaka* the story of his life, narrated by himself (*so Banarasi nij katha, kehai aapso aap*).<sup>2</sup> He further says that a thought occurred to him that he should address it to a wider audience as well (*tin manmahi bichari baat, kaho aapni katha bikhyat*).<sup>3</sup> It was composed when he was settled in Agra, along with his third wife at the age of fifty-five. It was at this point that he decided to write about his life. The narrative was brought down to the present when he began to compose the work.

It is generally understood that the culture of autobiography was virtually absent in India except for some fragmentary pieces of autobiographical expressions in Bana Bhatt's *Harsh Carita* and Bilhana's *Vikramanka deva-Carita*. In the Indian literary tradition the *Ardhakathanaka* appears as the first evident and full-fledged autobiography written before modern times. It emerges as a human oasis in the midst of a depersonalized desert. Although Babur and Jahangir's autobiographical memoirs were written before Banarasidas's work they could not have possibly served as precedents for him as they were written in Chagtai Turkish and Persian respectively, languages with which Banarasidas was not familiar.<sup>4</sup>

As a distinct literary genre, autobiography emerged in Europe only in the sixteenth century. The very fact that the *Ardhakathanaka* was written without any literary precedent, yet possessed most of the characteristics of modern autobiographical writing comes as a pleasant surprise. It is introspective, frank and full of confessions. The narrative embraces a whole range of interesting experiences of the poet-merchant: about his education, the twin passions of knowledge (*vidya*) and *asikhi* (romance), three

marriages, spiritual pulls, persecutions and business trips to various places, one of which almost got him killed.

### **Autobiography or Memoir?**

Autobiographies can be classified into different types, ranging from religious to essayistic. In the latter type, personal circumstances are used as the basis for reflections on contingent matters; one is tempted to know which literary genre the *Ardhakathanaka* fits into. A study of the work reveals that although the *Ardhakathanaka* provides an introspection of the self, yet it is a memoir. Both, an autobiography as well as a memoir are written on the basis of personal experience, are chronological as well as reflective. It is the direction of the author's attention that differentiates the two. An autobiography focuses on the self while memoirs focus more on the events which may not have a direct bearing on the protagonist's life. The latter form is more popular with statesmen and politicians. Bismarck's *Thoughts and Recollections* fall into the ambit of a statesman's memoirs.<sup>5</sup> Although the *Ardhakathanaka* imbibes all the characteristics of an autobiography, some sections of the work are more of a memoir and not autobiographical. Verses twenty-four to thirty-seven deal with the location, the different occupations, and the nine rulers of Jaunpur which have no bearing on the author's life.

There is another section, from verse five hundred and two to five hundred and forty-seven, which provides a long description of how one of Banarasidas's fellow travellers got involved in a dispute with the local money-changer (*sarraf*) leading to the incarceration of all of them and even possible executions. Through this description we do not get any direct information about Banarasidas himself. It only gives an insight into the execution of justice at the local level. Therefore, it is possible to argue that the *Ardhakathanaka* is an autobiographical memoir.

### **Stages of Human Life and the Title of the Text**

The title of the book grows out of the author's conception of human life and its stages, and allows us to view the vicissitudes of the author's own life. As the ideal span of man's life was considered to be one hundred and ten years, he called this work *Ardha Kathan* (half the story). The author specifies that he had narrated the events of fifty-five years of his life while he had another fifty-five years of life left in him (*baras pachaban e kahe, baras pachaban aur*).<sup>6</sup> We get more information about the title of the *Ardhakathanaka* from a 'kabitta' preserved in the *Banarasi Vilas*, in which Banarasidas divided man's hundred and ten years of life into a number of stages.<sup>7</sup> Childhood continues till ten years, followed by adolescence till twenty. By thirty years the person has a handsome physique, a sharp mind till forty and a powerful body till fifty. He keeps his eyesight till sixty, hearing power till seventy, virility up to eighty years. The sense organs function till ninety, till hundred years he remains in his senses. Then he may live for ten more years.

Banarasidas has applied this division of human life into stages to his own work also. The description of first ten years includes his birth, childhood and education. It was during his adolescence that he lived through a variety of experiences, which included the attainment of more knowledge and his involvement in *asikhi* (*ashiqi*), his marriage, syphilis affliction, getting fooled twice by ascetics, reaction at Akbar's death and finally his introspection. He reflects that just as childhood vanishes with youth, the evil in a man also goes off at a proper age on its own. This self-realization dawned on Banarasidas when he was nineteen years of age. His undisciplined youth was followed by a pious maturity and he turned his attention to religion.

Here, it would be worthwhile to assess the notion that Muzaffar Alam and Sanjay Subramanyam held that Banarasidas's perturbation caused by Akbar's death was the result of his being torn between Jainism and his worship of Shiva.<sup>8</sup>

Banarasidas had become a worshiper of Shiva for some time, but his perturbation should be attributed more to a feeling of insecurity that was associated with the death of any political head or patron. When his father's patron Rai Dhana, the *diwan* (finance minister) of the brother-in-law of Sulaiman Karrani, the governor of Bengal, died, he left Bengal in the disguise of a destitute. Therefore, it does not seem plausible to associate Banarasidas's sudden reaction at Akbar's death to his conflicting religious views. The third decade of Banarasidas's life was full of hectic business activities. After his adolescent waywardness had subsided, his father admonished him to enshoulder the responsibility of the family and sent him to Agra to do business. In this way the author's career in business commenced from the twenty-fourth year of his life in 1610.

### Language and Style

The language of the *Ardhakathanaka* is *brajbhasa* interlaced with *khadiboli*. The language is fluent and the poetic diction tight in construction. It is never ambiguous or contrived. There is a liberal use of similes. For instance, the author describes the death of his grandfather's second son, Ghanmal, who had been like a shade giving cloud to his grandparents, but the wind of time wafted him away unawares. His grandparents were desolate like a pair of denuded trees suddenly exposed to the scorching Sun.<sup>9</sup> Persian words have also been interspersed which are approximately ninety-one. To draw a sketch in a few, meaningful words is one of the qualities of Banarasidas's language.<sup>10</sup> Being a poet, he had an imaginative bent of mind which provided a literary flavour to his work. The narrative is presented in an interesting and attractive manner. It wins over the reader by transporting him to the very world of the author's intimate thoughts of his own life which are presented in a concise and coherent manner.

The narrative style of the *Ardhakathanaka* is anecdotal. The events are narrated in the style of

a story as - *sorahsai terai adhik, samai katha sunu meet*<sup>11</sup> (when Banarasidas's father Kharagsen travelled from Narwar to Jaunpur), *yeh saathe sambat ki katha, jyon dekhi main barni tatha*.<sup>12</sup> The description is like a story, complete in itself.

### The Audience

Since Banarasidas decided to make his work public, it will be appropriate to find out who the author was writing for. Mukund Lath's view that he addressed it to his *Adhyatma* friends and more particularly, to his five close companions, is rather unsatisfactory.<sup>13</sup> In verse six hundred and seventy-two, Banarasidas uses the expression *takii man ayii yeh baat, apno charit kaho bikhyat*.<sup>14</sup> The word *bikhyat* itself denotes that it was addressed to a wider public and not a select audience. He is fully aware that the wicked would laugh at it while friends would recite and listen.<sup>15</sup> Anchoring the *Ardhakathanaka* to a cultural tradition is rather difficult but the author certainly had a personal motive to share his varied adventurous experiences and partly to give vent to his pent-up emotions of losing all his children.

### The Author on Himself

Banarasidas was a businessman by profession and enjoyed the reputation of a knowledgeable person.<sup>16</sup> His thoughtful mind led him to categorize men into three types – people who hide the faults of others and highlight their merits, yet are vocal about their own demerits but hide their merits are good men. The middle category comprises of men who speak about the merits and demerits of others as well as their own. The third category is of the mean people who emphasize the demerits of others and hide their virtues while emphasize their own virtues and hide the vices. Banarasidas places himself in the middle category and does not extol himself to be a good man. He enlists his demerits with the same vigour as his merits. He claims that no one was more adept than him in composing *Adhyatmic* verses. He had knowledge of Sanskrit and Prakrit, besides other dialects, was forgiving by temper, tolerant and had a pure and

equanimous heart. His demerits included anger, pride and greed for wealth, small gains made him happy while loss caused him despair. He loved to poke fun and play the clown, revelled in narrating unutterable stories and broke into a dance when alone. The good in his character alternated with the bad. There were some perversities which he could not bring himself to share with anyone.<sup>17</sup>

Only on two occasions does he shy away from revealing the truth. The first was when the business of Banarasidas and his friend Narottamdas prospered and he refused to divulge the secret of this success. Banarasidas says that there are nine things which cannot be spoken about a person. These are: age, wealth, affairs of the household, deeds of charity, of glory, infamy, measures taken for health, sexual escapades and plans for future action.<sup>18</sup> Since wealth also fell in the ambit of these nine unutterables, Banarasidas desists from making it public. He was always vocal about his failures but when his business finally picked up, he chose to remain silent. Talking more about it would have certainly illuminated further the economic aspect of this work.

On another occasion he confesses to have committed a shameful act but refuses to share the details. This was the time when a plague broke out in Agra and people had to flee from there. The outbreak of the plague is described in the *Tuzuk-i Jahangiri*.<sup>19</sup> Banarasidas also took refuge in a nearby village of Azizpur, which was mostly inhabited by *brahmans*. He lodged in a house which was near the residence of a *sahu*, where he stayed alone. It was here that he committed a misdeed which he attributed to be the result of his past *karma*. Nothing is said about the specific act.

The work also provides an insight into the personality of the author.<sup>20</sup> In one instance, on account of his intelligence, Banarasidas along with fellow travellers managed to escape from the thieves by masquerading as learned *brahmans*. This encounter reveals the

confidence of a man who never bowed down when faced with adverse circumstances. Despite all the difficulties, Banarasidas kept up with his jovial nature, never missed a chance to mock at himself and never wallowed in self-pity.

There are instances in the *Ardhakathanaka* which reveal tender moments of his life such as Banarasidas's involvement in *asikhi* when he was about fifteen years of age and how he got over this passion and became a transformed man. No amount of exhortation from his parents and other elders could dissuade him from this passion. He stooped to stealing his father's money and jewels to please his beloved. He composed a book of poems on love called *Navarasachna*. This state of mind continued for two years. One day, while he strolled down the bridge over the Gomti, he recited some verses to his friends. Suddenly a thought disturbed him that when a man speaks a single lie, he suffers in hell while he was himself responsible for a whole book full of falsehood. How could he ever be redeemed?<sup>21</sup> On the spur of the moment, he threw the manuscript into the flowing river. His friends were greatly distressed at this but his father was glad to hear this news. Banarasidas himself felt that a remarkable change had come over him. Giving up his licentious ways he became a truly family man and pontificated that the impetus for reform always comes from within.<sup>22</sup>

### **Motives, Methods and Causation**

Banarasidas gives a simple reason for writing his autobiography - he thought of narrating the story of his life. For some people, writing an autobiography becomes a necessity when their experiences become a burden for them. For Rousseau it was the burden of guilt, so he wrote the *Confessions*. In his composition, Yeats informs us about the memories which haunted him. He felt that he needed to talk to somebody and so he penned his memories.<sup>23</sup> Besides the simple reason that Banarasidas gives, we can locate another reason for the genesis of the book. After the death of his two wives and nine

children, Banarasidas was left alone with his third wife. He expresses this feeling through an appropriate simile. The two of them were left like the stump of a tree when all its leaves had fallen down in autumn. The death of his ninth child (a son) left him devastated. He was bereaved to the extent that his heart felt bereft of all peace (*tritiya putra ko aii meech, Banarasi bahut dukh kiyo, bhayo sokso byakul hiyo*).<sup>24</sup> In a reflective mood he realized that as bonds diminish, peace comes, although men of this world are not aware of this truth. They associate affluence with the bonds and their absence troubles them.<sup>25</sup> The terrible loss of his nine children appears to have weighed heavily on him and may have provided another reason for narrating the story of his life. The author lays bare his life in a candid manner. Banarasidas never desires to be admired and dares to be equally truthful about his vices and virtues. Here, his intent invites comparison with Rousseau's who states in his autobiography *Confessions* that:

"I have told the good and the bad with equal frankness... I have shown myself as I was, mean and contemptible, good, high minded and sublime according as I was one or the other."<sup>26</sup>

The author is selective about his narration. Banarasidas claims to write whatever he could retain on the basis of what he heard and saw. When Banarasidas reviews the various events of his adventurous life he ponders over them in a reflective and didactic manner. On many occasions he attributes the outcome of an event to his past *karma*. In Jain ideology, the theory of *karma* is held responsible for good or bad consequences of an individual's actions. There can be no exemption from it.<sup>27</sup> When Banarasidas was afflicted by syphilis, he attributes the cause to his past *karmas* though we know that it was the result of his love exploits. When Banarasidas and his friends mocked at religion, the author held their past *karma* responsible for it. They indulged at it as long as the evil effects of their past *karmas* remained.

The pre-modern Islamic civilization was marked

by depersonalized literature harping more on ideal types due to social customs and religious values. Against this background, *Baburnama* has been seen as a rare work offering humanistic insights. Dale compares Babur's autobiographical-memoir with that of Benvenuto Cellini's work, both dealing with completely revealed individuals of the sixteenth century.<sup>28</sup> In the *Ardhakathanaka* also we find Banarasidas revealing his individuality in the most objective manner. Indeed, this could be the reason for writing the autobiography in the third person. We can attribute it to his effort of producing a work which could be more objective if he perceived the various events of his life from a distance. This provided the work with a critical angle. In this manner, Banarasidas evaluated his own experiences when he had become a mature person which shaped his own personality through its interaction with the outside world. He was a sensitive person which is reflected through his reaction to the death of Akbar, his first wife, his friend and partner Narottamdas, and his nine children.

### **The *Ardhakathanaka* as a Historical Source**

The *Ardhakathanaka* can be hailed as a document of historical importance for reconstructing the mercantile and social world of a middle-class Jain merchant. The space covered in the *Ardhakathanaka* is the geographical area of Agra, Jaunpur, Banaras, Allahabad and Patna, where Banarasidas and his father Kharagsen lived and carried out their business activities. This in turn provides us with valuable information about how business transactions were carried out and the various hardships faced by the merchants in a particular region. With the help of this work, we can reconstruct medieval mercantile economy. In this sense it is a document which retains immense historical value, something which has been hitherto difficult to comprehend given the fragmentary nature of Persian and European documentation on the subject.

Thus, we can conclude that though written

without any precedent, Banarasidas in his autobiographical-memoir – the *Ardhakathanaka* lays bare his life in a very candid manner. The work was composed with great introspection. It encapsulates the life of a common man, belonging to the middle class. We get an insiders view of the mercantile class and the various challenges faced by them. Therefore, it is a work with a rare flavour.

### References

1. Mukund Lath ed. & tr. *Ardhakathanaka as Half a Tale: A study in the interrelationship between autobiography and history (hereafter Half a Tale)*, Jaipur, 1981.
2. *Ibid.*, verse (hereafter indicated by v.) 3, p. 223.
3. *Ibid.*, v. 4, p. 224.
4. Although Persian words were used by Banarasidas, he never claims to have known the language. He was indeed adept in Sanskrit and Prakrit and their different dialects.
5. Roy Pascal, *Design And Truth In Autobiography (hereafter Design And Truth)*, London, 1960, pp.5,6.
6. *Lath, Half a Tale*, V. 664, p. 274.
7. *Ibid.*, *Half a Tale*, p. 211.
8. Muzaffar Alam and Sanjay Subrahmanyam, 'Witnessing Transition: Views on the End of Akbari Dispensation', in *The Making of History: Essays presented to Irfan Habib*, ed. K. N. Panikar, Terence J. Byres, Utsa Patnaik, New Delhi, 2000, p. 107.
9. *Lath, Half a Tale*, pp. 3,4, v. 19, p. 225.
10. Dr. Motichand, 'Ek asafal vyapari ki atmakatha', in *Premi ed. Ardha-Kathanak*, p. 18.
11. *Lath, Half a Tale*, v. 38, p. 226.
12. *Ibid.*, v. 209, p. 240.
13. *Ibid.*, p. xxxi.
14. *Ibid.*, V. 672, p. 275.
15. *Ibid.*, p. 96.
16. Bhagchandra Jain Bhaskar, *Jain Sanskriti kosh, Part III, Varanasi, 2002*, p. 363.
17. *Lath, Half a Tale*, p. 95.
18. *Ibid.*, p. 67.
19. *The Tuzuk-i-Jahangiri or Memoirs of Jahangir* tr. Alexander Rogers, ed. Henry Beveridge, vol. II, Delhi, Second edition, 1968, pp. 65-67.
20. Pascal, *Design And Truth*, p. 2.
21. *Lath, Half a Tale*, p. 40.
22. *Ibid.*, p.41.
23. Pascal, *Design And Truth*, p. 138.
24. Ramesh Chandra Sharma tr. 'The Ardh-Kathanak: A Neglected Source of Mughal History', *Indica Vol. 7, No. 2, September, 1970*, p. 118; *Lath, Half a Tale*, v. 640, p. 273. 29.
25. Sharma, 'A Neglected Source', p. 118.
26. As cited in Pascal, *Design And Truth*, p. 40.
27. Vilas Adinath Sangave, *Jain Religion And Community*, Mumbai, 1997, pp. 27, 28.
28. Stephen Frederic Dale, 'Steppe Humanism: The Autobiographical Writings of Zahir Al-Din Muhammad Babur, 1483-1530', *Journal of Middle East Studies*, 22, 1990, pp. 37, 38.

# Revisiting the Partition of Bengal, 1905: Press, Politics and Government

Anshal Tiger

Research Scholar, Aligarh Muslim University, Aligarh (Uttar Pradesh)



shodhshree@gmail.com

## Abstract

*The Partition of Bengal in 1905 unwrapped the new phase in the history of India. In December 1903, the first scheme for the dismemberment of Bengal was announced by the British Raj. It declared that the Chittagong and Dacca division would be separated from Bengal and annexed to Assam. Due to this, widespread agitation and mass meetings against the Partition proposal were held in the country. Within a few days, celebrated newspapers of the country such as Sanjivani, Tribune, Indian Mirror, Amrita Bazar Patrika, and Bengalee denounced the proposed division of Bengal. Congress also recorded its vigorous disapproval against this proposal. According to Lord Curzon, Viceroy of India, the proposed Partition was intended to improve the economic and administrative efficiency of the province. Despite the strong opposition by the Indians, on October 16, 1905, Bengal was officially partitioned. Therefore, a new province of 'Eastern Bengal and Assam' was created from the earlier province of Bengal. This dismemberment was considered as the 'National disaster' by Indian Press. The purpose of this study is to show a brief account of the Partition of Bengal through the eyes of the Indian Press. Additionally, an attempt is made in the light of the Indian Press to analyse the response of the British Raj and the Indian leadership.*

**Keywords:** Partition of Bengal, Agitation, Indian Press, Bengal, Vernacular Press, British Raj.

The year 1905 is one of the most memorable in the history of Bengal. It would be no exaggeration to say that it was an epoch-making year, leaving a profound and far-reaching influence on the public life of Bengal and the future of the country. It was the year of the Partition of Bengal.<sup>1</sup>

The above note presents the theme of the study. Although, during the concerned period, Bengal had become the nerve centre of India's national and political life and motivated the rest of the sub-continent in political aspirations and activities. In this regard, Lord Curzon communicated to John Broderick, the Secretary of State for India, that the "Calcutta is the centre from which the Congress party is manipulated throughout the whole of Bengal, and indeed the whole of India."<sup>2</sup> Although, Bengal in the 19<sup>th</sup> century was the largest and most populous province in India, comprising four large sub-provinces - Bihar, Chhota Nagpur, Orissa and Assam.<sup>3</sup> However, even after the Partition of Assam in 1874, Bengal remained the most extensive and populous province in British India.<sup>4</sup> Therefore, in 1905, the declaration concerning the Partition of Bengal unwrapped the widespread discontent in India and smashed the emotions of the natives. Therefore, from the Nawabs, Rajas, and affluent zamindars down to the ordinary man, collectively determined to continue their unyielding opposition to the Partition of Bengal.<sup>5</sup>

On December 12, 1903, the first scheme for partitioning of Bengal was announced, which declared that the Chittagong and Dacca division would be separated from Bengal and annexed to Assam.<sup>6</sup> While Viceroy of India, Lord Curzon, alleged that the proposed Partition was aimed to improve the

administration of the province. The British Indian Government advanced several explanations favouring the Partition, mainly it would provide relief to the overtaxed Lieutenant-Governor of Bengal.<sup>7</sup> And would also provide an effective administrative control over a vast province that was beyond the power of a single man.<sup>8</sup> The Indian Press criticised the arguments mentioned above, and *Rangalay* questioned that “we do not understand what the Government of India means by saying that the work of the administration of Bengal is now too heavy a burden for any one man.”<sup>9</sup> Another newspaper, *Bangavasi*, also denounced the Government argument and remarked that “no task is too heavy for a really capable man, while an incapable man finds even the lightest work much too heavy for him.”<sup>10</sup>

Initially, this proposal received little response from the leaders, but the Indian Press successfully renounced Lord Curzon's opinion that Bengal was actually a 'big charge' by pointing out that the same was the case with the other two Presidencies. In this regard, *Pioneer* pointed out that India itself was a 'big charge', but nobody had ever supposed for having two Governor-General instead of one.<sup>11</sup> On the other hand, *Hitwadi* measured that 'the loss of Chittagong, Decca and Mymensingh will be a serious loss to Bengal.'<sup>12</sup> *Amrita Bazar Patrika*, on the other hand, advised the general public to 'hold protest meetings in the towns and villages and prepare monster petitions signed by lakhs of people for submission to the Government.'<sup>13</sup> The *Sanjibani*, under the heading 'the Misdeeds of Lord Curzon,' opined that the:<sup>14</sup>

“Lord Curzon has done many unpleasant acts, and the Bengalis have borne all that with a heavy heart. But if he actually transfers the Decca, Mymensingh, Chittagong, Tippera and Noakhali districts to Assam, they will curse him for ever as their worst enemy...”

The Indian Press vehemently asserted that partitioning of the Bengali natives and severing its historical, social, and linguistic bonds would significantly jeopardise the people's intellectual, social, and economic advancement.<sup>15</sup> The *Bangavasi* clearly portrayed the response of the Press in this matter and noted that “there is universal opposition to the proposed dismemberment of Bengal. Not only have native newspapers opposed the project, but many Anglo-Indian papers have also done the same.”<sup>16</sup>

It is worth mentioning here that Calcutta was the capital of India, and large numbers of celebrated Indian newspapers like *Bengalee*, *Sanjivani*, *Hitwadi Bangabasi*, *Amrita Bazaar Patrika*, *Indian Mirror* etc., were published from here under the editorship of eminent personalities. Chandrika Kaul acknowledged this cluster of editors as the 'band of fearless editors.'<sup>17</sup> And these newspapers were profoundly opposed to the 'division of the Bengali race and expressed unwavering hostility to any partition in general terms.'<sup>18</sup>

Lord Curzon, however, paid personal visits to the districts of Chittagong, Dacca, and Mymensingh. In February 1904, he appeared at a number of public forums to dispel the myths that had emerged as a result of the Partition scheme and convinced the people that they would gain greatly from it.<sup>19</sup> Meanwhile, the Indian National Congress annual session took place on December 26, 1904, at Bombay under the presidency of Sir Henry Cotton and recorded its vigorous disapproval “against the proposal of the Government of India, for the partition of Bengal in any manner whatsoever.”<sup>20</sup>

On the other hand, the Secretary of State accepted the final Partition scheme at the end of June 1905, and was extensively discussed by the press. This news received condemnation by the Indian Press. In this regard, *Daily Hitwadi* pointed out that:<sup>21</sup>

“.....So much agitation, protest, appeal and anguish on the part of

the Public is gone for nothing in the estimate of the hard-hearted officials. Lord Curzon is now satisfied with his work of splitting up the Bengali people. We do not know in what an evil moment he set foot on these shores, but he leaves the country after immortalising his administration by bringing the greatest amount of disrepute on British rule in India.”

However, the news regarding the approval of the Partition scheme by Lord Curzon appeared in *Sanjibani* on July 6, 1905.<sup>22</sup> It also appeared in the *Bengalee* on the same date.<sup>23</sup> After this news, a memorial containing 70000 signatures against the partition plan was despatched to the Secretary of State.<sup>24</sup>

Therefore, on July 20, 1905, a revised and official plan for the Partition of Bengal was issued by Colonial Government.<sup>25</sup> This move mutilated the linguistic unity of Bengal and released a spontaneous and primitive disturbance in the country. In the S.N. Banerjea words:<sup>26</sup>

“The announcement fell like a bomb-shell upon an astonished public. But in our bewilderment, we did not lose our heads. We made up our minds to do all that lay in our power, with the aid of constitutional means at our disposal, to reverse, or at any rate to obtain a modification of, the Partition.”

As a result, *Sanjibani* published a lengthy account and appealed for the boycott of British goods. It further published a pledge urging the nation to use local commodities and marked the following words:<sup>27</sup>

“The news has driven the Bengali public completely out of their senses... Lord Curzon has triumphed. His desires has been fulfilled, while the prayers of 80

million Bengalis have proved of no avail.... A feeling of the greatest discontent has come to prevail in the country..... The Lord Curzon has ignored the agitation of the Bengalis. But his Excellency will soon see this effect of this Act of his...”

“The period of mourning will continue until the sundered parts are reunite..... During this period of National mourning, the use of articles of foreign make will be regarded as the greatest sin. *Karkach* will be preferred to foreign salt, molasses to foreign sugar.”<sup>28</sup>

On the other hand, as per this revised proclamation of the Partition plan:<sup>29</sup>

“A new province will be created, with the status of a Lieutenant-Governorship, consisting of the Chittagong, Dacca and Rajshahi Divisions of Bengal, the district of Malda, the State of Hill Tipperah, and the present Chief Commissionerhip of Assam. Darjeeling will remain with Bengal. In order to maintain associations which are highly valued in both areas, the province will be entitled Eastern Bengal and Assam. Its capital will be at Dacca with subsidiary headquarters at Chittagong. It will comprise an area of 106,540 square miles and a population of 31 millions, of whom 18 millions are Muhammadans and 12 millions Hindus. It will possess a Legislative Council and a Board of Revenue of two Members, and the jurisdiction of the High Court of Calcutta is left undisturbed. The existing province of Bengal, diminished by the surrender of

these large territories on the east and of the five Hindu States of Chota Nagpur, but increased by the acquisition of Sambalpur and the five Uriya States before mention, will consist of 141,580 square miles with a population of 54 millions of whom 42 millions are Hindus and 9 millions Muhammadans. In short the territories now composing Bengal and Assam will be divided into two compact, and self-contained provinces, by far the largest constituents of each of which will be homogeneous in character, and which will possess clearly defined boundaries and be equipped with the complete resources of an advanced administration.”

Furthermore, the indigenous took *Sanjivani's* appeal seriously, and subsequent protest meetings were held in several towns of Bengal. *Bengalee*, edited by Surendra Nath Banerjee, reminds the Government to abandon the Partition plan otherwise the agitation would increase many folds.<sup>30</sup>

People's anger and mass agitation against the Partition of Bengal turned into the *Swadeshi* movement after the historic Town Hall meeting in Calcutta on August 7, 1905. The meeting started at 5 P.M. under the chair of Maharaja Mahindra Chandra Nandi, who described the Partition as the “greatest calamity which has fallen before the Bengali-speaking race since the commencement of British rule.”<sup>31</sup> Five resolutions were passed in this meeting, but the third resolution moved by Narendra Nath Sen, editor of the *Indian Mirror*, became the famous Boycott Resolution of August 7, 1905.<sup>32</sup> As a result of this convention, the *Swadeshi* movement has officially begun. The *Hitwadi* penned that “the demonstration in the Town Hall shows how severe has been the blow given by the hard-hearted authorities on the naturally soft

hearts of the peaceful and loyal people of Bengal.”<sup>33</sup> The *Sanjibani* observed that “the six thousand people were present at this meeting.”<sup>34</sup>

The Partition of Bengal was officially implemented on October 16, 1905, and Bengal was divided into two pieces.<sup>35</sup> The programme for this day had already been prearranged by national leaders and circulated through the Press. It was observed as a day of national mourning, fasting and oath-taking to continue the fight against Partition.<sup>36</sup> The *Sanjibani* appealed the following:<sup>37</sup>

“1. No fire will be lighted in the Kitchen of any Bengali, male or female, Hindu or Musalman.

2. All will live on fruits or Milk or will fast and give up their minds to Prayers to him who is King over Kings, who is the Saviour of the fallen, for His blessings upon the motherlands.

3. In every town and village in Bengal, Hindus and Musalmans, and if possible, Christians will assemble and take upon themselves the resolve to endure terrible hardships, to eschew foreign-made things, and to devote their wealth and influences to the production of country-made goods.

4. *Rakhis* (wristlets of yellow thread) will be put on the arms of males and females, and all Bengalis, whether Hindus or Musalman, whether of East Bengal or of West, will promise to use it in times of danger and stress.

5. Mourning dress will be worn.

6. All Bengalis should from that day resign all honorary posts under Government and let them all refrain from joining in any

festivities for one year from that date.”

As far as the Indian Press is concerned, it played a commendable role throughout this period. Famous journalists and their publications, such as Surendra Nath Banerjee of the *Bengalee*, Narendra Nath Sen of the *Indian Mirror*, Krishna Kumar Mitra of the *Sanjivani*, Nagendra Nath Ghosh of the *Indian Nation* etc., not only raised the problem but also involved in organising meetings and protests. On the other hand, the Anglo-Indian papers in the initial stage of the Anti-partition agitation supported the movement, but this attitude changed after some time. For example, after September 1905, the *Englishman* of Calcutta, who had before opposed the Partition, launched the constant slanderous campaign against the *Swadeshi* Movement.<sup>38</sup> However, it is pretty fascinating to note that the *Englishmen* in an editorial strongly criticised Lord Curzon's remark that the Bengal agitation against the partition proposal was artificial in character. At the same time, the *Englishmen* described the Bengal agitation as natural, rooted in deep emotions and not an artificial agitation.<sup>39</sup>

To sum up, we can say that the Partition of Bengal in 1905 came as the great shock to the Bengalis and the Nation. Lord Curzon's attempt to separate Bengali natives met widespread public outrage and condemnation from the Indian Press. In the middle of 1905, when he decided to proceed with the Partition plan, nearly every newspaper questioned his decision. Additionally, the above-discussed reactions of the Press specifies that the newspapers did their utmost to oppose the Government's decision and significantly influenced the opinions of the public. After the revolt of 1857, Partition agitation in the form of the *Swadeshi* Movement was the first mass protest against the Government that advocated for the boycott of British goods and generated a parallel national economic structure to overthrow the British Raj. However, in 1911, the Partition of Bengal was annulled by the Government.

## References

1. Banerjea, S.N., *A Nation in Making*, Oxford University Press, London, 1927, p. 184.
2. Johnson, Gordon., *Partition, Agitation and Congress: Bengal 1904 to 1908. Modern Asian Studies*, vol. 7, no.3, 1973, p. 549., [www.jstor.org/stable/311853](http://www.jstor.org/stable/311853)
3. Majumdar, R.C., ed., *History and Culture of the Indian People: Struggle for Freedom*, vol. XI, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 2003, p. 17.
4. Banerjea, S.N., *op.cit.*, p. 184.
5. Johnson, Gordon., *op.cit.*, p. 551; Majumdar, R.C., *op.cit.*, p.19
6. Sanyal, Shukla., *Revolutionary Pamphlets, Propaganda and Political Culture in Colonial Bengal*, Cambridge University Press, Delhi, 2014, p.12.
7. In his letter of December 3, 1903 to Chief Secretary, Government of Bengal, H. H. Risley, Secretary to the Government of India, pointed out that the Lieutenant-Governor of Bengal was called upon to administer an area of 189,000 sq. miles with a population of 78,493,000, and a gross revenue of 1,137 lakhs, and discussed various measures with a view to lightening the excessive burden now imposed upon the Government of Bengal by the increase of population, the expansion of commercial and industrial enterprise and the growing complexity of all branches of the administration., Cf., Majumdar, R.C., *op.cit.*, p. 18
8. Banerjea, S.N., *op.cit.*, p. 184
9. December 20, 1903, Bengal Native Newspaper Report, December 26, 1903, p. 1107, hereafter BNNR.
10. BNNR, December 26, 1903, p. 1104.
11. January 1, 1904.
12. December 18, 1903, BNNR, December 26, 1903, p. 1103
13. Cf., Sanyal, Shukla., *op.cit.*, p.12.
14. December 17, 1903, BNNR, December 26, 1903, pp. 1101-02
15. For the reactions of Press See also., Majumdar, R.C., *History of the Freedom Movement in India*, vol. II, Firma K.L.M. Pvt. Ltd., Calcutta, 1963, pp. 8-9.
16. Jan 2, 1904, BNNR, January 9, 1904, p. 45

17. Kaul, Chandrika., *Washing Dirty Linen in Public, Media History*, vol. 15, no. 4, 2009, p. 387.
18. Cf., Sanyal, Shukla, *op.cit.*, p.12.
19. John R McLane, *The Decision to Partition of Bengal in 1905, Indian Economic and Social History Review*, vol. 2, No. 3, July 1965, pp. 221-237.
20. *Report of the 20th Indian National Congress, Bombay, 1904, Resolution no. XIV*, p.222.
21. Jun 23, 1905, *BNNR, July, 1, 1905*, p. 628.
22. *Sanjibani, July 6, 1905; Niketan, Biplabi, Hundred years of Freedom Struggle, 1847-1947, Calcutta, 1985*, p. 38
23. *Bengalee, July 6, 1905.*
24. *Dacca Gazette, Jul 10, 1905., BNNR, July, 15, 1905*, p. 674.
25. *Banerjea, S.N., op. cit., p. 187*
26. *Ibid.*
27. *Jul 13, 1905, BNNR, July, 22, 1905*, pp. 693-97.
28. *BNNR, July, 22, 1905*, p. 695.
29. *The Gazette of India, No. 29, July 22, 1905 (July-December), Simla, p. 523., National Library of India.*
30. *Bengalee, September 1, 1905.*
31. *Majumdar, R.C., History of the Freedom Movement in India, vol. II, Firma K.L.M. Pvt. Ltd., Calcutta, 1963*, p.14.
32. *Mukherjee, H & U., India's Fight for Freedom, Calcutta firm K.L. Mukhopadhyay, 1958*, pp. 44-46; *Majumdar, R.C., History of the Freedom Movement in India, vol. II, Firma K.L.M. Pvt. Ltd., Calcutta, 1963*, p. 14.
33. *August 11, 1905 BNNR, August, 19, 1905*, p. 800.
34. *August 10, 1905, BNNR, August, 19, 1905*, p. 799
35. *Majumder, R.C., History of the Freedom Movement in India, vol. II, Firma K.L.M. Pvt. Ltd., Calcutta, 1963*, p. 21.
36. *Banerjea, S.N., op. cit., pp. 212-213.*
37. *October 12, 1905, BNNR, October 21, 1905*, p. 1007. *A song composed by Rabindranath Tagore was also published by the Sanjibani of October 11, 1905.*
38. *See, Banerjea, S.N., op. cit., p. 188*
39. *Sanjibani, July 20, 1905.*



Indian history speaks that women are considered as a divine force but at the same time the multicultural Indian society, places women at different adverse positions. Thus there is no uniform status of women in Indian society. Women on one hand are considered as Goddess, symbol of “*Shakti*” while on the other hand she is ridiculed. Empowering women does not mean imparting them with rights on paper. It is a tool to let them feel secure while exercising these rights. It is about letting her feel that she is very much part of this society and are not at the mercy of men.

Injustice in the name of inequality cannot be removed from the society till the evil of gender biasness persists. Until the time they are not empowered, they won't feel safe and secure. This in turn will affect the growth of economy not only of a country but also across the globe, as that chunk of population which constitutes half of it won't be allowed or won't be willing to work for its betterment.

### **Challenges in Empowering Women**

The autonomy of women and the improvement of their political, social, economic and health status is a highly important end in itself. In addition, it is essential for the achievement of sustainable development. For example when both men and women work in partnership and share the responsibilities equally for the care and nurturing of their children and maintenance of the household, this will give productive results. Her challenges can be broadly classified into those which are faced by her body, (health and hygiene) and those which are society centric. Following are bodily challenges:

- 1) *Excessive work*: women are facing threats to their lives, health and well-being as a result of being overloaded with work and responsibilities.
- 2) *Increase in crime rate*: gender-based violence are increasing even after mechanisms devised to protect women. The perpetrator carries a sense of power, misogyny and similar attitudes,

or violent nature, especially against women, this has though been dealt with punishments yet there has been significant increase in crime. This forces majority women to choose subordination as against men.

- 3) *Sanitization*: Women are forced to adopt unhealthy menstrual practices due to lack of awareness and proper sanitization mechanism. Be menstrual or open defecation where she has to wait for dark so that she is not seen by others, she is denied of proper sanitization.
- 4) *Health and Nutrition*: Maternal mortality rate is also a cause of concern. She is not only denied proper nutrition but also forced to do domestic chores. Still a girl child is not welcomed by most of the families and hence her health is compromised.

Those challenges which does not let her hold a place in society or are society centric:

- 5) *Lack of influence*: Women lack the power of decision making be it on personal front or professional. Mostly it is backed by a male superior. Example “Karta” in a joint Hindu family should always be a male. In addition to this a woman has to have a male protector throughout her life; father, then husband and after him, her son.
- 6) *Lack of education*: In most regions of the world, women receive less formal education than men. Major dropouts from school are of girl child. Only 39% of Indian women attend primary schools. Most of these girls drop out of school because of financial reasons; difficulties faced during menstruation, early marriages, domestic chores or because of the mindset that educating a girl/woman would yield no return.

These challenges together create a negative

impact on the society thereby yielding less positive outcomes. The fundamental human rights involving education, skills, work, her dignity and even her own life, is required to be enforced correctly so that women can meet such challenges. A proper nurturing through better education, awareness is required. A lot needs to be done, in order to make her feel safe in her own skin. Various bodies have been dealing with the issues related to women and help her in empowering them both at national and international level.

### **Indian Perspective on Empowering Women**

The Indian government recognizing women issues have long been working on their rights. It drafted several policies, Acts to provide them with various facilities as well as penalize the perpetrator of such offences. With these initiatives government has emphasized on protecting women, to let her live an independent life and their ultimate contributions to the country's economy.

#### **I. Policies and Schemes by Government:**

The census of 2011 showed severe decline in the ratio of girl child, 918 against 1000 boys as compared to 931 girls in 1991. The governments have over a period of time implemented schemes to empower women, considering her plight:

1. Saving girl child through *Beti bachao, beti padhao scheme*, to reduce the gender gap prevalent in our society.
2. To educate her by making savings in her name so that she could withdraw it for her higher education.
3. To help women (including rural women) learn and develop skills, in order to generate employment for them. The schemes even target to help them in establishing their own business, by providing small loans to rural women and help the other women entrepreneurs, so that they are motivated in expanding their business, thereby providing employment.

4. To provide accommodation to working women with facility of daycare for their children.
5. To provide monetary help to the pregnant and lactating mothers for better nutrition and good health of both mother and child.
6. To provide her with legal help and psychological counseling.
7. To award her for the courage shown in various sects.
8. To help the deserted women in need of food, clothing, shelter, be it a victim of crime, or a widow, or women prisoners released from jails.

#### **II. Constitutional and other legal Provisions**

For healthy functioning of a democracy and for progressing economy the patriarchal blocks needs to be removed, eventually leading to gender equality. The Constitution of India authorizes the State to empower women by adopting measures favorable to her. To counterbalance the potential socio-economic, educative and political disadvantages faced by women, framing women oriented laws will always be pro society. The Indian laws are not gender specific however those provisions which specifically affect women are subject to revision and amendment as per the emerging trends. This is done to move the society at a pace which is required as per the emerging trends.

Articles 14, 15, 15(3), 16, 39(a), 39(b), 39(c) and 42 of the Constitution of India specifically deal with the empowerment of women. The 73rd and 74th Amendments (1993) to the Constitution of India have provided for reservation of seats in the local bodies of Panchayats and Municipalities for women, laying a strong foundation for their participation in decision making at the local levels.

In this light several Acts are enacted and commissions are set up to safeguard the interest of women. For instance the Indian Penal Code (IPC) punishes offences against women under

Ss.302/304-BIPC, S.354 IPC, S. 354-A IPC, S. 498-A IPC. There are specific Acts like Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013, Protection of Women from Domestic Violence Act 2005, Dowry Prohibition Act 1961 and several others which deal with cases of domestic violence, indecent representation of women, maternity laws and the like. The purposes of various legislations are to provide legal help to every woman so that she could cope up with atrocities, protect her from victimization, and grant her equal pay for equal work. This is done for their safety and to promote their participation in development of society.

Nonetheless a lot needs to be done. There exists a wide gap between the goals enunciated in the Constitution and several other legislations, policies, programs and related mechanisms on one hand and the ultimate truth about the status of women in India, on the other. The Judiciary highlights those gaps for governments to devise a mechanism for providing justice to the victims of crime.

### III. Judicial Approach in empowering women

The judiciary has always played a pivotal role in empowering women with the rights guaranteed by the Constitution of India, in order to uplift their status. The Courts lay down principles based on the need of the society thereby playing the role of guardian of the Constitution. This in turn helps in three ways:

- i. Justice to the aggrieved,
- ii. Precedence setter,
- iii. Guidelines for law framing are stated and implementation is looked into.

The judiciary has always adopted the progressive approach, like granting women the right to practice religion of her choice and that of marriage accordingly. Also, in the recent case of *Indian Young Lawyer's Association v. State of Karnataka*, the Apex Court struck down a long surviving practice that disallowed girls and women in the age group of 10-50, from entering

the *Sabarimala temple* in Kerala. The verdict stated that the temple rule violated women's right to equality and right to worship. Prejudice against women based on notions of impurity, which is a form of untouchability, associated with menstruation is not a fair practice. Socially excluding them is violative of the Constitution of India.

In cases of crimes against women, the Courts have always condemned the act of compromise and responded to the society's cry for justice against the criminals. A strict approach has been adopted in cases which injure the body, mind, dignity of a woman and impair the soul of each woman. As in the case of *Vishakha vs. State of Rajasthan*, the aim of the Supreme Court had been to promote gender equality and provide women with a safe environment at workplace, free from sexual harassment. The guidelines required workplaces to have women cell to take effective steps to prevent sexual harassment, but its implementation is questionable, even though government has enacted the 2013 Act of sexual harassment. Also in *Laxmi v. Union of India*, the Court laid down strict guidelines to regulate the sale of acid. The guidelines required valid identity proof for purchase, imposed age restriction for selling acid along with several other such guidelines which restricts the sale of acid throughout the country. However, its strict adherence is still a subject of dispute.

However the Courts have always considered the question of implementation of policies or guidelines. For instance, the Supreme Court directed the governments for proper enactment and implementation of the Pre Natal Diagnostic Techniques Act to curb increasing cases of female feticide and the widening gender gaps thereby. Hence it imposed a ban on advertisements related to pre-natal sex determination techniques.

In order to advance women's right to achieve gender equality in India, the Apex Court set aside the arbitrary practice of talaq-e-bidat or triple talaq in the case of *Shayara Bano*. The

irrevocable and instant form of Talaq allowed certain Muslim men to divorce their wives unreasonably in most of the cases. It was held to be violative of the Constitution of India obstructing a woman's rights, freedoms, sacrificing her dignity. The judgment primarily focused on eliminating gender stereotyping. Hence, the government introduced an Act criminalizing triple talaq.

The case which raised serious questions on the nature of protection available to Indian women commonly known as *Nirbhaya case* invited nationwide protests and ultimately the Criminal Laws were amended to impose harsh punishments. Still it hasn't created sufficient deterrence as crimes against women have increased. Even though there has been an improvement in the number of women willing to report a crime, the critics argue that the legal system remains slow to hear and prosecute rape cases.

### **International Perspective**

Advancement and protection of the women's rights have been one of the primary concerns of various National and international organizations including the United Nations Organizations. Thus ultimately upholding the human rights of all as gender injustice is human rights violation. In order to empower women and recognize them universally in strict legal sense; granting them equal rights, freedoms and opportunity as that to men are essential. This is vital to ensure that the purpose of human rights is being served to what it is dedicated to.

Several declarations and conventions pioneer towards protecting the rights of women. Example the Convention on Elimination of all Forms of Discrimination Against Women 1979 (CEDAW) prohibits discrimination, to abjure violence against women. This practice includes eliminating violence even against women prisoners. Several initiatives are taken at international front by various organizations. The *United Nations women* launched a new campaign in the year 2020 "*Generation Equality-realizing*

*women's right and an equal future*". This theme marks the 25th anniversary of the Beijing declaration and platform for action. It was also the theme for the International Women's Day for the same year. The objectives behind this theme are:

- 1) Demanding equal pay for equal work,
- 2) Highlighting *Goal 5* of Sustainable Development Goal which states about equal sharing of unpaid care and domestic work,
- 3) To eliminate and discourage all forms of violence against women including sexual harassment
- 4) Provide more health care services which can be availed by them, on time.
- 5) Their equal participation in decision making areas of life like political participation.

### **Conclusion**

It can be safely said that women empowerment is the need of the hour in order to build up a strong economy. Women are capable and strong enough in decision making. Gender disparity is wrong on so many levels, as it restricts the deserving individuals to strive towards excellence and prevent them to live a fearless and independent life. She may even set forth an example for others and provide a platform to others where the others may excel. This way such women even fulfill their Fundamental Duty enshrined under Art. 51A(j) of the Constitution of India which states about excelling in human endeavors, individually and collectively for the growth of nation. Consequently women will be empowered to proceed towards their goals, thus making this world a better place to live in. It will in turn be a boon to the society helping in its development.

To let her know her worth, to boost her confidence and to grant her freedom to choose what she wants regarding their private and professional choices is the only way, society can let a woman breathe. Empowering women will not only help in building a stronger economy, but

also achieve internationally agreed goals for development and sustainability. Eventually it will improve the quality of life of families and standard of living in general.

It is submitted that paramount importance to the elimination of poverty, illiteracy and ill health amongst women should be given. By eradicating those practices which are discriminatory and derogatory towards women, any society can prosper fruitfully. Such mechanisms need to be devised which assists women in realizing their rights, including those which relate to reproductive and sexual health. Appropriate measures need to be adopted to improve women's ability to earn income beyond traditional occupations, so that they can be economically independent. This requires proper implementation of equal pay for equal work at all stages. Maximum awareness amongst the general masses is required, proper training and teaching needs to be done, to educate the people on this subject. These are some of the many initiatives which can be implemented on a larger scale to achieve women empowerment.

### References

1. [https://www.un.org/en/ecosoc/docs/pdfs/10-50143\\_\(e\)\\_\(desa\)dialogues\\_ecosoc\\_achieving\\_gender\\_equality\\_women\\_empowerment.pdf](https://www.un.org/en/ecosoc/docs/pdfs/10-50143_(e)_(desa)dialogues_ecosoc_achieving_gender_equality_women_empowerment.pdf)
2. <https://fortune.com/2019/05/16/fortune-500-female-ceos/> As of June 1, 33 of the companies on the ranking of highest-grossing firms will be led by female CEOs for the first time ever.that sum represents a disproportionately small share of the group as a whole; just 6.6%.
3. *Manu Smriti (Code of Manu)*
4. *Law Relating to Women & Children*, Dr. S.C. Tripathi & Vibha Arora, Central Law Publications, 6th Ed., 2015
5. *UN Declaration on the Elimination of Violence Against Women states, "violence against women is one of the crucial social mechanisms by which women are forced into a subordinate position compared with men."*
6. *[Beti Bachao Beti Padhao]* <https://wcd.nic.in/bbbps-chemes/about-scheme> accessed on 04/07/2020

7. *[Beti Bachao Beti Padhao]* [Sukanya Samridhhi Yojna] [http://www.nsiindia.gov.in/InternalPage.aspx?Id\\_Pk=89](http://www.nsiindia.gov.in/InternalPage.aspx?Id_Pk=89) accessed on 04/07/2020
8. *[Rashtriya Mahila Kosh]* <https://rmk.nic.in/introduction-0> accessed on 07/07/2020
9. *Support to Training and Employment Programme for Women (STEP)* <https://wcd.nic.in/schemes/support-training-and-employment-programme-women-step#:~:text=About%20Scheme&text=The%20STEP%20Scheme%20aims%20to,and%20above%20across%20the%20country.> [Mahila E Haat] <http://mahilaehaat-rmk.gov.in/en/about-e-haat/> accessed on 05/07/2020
10. *[working women hostel scheme]* <https://wcd.nic.in/schemes/working-women-hostel> accessed on 05/07/2020
11. *[Pradhan Mantri Matru Vandana Yojana]* [https://wcd.nic.in/sites/default/files/PMMVY%20Scheme%20Implementation%20Guidelines%20\\_0.pdf](https://wcd.nic.in/sites/default/files/PMMVY%20Scheme%20Implementation%20Guidelines%20_0.pdf) accessed on 07/07/2020
12. *[One Stop Centre Scheme]* <https://wcd.nic.in/schemes/one-stop-centre-scheme-1> accessed on 06/07/2020
13. *[NARI SHAKTI PURUSKAR]* [https://wcd.nic.in/sites/default/files/Paraforwbsite\\_0.pdf](https://wcd.nic.in/sites/default/files/Paraforwbsite_0.pdf) accessed on 10/07/2020
14. *[Swadhar Greh scheme]* <https://www.india.gov.in/spotlight/swadhar-greh-scheme> accessed on 06/07/2020
15. *Women & Law*, Krishna Pal Malik, Allahabad Law Agency, 1st Ed., 2009, p. 40.
16. *Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986 Equal Remuneration Act, 1976 Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013, Dowry Prohibition Act 1961, Protection of Women from Domestic Violence Act 2005, Immoral Traffic (Suppression) Act (SITA) (1956) Medical Termination of Pregnancy (MTP) Act, 1971*
17. *Shafin Jahan v. Asokan K.M & ORS 2018 SC 343*
18. *Writ petition (Civil) no. 373 of 2006*
19. *Shimbhu & Anr. Vs. State of Harayana, 1 CRIMINAL APPEAL NOS.1278-1279 of 2013*

20. *Dhananjay Chattarjee vs. The State of West Bengal* 1994 SCR (1) 37, 1994 SCC (2) 220
21. AIR 1997 SC 3011
22. *The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013* i
23. *Laxmi v. Union of India* 2014 4 SCC 427
24. *Centre for Enquiry into Health and Allied Themes (CEHAT) Vs Union of India*(2003) 8 SCC 406
25. *Shayara Bano and others v. Union of India and others* Writ Petition (C) No. 118 of 2016
26. *Mukesh & Another v. State for NCT of Delhi*, 2017)
27. *The United Nations and Human Rights* (UN News Letter, New York, 1984), p. 184.
28. *Universal Declaration of Human rights 1948, Convention on Elimination of Discrimination against Women 1967, Declaration on Elimination of Violence against Women 1993*
29. <https://www.unwomen.org/en/06/07/2020>
30. <https://www.undp.org/content/undp/en/home/sustainable-development-goals/goal-5-gender-equality.html> accessed on 14/07/2020.
31. *to strive towards excellence in all spheres of individual and collective activity so that the nation constantly rises to higher levels of endeavor and achievement; Part IVA Constitution of India.*

# Peasant Protest Against Feudalism (With special reference to Jat Protest in Jodhpur State)

**Dr. Suresh Kumar**

Assistant Professor, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*The Peasant movement against jagirdar (Land lords) and feudal system (Mainly against lag-bag and beggar system) in Jodhpur state was more impactful than other areas of Rajputana States. In Jodhpur State, Peasant movement was organised and lead by Jodhpuri Jats more especially from Nagauri Jats. This jodhur Peasant movement was structurally autonomous But marwar lok parishad was great helper and Baldev ram mirdha lead this movement with the marwar kishan sabha in final phase. This movement was started against lag-bag and beggar system but in final Phase. They demanded abolition of Jagirdari system. In this research Paper, the Journey of this peasant movement is described with including all other political and social aspects.*

**Keyword:** Peasant, Jagir land, Beggar, Lag-Bags, Thikanas, Political elite, Jati Panchayats, Pargana.

**T**he peasant Movement in Jodhpur State was much more cohesive than were the Jat Movements in other areas of the Rajputana States. It was organized and managed by Jodhpuri Jats almost exclusively from the area of Nagaur District. Until the creation of the Marwar Kisan Sabha in 1946, the movement was informally organized and was exclusively oriented towards achieving change within the cast and expanding the capacity and opportunity of caste members to engage in occupations outside the agricultural sector.

The Jodhpur Peasant Movement was structurally autonomous. It becomes affiliated with the Marwar Lok Parishad, and it was not responsive to the more direct overtures of political activists from the British provinces.<sup>1</sup> Also in marked contrast to the Shekhawati and Bikaner case, individual Jats did not Participate in urban political movements in Jodhpur State or as students in the Universities of British India.<sup>2</sup>

In 1929, a movements was again started by the Marwar Hitkarni Sabha to remove the various grievances of the Peasants under the leadership of J.N. Vyas. The prominent workers of the Sabha were Anand Raj Surana, Bhanwar Lal Sarraf and Hem Chandra Chhangani.<sup>3</sup> Jodhpur State covered a vast area about 34,963 sq. miles in which the Jagir lands covered about 1300 — being the highest in erstwhile Rajputana. The sufferings of the Peasants in Marwar was greater also because of the unproductive nature of the soil. Over and above the payment of half the share of the produce as land revenue. The Peasants had to perform begar and pay several Lags even to the extent of 136 in the Jagir areas of Marwar.<sup>4</sup>

The Marwar Lok Parishad mobilised the peasants on the question of Lag-Bags and revenue in Jagir areas. But this time many Jat did not affiliated to Lok Parishad. The Lok Parishad organised several meetings in the Jagir villages, where the peasants were persuaded not to pay illegal Lag-Bags to the Thikanas.<sup>5</sup>

The organization and timing of the Peasant Movement in Jodhpur was partially affected by its peculiar

relationship of Jats with the State Darbars. Unlike the community in most other State of Rajputana Jodhpuri Jats enjoyed institutional representation in the State Government. This access was centralized and was provided and largely managed by Baldev Ram Mirdha, one of the first Jats in Jodhpur to matriculate from a school where English was the medium of instruction, and who rose through the ranks to achieve the strategic position of Deputy Inspector of Police in Jodhpur State.<sup>6</sup> Because of his training and vocation, Mirdha promoted Jat participation in government jobs and in the pursuit of education to prepare roles in public life. It was achieved through institutional representation and pressure rather than through protest, agitation, and violence. He has been described by members of his family and close associates as having been a loyalist to the end.<sup>7</sup>

It was largely because of Mirdha's position and encouragement that positions were made available for Jats in the State Services, primarily in the police and railway departments.<sup>8</sup> There were also two Jat companies in the State Armed Forces (Sardar Infantry), recruited primarily from the Nagaur area, which were disbanded during the Second World War after they revolted against the replacement of their Jat commanding officer by a Rajput.<sup>9</sup> Baldev Ram Mirdha was also successful in acquiring state authorization and grants for establishing and subsidizing secondary schools and hostels for Jat students. Jat schools and Jat boarding houses were established in Merta, Nagaur, Rol, Kuchera, Parbatsar, Didwana, and Barmer as a result of these efforts.<sup>10</sup>

The experience of living and studying together in an alien urban world induced a Spirit of comradeship among Jat students, and this has been an important factor in Maintaining the cohesiveness of the Jat political elite from this area in post-independence politics. The founders and leaders of the Marwar Kisan Sabha and the dominant Jat political leaders in post-

independence politics all either had held positions in the State Services or had attended these educational institutions and lived in these community hostels.<sup>11</sup>

In Jodhpur, as well as Shekhawati and Bikaner, there was minimal opposition within the Jat community of the objectives of the social and political reformers, and one of the most important reasons for this was the character of traditional political organization of the Jat caste. Unlike many castes, structures of power and authority in traditional Jat society were diffuse.<sup>12</sup> The traditional Jati Panchayats of the Jats in these areas were reportedly adhoc rather than permanent and hereditary in character. "Accepted" leaders were called upon at the time of disputes to pass judgement, and cases have been reported where there was wide participation in these deliberations. There was no traditional elite within the cast which rigorously opposed the advocates of modernization and change.<sup>13</sup> The "accepted" leaders in the caste increasingly became those who achieved positions in accordance with the "Modernist" aims to which the Jat movement aspired and the dominant leaders of the Kisan Sabhas and the Nagaur Jat leaders in post-independence political have been those who were educated or had held positions of status and gain in the "out side" world prior to 1947.

During the early 1940s there was considerable unrest among the Jat community over the insecurity of land tenure and the excesses of Jagirdars in exacting rents and various forms of ancillary taxes. The Jagirdars grew desperate, particularly against the workers of the Marwar Lok Parishad and Marwar Kishan Sabha. The Jagirdars of Pargana Jetaran, Bilara, Sojat, Balesar and Shergarh held meetings and decided that if the workers of the Lok Parishad and Kishan Sabha visited their villages, they be beaten and thrown out of the villages and the gathering at their meetings be dispersed.<sup>14</sup> Some senior leaders of the Lok Parishad were insulted and also assaulted. The Jagirdars also threatened

those who gave shelter to the leaders. Even the relatives of the leaders were threatened with dire consequences.<sup>15</sup>

On the other hand the peasants also began to organise themselves by holding meetings regularly. On 22<sup>nd</sup> Aug. 1941 the Jats from about sixty villages in Nagaur Pargana held a meeting and requested the Jodhpur Government to exempt all the Kisans from the Hal Lag in Khalsa and Jagir village. The Jat Krashak Sudharak Sabha<sup>16</sup> also organised a meeting at **Goth Manglod** on 19<sup>th</sup> September, 1941 under the Chairmanship of Choudhary Ganesh Ram of Khanpur Bhiyani and demanded (a) land settlement in Jagir village (b) abolition of excessive Hasil, forced labour begar and /ag-bags (c) abolition of the 'Hal' and 'Bhavii' Lag and (d) depriving the Jagirdars from cattle-pound powers. The Jodhpur Government issued orders about the Thikanas of Asop, Riyan and Raipur abolished 14 Lags. The following 14 Lags were abolished — Potlas, Thara, Dharmada and Kanwarias Rojgar Lags, Maladan, Zanani gharli, Ghas Mari Lags, Menials Lag, Kamdar's Lag, Kansa Lag, Bab Lag, Chella Lag, Champa Lag, Tol Lag, and Chungi Lag. Thus the peasant problems in most of Jagir areas remained precisely the same. The Marwar Kishan Sabha and the Jat Sudharak Sabha, in meetings at Ramdeora and Nagaur fairs, towards the end of Jan. 1942, advised the Kisans not to pay any Lag to Thikanedars and even to stop cultivation in the village if found necessary.<sup>17</sup> In 1941-1942 there had been a 'no sharing of crop' agitation and conflict between Jat and Jagirdars had broken out sporadically from that time on. While in formal administrative representation could handle political demands within the rules of the traditional order, it was less effective when the rules themselves were called into question, especially in Jagir areas where royal power was limited.<sup>18</sup>

The final phase of the Jat movement in Jodhpur started with the Marwar Kishan Sabha by Baldev Ram Mirdha after his retirement from the State

Government in 1946 and after the return of a number of young Jats from the British Provinces where several had received their LL.B. degrees, and the return of Jat troops from the war. The formal creation of the Marwar Kisan Sabha marked a major change in both the strategy and objectives of the Jat movement in Jodhpur state — a transformation from a caste-oriented and informally organized movement to a political organization directed at redefining social and economic relationships in rural society. The objective of these new organizations included. (1) Jagirdari abolition and the institution of land reforms (2) abolition of beggar and other forms of forced labour and illegal cases which had traditionally been exacted by many Jagirdars from Kisans and (3) the formal definition and protection of tenancy rights. Unlike the Lok Parishad, the Kisan Sabha did not attach high priority to the creation of a new constitutional order.

The Marwar Kisan Sabha demanded the government to pass a Tenancy Act and to start settlement work in Jagir areas.<sup>19</sup> These demands were again repeated in the second session of the Marwar Kisan Sabha held at Jodhpur on 25-26 April, 1943, under the Presidentship of Sir Chhotu Ram Choudhary.<sup>20</sup> On 2<sup>nd</sup> December 1943 the the Revenue Minister issued order for starting the land settlement work in Jagir areas beginning with the Parganas of Nagaur and Didwana.<sup>21</sup>

The Rajput Association of the Jagirdars of Marwar decided to boycott the Jagir settlement and refused to participate in the meetings of the New Jagir land-rent and Lag-Bag Enquiry Committee.<sup>22</sup> A meeting was held at Degana on 12<sup>th</sup> Dec., 1943 in which a working committee was formed by the Jagirdars of Merta, Nagaur and Parbatsar, under the Presidentship of Thakur of Borawar to oppose the settlement work in Jagir areas.<sup>23</sup>

The anti-settlement agitation of the Jagirdars was not considered justified by the Jodhpur Government and a warning was issued to them

on 14<sup>th</sup> Sept., 1944. The Government declined to recede from its decision and resorted to stringent measures for its successful implementation.<sup>24</sup>

These strict measures produced a salutary effect and the settlement work in Jagir areas was carried on without obstruction but the Jagirdars started harassing the peasants. In a Merta village a Jagirdar molested a young girl and gave serious injuries to two persons who tried to rescue the helpless victim.<sup>25</sup> The rape and murder of Merta village was bound to spread terror amongst the simple and poor village folk who were unarmed, helpless and defenceless. The Marwar Kisan Sabha, therefore, decided to hold meeting at Didwana village called DABRA. The Lok Parishad and the Kisan Sabha leaders after addressing a meeting at Didwana in which they highlighted the atrocities of the Jagirdars, arrived at Dabra on 13<sup>th</sup> March, 1947 to address a peasant meeting. Amongst them were Mathura Das Mathur, D.D. Purohit, Bansidhar, Radha Kishan Bohra and Narsingh Kachawa besides a few others.<sup>26</sup> Soon after their arrival in the tiny village they were encircled and attacked by the Jagirdars and their hirelings. Many of them were mounted on horse backs and were even armed with lethal weapons besides their /athies. All the leaders were mercilessly beaten. The whole village was surrounded and blocked and a reign of terror was let loose on the village folk who were to entertain the leaders. Houses and huts were looted and set on fire, women were raped and men folk beaten indiscriminately. The rampage continued for several hours. A few people even lost their lives. Panna Ram, Jaggu Jat, Chunni Lal Jat, Moti Ram Jat were killed.<sup>27</sup>

The news of the Dabra Kand spread like a wild fire throughout the country. This most shocking event evoked wide spread protest. A public meeting was held at Jodhpur where Jai Narayan Vyas demanded immediate and strong action.<sup>28</sup>

Dabra Kand was a gruesome tragedy enacted on the morrow of freedom in India. After Dabra Kand, the Marwar Kisan Sabha published 130

bulletins about the excessive Lag-Bags and Hasil of different villages and submitted the same to the President, Jagir Land Rent and Lag-Bag Enquiry Committee.

The conflict between Jat and Rajput from independence to the first General Election was frequently violent. The problem of land tenure was particularly important with the immanence of Jagirdari abolition. The insecurity of the Jagirdars position prompted numerous evictions of tenants, as landlords tried to appropriate as much land as possible for their own use. Even during the first General Elections there were many reports of violence — one of the last attempts to impose the ultimate method of decision making in the old order.

Under the leadership of Mirdha the Kisan Sabha continued as a separate organization and expanded its membership to other peasant castes and to other regions of the State. Semi-autonomous Kisan organization were founded among Jats in Barmer District and among Jats, Sirvis and Vishnois in Jodhpur, Pali and Jalore. With the creation of the 'popular ministry' in Jodhpur in 1948 the Kisan Sabha assumed representation as an autonomous party and Nathu Ram Mirdha, its young General Secretary, was awarded the position of Agriculture Minister and presided over the first major land reform measure to be enacted in the State. The Marwar Kisan Sabha maintained its cohesion and autonomy until its membership entered the Congress Party enmasse on the eve of the first General Election.

### References

1. *Richard Sisson : The Congress Party in Rajasthan, p. 79.*  
"A Complaints of many Jat activists during this period was that the Jodhpuri Jats were too Pro-Administration", Chagan Raj Chopasaniwala.
2. *Ibid.*
3. *Pema Ram : The Agrarian Movements in Rajasthan, p. 209.*

4. *Jodhpur Administration Record, File No.C/76 Part VI, RSAB.*
5. *Lok Parishad Bulletin, Year I, Vol. 6, 6 May 1941.*
6. *Shastri Yasoraj : Kishan Kesri Shri B.R. Mirdha.*
7. *Memoirs of the Jodhpur Police, Jodhpur : Government of Jodhpur Press, 1938, pp.139-143*
8. *Ram Dan Daukiya and several of his associates, the leaders of the Kisan Sabha in the Barmer area of Jodhpur State, held administrative position in the Jodhpur Railway. Interview with Ganga Ram Choudhary son of Ram Dan Daukiya, Zila Parmukh, Barmer.*
9. *Jodhpur State Forces, File No. 115/C, RSAB.*
10. *Choudhary Bhag Raj : "Do Pawan Parsang with Baldev Ram Mirdha."*
11. *Th. Desh Raj : Jat Jan Sevak, p. 202*
12. *Pradhan, M.C. : The Political System of the Jats of Northern India, pp. 112-218.*
13. *Richard Sisson : The Congress Party in Rajasthan, p. 81.*
14. *Lok Parishad bulletin, Year I, vol. 10, Sept. 1941.*
15. *Marwar Lok Parishad Record, File No. 151, 1941 A.D., RSAB*
16. *Jat Krashak Sudharak Sabha was established on 22 August 1938, in order to weed out bad customs and illiteracy among the Jats and to organise unity in the Community.*
17. *Jodhpur Police Confidential Record, Feb. 1942, RSAB.*
18. *Richard Sisson : The Congress Party in Rajasthan, p. 81.*
19. *Jodhpur Administration Record, File No. 76, Vol. VI, S.N. 204, RSAB.*
20. *Confidential letter dated 27" April 1942 from I.G.P., Jodhpur to Chief Minister of Jodhpur. Jodhpur confidential Record, RSAB.*
21. *The Jodhpur Government Gazette, Dec. 1943*
22. *The Jagir Land Revenue and Lag-Bag Enquiry Committee was formed by the Government on 7" Dec, 1942*
23. *Pema Ram: The Agrarian Movements in Rajasthan, p. 233*
24. *Jodhpur Jagir Settlement Record, File No. C.16, vol. I*
25. *The Hindustan times, March 13, 1947.*
26. *Mathur P.N. & Mathur Sobhag : The Dabra Kand — A Case Study of Feudal Reaction (Proceeding of the Rajasthan History Congress), Vol. VI, p. 130.*
27. *Marwar Lok Parishad Record, File No. 5, RSAB.*
28. *The Hindustan Times, March 20, 1947*
29. *The Venkatachar Report, p. 40.*

# An Ecocritical Reading of Temsula Ao's Short Story *Laburnum for My Head*

Vinita Sandu

Assistant Professor, Government Arts & Commerce College, Jadar (Gujarat)



shodhshree@gmail.com

## Abstract

*Temsula Ao is a celebrated author from the North-East of India. She is from the Ao tribe of Nagaland which is known for its peculiar nature connection. She is a poet, academician, short story writer, novelist of present age. Literature from the Northeast India is widely read for the environmental beauty and concerns that it presents. In this research paper, Eco criticism is used as a literary tool to bring forth the aspect of human-environment relationship in the writings of Temsula Ao. The North Eastern part of India is a store house of different cultures and ethnic elements of the various tribes that live here. These tribal societies have lived in close association with the natural environment and relied on the natural resources for their sustenance and survival. Eco criticism in simple notion is the study of the relationship between literature and environment. Here in this paper an attempt is made to do an eco critical reading of Temsula Ao's short story - Laburnum for My Head.*

**Keywords:** Ecocriticism, Environment, Nature, Temsula Ao, Tribal.

Ecocriticism is one of the youngest literary movement that started in 1990s in the US and then in the UK. William Reuckert is the first person who used the term Eco criticism in 1978 in his essay "Literature and Ecology: An experiment in Eco criticism". In it he opines that Ecocriticism is the application of ecology and ecological concepts to the study of literature because ecology (as a science as a discipline as the basis for human vision) has the greatest relevance to the present and future of the world. Cheryll Glotfelty defines "Ecocriticism as the study of the relationship between literature and the physical environment". In India, Nirmal Salvomany introduced this concept in literature through Tamil poetics. His books *Tinai 1*, *Tinai 2* and *Tinai 3* are based on the theory of Ecocriticism. The term 'Tinai' basically means 'landscape' or 'to join'. It refers to human community indigenous to a specific region. Its characteristic feature is its emphasis on the land-life relation.

The term 'Eco' come from Greek word *oikos* which means 'house' and 'critic' comes from *Kritis* that is to 'judge'. According to the Greek language *oikos* is a place where the sacred, the cultural, the natural, and the human elements are found in close knit together. And, therefore the Eco criticism deals with the expression of judgment upon the writings that describe the relation of man and nature. Broadly, as Lawrence Buell says "eco criticism is study of the relationship between literature and the environment."

Ecocriticism has several sub-approaches namely Deep Ecology, Ecofeminism, Ecosphere, Ecocide, and Oikopoetics. As an interdisciplinary theory Ecocriticism takes an earth centered approach to literary study. In it, we see that along with the application of ecological principles there is an insemination of natural and cultural philosophy in its study. It also gives the awareness that man has reached the limits of environmental destruction and is damaging the earth basic life (Soil, water, land, forests) system.

In present scenario, we witness that Ecocriticism is a readily accepted theory worldwide. It is a broad

genre that comprises many terms in it like green study and Ecopoetics. In literary criticism, the relation between the texts, writers and the world is studied. 'The world' is a sphere that comprises society and the whole human world. The world is expanded to entire ecosphere in the theory of Ecocriticism. Ecocriticism examines any work with application of ecological principles and environment to the study of literature. Through this, awareness is brought forward that we have reached to a danger limit and this awareness create in us a responsibility to contribute to environment restoration.

### **The Author and Her Locale**

In India we see that the Northeast region which is quite rich in eco diversity and beautiful landscape has rich number of celebrated writers too. The region is known for its different tribal culture too. The tribes of North-East India are unique and distinct in respect to their customs, traditions, language, costumes and festivals. One thing that binds this region together is the 'Nature'. The people of this region are known for their faith and belief in the living entity - the nature. Through the story of Temsula Ao an attempt is made to study the various aspects of ecological concerns and consciousness in relation to ecocriticism.

Temsula Ao belongs to the 'Ao' tribe of Nagaland and she voices the struggle of the Ao tribe. Her well-read anthologies include *These Hills Called Home; stories from a war zone (2006)* and *Laburnum For My Head(2009)*. She was given the Padma Shri award in the year 2007 and has written number of articles in oral traditions, folk songs, myths and cultural traditions of 'Ao' Nagas. Her beautiful collection of short stories 'Laburnum for my head' brought her the prestigious Sahitya Akadami Award in the year 2013.

### **Discussion and Analysis of The Story**

In this paper - the title story of the collection '*Laburnum for My Head*' with the same name is discussed in detail with reference to Ecocriticism. The tale is like this - The female

protagonist Lentina is very fond of the laburnum flowers and the tree. She wants to have some laburnum bushes in her garden. She decides to plant some laburnum saplings in her garden and waits for the flowers to blossom. But unfortunately every year her efforts go in vain and she cannot have this lovely plant in her garden. She mentions about it as - "..... some stray cows on being pursued by her neighbour's dogs and finding her get slightly ajar, had rushed into her Garden and public schooling munching on the plants they found there, including her precious laburnum saplings" (Ao 3).

Then in another year due to extra spray of DDT her tender saplings of laburnum ruined. She tried again and again to have the beauty of laburnums but in vain. This intention of hers was sometimes laughed upon in the family. Days passed on and one day her husband died due to a heart attack. Between all the hustle and bustle of the last rites ceremony, she wishes to come along to the cemetery. There standing amidst the innumerable tombstones surrounding her husband's grave, she pondered on "man's puny attempt to defy death; as if erecting those memorials would bring the dead back to life". This shows how man is after the concrete structures and to built permanence even after his death. Here also nature shows its encroachment and we can see grass and weed sprouts from these gravestones. Man who wants to master nature is but only a mere slave of it. There in the cemetery itself she comes up with an idea of a new cemetery which would only have "flowering trees and no headstones erected on the grave site". This would lead to "an environment liberated from all human pretensions to immortality". One day Lentina expressed an unusual wish ".....why not have laburnum tree planted on her grave, one which would live on over her remains instead of a silly headstone?" (Ao 4) She kept it a secret to her family and relatives and decided to buy a plot adjacent to the cemetery and wished to be buried there - "this is my spot, I want to be buried here when my time comes" (Ao 6).

She planted laburnum plants over her chosen patch of land with the help of her servant Babu, Babu took good care of her plants and after series of incidents the plants blossomed, she visits the place and is very happy and contend to see the "the yellow butterfly flowers". The sight made her very happy and we find her in eternal rest after this visit, as if she was living only to see the yellow blossom. After her demise, she was laid to rest under the laburnum flowers as she wished. Truly, she found a room of her own amidst laburnum flowers ".....an environment liberated from all human pretensions to immortality". (Ao 20)

### Conclusion

This tale of 'Ao' brings forth the element of pure love for the particular plant and its flowers. This love and desire is the extended form of environmental concern and 'Deep ecology'. Environmental concern is fruitful only when we utter desire to save our environment. Only seminars, talks or conferences would not suffice to save our ecosphere. It is characters like Lentina who would be able to save our nature and its gifts. This tale shows the intellectual brilliance of the author where she leaves the readers with her ideology of loving the environment and condemning the artificial and man-made glory of fake and temporary memorials.

### Works Cited

1. Ao, Tamsula. *Laburnum for my Head*. New Delhi: Penguin, 2009. Print.
2. Buell, Lawrence. *The Future of Environmental Criticism: Environmental Crisis and Literary Imagination*. Oxford: Blackwell Publishing, 2005. Print.
3. Glotfelty, Cheryl and Harold Fromm. *Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology*. Athens: University of Georgia Press, 1996. Print

### References

1. Barry, Peter. *Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory*. 3rd ed. New Delhi: Viva Books, 2010. Print.
2. Abrams, M. H. *A Glossary of Literary Terms*. 3rd Ed. New Delhi: Macmillan, 2006. Print.
3. Das, Nigamananda, ed. *Matrix of Redemption: Contemporary Multi-Ethnic English Literature from North East India*. New Delhi: Adhyayan Publishers, 2011. Print.
4. Zama, Margaret Ch., ed. *Emerging Literatures from Northeast India: The Dynamics of Culture, Society and Identity*. New Delhi: Sage, 2013. Print.

# To Study The Benefits and Disadvantages of Psychoanalytic Therapy In Treating Mental Problem

**Dr. Bhavna Detha**

Dean, S.S. Jain Subodh P.G. (Autonomous) College, Jaipur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*This study was done to understand the advantages and disadvantages of psychoanalytic therapy in treating mental problems. There are many therapies which are used for treatment and psychoanalytic is one of the oldest therapy. Dr Sigmund Freud was the propounder of this therapy and since its inception there has been a ongoing debate about its advantages and disadvantages. The present study was aimed to understand the concept of psychoanalysis, its uses and analysis its downside so we have a complete knowledge of therapy and can use it for betterment of mental issues .For research of this paper secondary data was collected and analysis done.*

**Keywords:** *Psychotherapy, psychoanalysis repressed desires, childhood trauma ,unconscious mind, defense mechanism.*

**P**sychoanalytic therapy is one of the most well-known treatment modalities. There are 5 key concepts to psychoanalytic therapy. They are the human nature, unconscious mind, structure of personality, anxiety, and defense mechanisms<sup>1</sup>.

The Freudian view human nature as 'deterministic' – meaning that it is determined at birth and that behavior is unconsciously driven by the psychosexual stages that one goes The goal of this therapy is to help patients better understand the unconscious forces that can play a role in their current behaviors, thoughts, and emotions<sup>2</sup>. This type of therapy is based upon the theories of Sigmund Freud, who founded the school of thought known as psychoanalysis. Freud's writings about psychoanalysis helped define the field of psychology in the 20th century and are objects of study in such diverse fields as literature, intellectual history, and the history of science. Repression, denial, dream analysis — these are all familiar concepts, thanks to Freud and his contributions to our views on human nature. One fundamental Freudian concept is the powerful effect of the unconscious part of the mind on our feelings, actions, relationships, and endeavors. Unconscious conflicts can cause anxiety, moodiness, or depressive thoughts; troubling personality traits; or difficulties at work or in finding or maintaining long-term relationships. Many such problems have their roots in past experiences and relationships<sup>2</sup>.

Psychoanalysis is a method of treating emotional difficulties that involves communication between a psychoanalyst and an individual, with the goal of gaining insight into the individual's inner world and how it affects his or her emotions, behavior, and relationships. But many of us still use terms that Freud introduced to help make sense of our feelings and conflicts — especially our inner conflicts — such as "defense mechanisms" (like denial, repression, or projection), the "Oedipal complex," the "pleasure principle," and, of course, the ego, id, and superego. Psychoanalysis is a collaborative effort. As the patient free-associates, the analyst listens carefully and helps her grasp the underlying unconscious sources of her difficulties. To encourage this awareness, the analyst not only interprets ongoing patterns

(interpretations the patient is welcome to amend, reject, or supplement), but also encourages the patient to re-experience them in the safety of the analytic setting. In psychoanalytic parlance, this is known as "transference." Psychoanalysis is a treatment based on the theory that our present is shaped by our past. Painful feelings can remain in the unconscious mind and influence our current mood and behavior and contribute to problems with self-esteem, personality, relationships and work[3].

Psychoanalysis seeks to bring troubling unconscious forces into conscious awareness. With the insights gained during analysis, the patient can work at improving relationships and productivity, interrupt self-defeating or self-destructive patterns, and perhaps even unlock creative potential.

Freud described the unconscious as the reservoir of desires, thoughts, and memories that are below the surface of conscious awareness. Psychoanalysis frequently involves looking at early childhood experiences in order to discover how these events might have shaped the individual and how they contribute to current actions. According to Leichsenring & Klein, [4] Comparisons of psychodynamic psychotherapies with CBT show both to be similarly efficacious.

Psychoanalytic therapists generally spend time listening to patients talk about their lives, which is why this method is often referred to as "the talking cure." The therapy provider will look for patterns or significant events that may play a role in the client's current difficulties.

### **Techniques Used in Psychoanalytic Therapy**

Psychoanalytic therapy also makes use of other techniques including free association, exploration of transference, observing defenses and feelings patients may not be aware of, as well as dream interpretation.

Every patient is encouraged to talk about and explore whatever is important to him or her. No

one else imposes an agenda of acceptable or appropriate areas of concern.

Therapy is not time-limited, but rather affords the patient the dignity and respect to pace the treatment and to preserve the therapeutic relationship as long as it proves valuable.

The role of the therapist is as an ally and partner in the therapeutic process. While it may sometimes necessitate confrontation, the overarching principle is "in the best interest of the patient" wherever possible[5].

### **The Psychoanalytic Process**

People undergoing psychoanalytic therapy often meet with their therapist at least once a week and may remain in therapy for a number of weeks, months, or even years. Through this process, the hope is that people will be able to gain insight and awareness of the unconscious forces that contribute to their current mental state.

#### **Intensive Treatment**

Patients may sometimes find that psychoanalysis can be quite intense and personal. It involves talking a great deal about past experiences, relationships, and feelings. This can also lead to feelings of discomfort as unconscious forces are brought to light. While the process can sometimes result in uneasiness, it can also be a great way to gain insight and deal with feelings that are difficult to put into words.

#### **Psychoanalytic Treatment: Goals and Objectives**

One of the primary aims of psychoanalysis is to help patients identify the hidden thoughts, behaviors, and desires that are creating problems in their day-to-day existence. The objective is to help patients understand the issues that have caused deeply rooted problems and a maladaptive perspective on life. Psychoanalysis assists the patient in adopting a fresh viewpoint. This new attitude can generate significant change and growth in the patient's life [6].

#### **Dealing with Unconscious mind**

According to psychoanalysis, the unconscious mind gives hints of the unacknowledged meaning of experiences in different ways. Such hints may include:

- Repetitive behaviors
- Topics that the person finds difficult to talk about
- Dreams
- Daydreams
- The nature of the patient-therapist relationship.

This approach to therapy often involves provoking emotional responses and overcoming defense mechanisms. Caston, J, & Martin, E [7] says Success often hinges on the ability to confront potentially stressful or triggering past experiences. Gaining insight into your feelings, behaviors, and experiences can help you better understand the unconscious forces that continue to exert an influence on your actions, your relationships, and your sense of self. A 2018 review published in *American Psychologist* found that the scientific evidence supports that psychoanalytic therapy was as effective as other evidence-based treatments.

### Conditions Treated by Psychoanalysis

Psychoanalysis may be used to treat a number of different psychological conditions, including:

- Obsessive-compulsive disorder
- Depression
- Psychosomatic disorders
- Phobias
- Anxiety
- Identity problems
- Emotion struggles or trauma
- Self-destructive behavior
- Relationship issues
- Sexual problems

People might choose psychoanalytic therapy

when they have long-term symptoms of anxiety, depressed mood, and behaviors that have a negative impact on functioning and enjoyment of life.

### Psychoanalysis Differs From Other Treatments in these aspects

- Psychotherapy is an umbrella term, which describes any form of treatment of the mind.
- All psychoanalysts have a primary qualification in psychiatry, psychology, social work or other health discipline. A review of the research comparing psychodynamic approaches to cognitive-behavioral therapy (CBT) identified seven features that set the psychoanalytic approach apart.

1. **The focus on emotions and how they are expressed.** Where CBT is centered on cognitions and behaviors, psychoanalytic therapy explores the full range of emotions that a patient is experiencing.
2. **The exploration of avoidance.** People often avoid certain feelings, thoughts, and situations that they find distressing. Understanding what patients are avoiding can help the therapist and client better explore why such avoidance comes into play.
3. **The identification of recurring patterns and themes in thoughts, feelings, and behaviors.** In some cases, people are aware of such repetitious actions but may be unable to break out of unhealthy or destructive patterns. At other times, patients are not aware of how such patterns influence their behaviors.
4. **The emphasis on talking about past experiences.** Other therapies often focus more on the here-and-now, or how current thoughts and behaviors influence how a patient functions. The psychoanalytic approach helps the patient explore their past and understand how it affects both the present and future.

5. **The exploration of interpersonal relationships.** Through the therapy process, patients are able to explore their relations with others, both current and past.
6. **The focus on the therapy relationship itself.** Because psychoanalytic therapy is so personal, the relationship between the therapist and the patient is an important part of the treatment process.
7. **Exploring the patient's fantasy life.** Where other therapies are often highly structured and goal-oriented, psychoanalytic therapy allows the patient to explore freely. Patients are free to give voice to fears, desires, dreams, and other urges that they have never spoken of before.

### **The patient-therapist relationship**

The bonds that develop in the course of treatment create a safe environment for the person to reveal personal information. The experience with the analyst is emotional as well as intellectual. The analyst helps by fostering the bond with the patient and helping them interpret the meanings behind their thoughts. This can help the person refine, correct, reject and modify disturbing thoughts and feelings. During analysis, the person comes to terms with these insights, noting their influence on experience in daily life, in fantasies and in dreams. By working with the analyst, the person can come to gain control over disabling life patterns and incapacitating symptoms. Over the course of time the person's behavior, relationships and sense of self can change in deep and enduring ways.

Some advantages of psychoanalytic theory are that it uncovers the roots of the problem, helps clients to relieve past experiences to work through the repressed conflicts and it explains how the personality is constructed. On the flip side, psychoanalytic therapy often needs to occur for extended periods of time and it is expensive to hire a therapist in the long run. Therefore people might want to opt for lesser sessions and therapists may focus on limited

objectives instead of personality reconstruction. In psychoanalytic therapy, the therapist often takes an anonymous role, which could make the patient feel uncomfortable and not open up. In a research done by the Young Adult Psychotherapy Project (YAPP), it showed that therapists should strive to form a 'secure attachment relationship' with the client so that they can open up to painful memories and thoughts in the process [8].

### **Advantages**

- It explains human behavior and personality and seems to be a complete theory of personality.
- The role of early childhood experiences and the unconscious is emphasized.
- The dynamic nature of human behavior also gets emphasized.
- The defense mechanisms of ego is also emphasized.
- It provides scope for a serious interest in psychological treatment of mental problems.
- It provides scope for further theoretical and research work in personality.
- It's a long and intensive therapy. Therapies of this nature have been shown to produce better results

### **Disadvantages:**

- Freud's theory lacks empirical evidence and relies too much on therapeutic achievements.
- Freud's clinical data are also inaccurate, flawed and selective at best.
- Freud's psychoanalysis techniques like ideas on the interpretation of dreams and the role of free association are also criticized.
- Psychoanalysis cannot be called a science and many of the principles upon which it is based are wrong.
- Freud ignored individual differences Critics claim that some therapists are not helping

patients recover repressed memories. Instead, they are planting 'false memories' into their patients' minds.

- Some of Freudian concepts are poorly designed. For example, psychic energy is not explained what is it and how it can be measured.
- The theory also does not have scientific proof.
- The role of sexual drive is over emphasized.
- The theory suggests that there is no free will

One of the greatest strengths of psychoanalytic theory is that it can be used to explain the nature of human development and all aspects of mental functioning. One of the strengths of psychoanalytic theory is that it gives patients the opportunity to talk about problems with a professional, which could help relieve symptoms of psychological illness. There are everyday examples of the defense mechanisms in real life - such as crime victims often experiencing repression, and denial frequently found in everyday language. Psychoanalytic therapy helps individuals gain an in-depth understanding of the psychological roots that drive their thoughts and behaviors. This process of self-exploration helps the patient gain insight into their own behavior patterns and motivators, which leads them to make healthy, even life-altering, changes.

## References

1. Deribat, M. and H. Belhamidi, *Chinua Achebe's No Longer at Ease from a Postcolonial & Psychoanalytic Perspective: Marriage & Education as Examples for Analyses*. 2020, University Ahmed Draya-Adrar.
2. Freud, S. and J.E. Strachey, *The standard edition of the complete psychological works of Sigmund Freud*. 1964.
3. Association, A.P., *Psychoanalytic terms and concepts*. 2018: Yale University Press.
4. Leichsenring, F. and S. Klein, *Evidence for psychodynamic psychotherapy in specific mental disorders: a systematic review*. *Psychoanalytic Psychotherapy*, 2014. 28(1): p. 4-32.
5. Kernberg, O.F., et al., *Transference focused psychotherapy: Overview and update*. *The International Journal of Psychoanalysis*, 2008. 89(3): p. 601-620.
6. Fonagy, P., et al., *Pragmatic randomized controlled trial of long-term psychoanalytic psychotherapy for treatment-resistant depression: the Tavistock Adult Depression Study (TADS)*. *World Psychiatry*, 2015. 14(3): p. 312-321.
7. Caston, J., *Can analysts agree? The problems of consensus and the psychoanalytic mannequin: I. A proposed solution*. *Journal of the American Psychoanalytic Association*, 1993. 41(2): p. 493-511.
8. Lilliengren, P., *Exploring therapeutic action in psychoanalytic psychotherapy: Attachment to therapist and change*. 2014, Department of Psychology, Stockholm University.

# Neologism: a lingua-culture approach

**Dr. Richa Bohra**

Assistant Professor, J.N.V.University, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

## **Abstract**

*Neologism is a newly coined word or a phrase which evolves out of the necessary invigorating influences. Pertaining to these influences on the channel of Language, the study seeks to approach holistically via the innovative mediums of social and cultural pedagogy of phonetic variations and speech sounds- which in turn gives us a comprehensive analogy of the term called NEOLOGISM. This expression of language evolves out of the techniques of Borrowing, Blending, Compounding and Acronym – to name a few. Hence, owing to the cultural purview of Language and its developments configured from the last few decades; the present study encapsulates and subsumes the vision with an approach to the enlarging domains of Neologism in brief.*

**Keywords:** *Language, Ideas, Popular Culture, Social Anthropology, Lexicon, Deconstruction and Morphology.*

**L**anguage is the expression of ideas by means of speech-sounds combined into words. Words are combined into sentences, this combination answers to that of ideas into thoughts [Rajimwale 3]<sup>1</sup> Comprehending with these prolific words of the eminent English Philologist- **Henry Sweet**, the study seeks to acquaint with the basic understanding of human behaviour which is richly accommodated with the figurative source of spoken language.

For language is a very fine, sophisticated medium of conveying message to one another and it is the sole treasure of human beings only. Centuries of dedicated research and studies has revealed to us the expository finesse of language as a characteristic human product which altogether comprises of an internal structure. It operates and cohesively develops with the two elemental features of:

- (i) Sound or noises that the human being is capable of making – the articulation of which constitutes the expression part of it; and
- (ii) The Meaning, prolifically understood as the content part - is what the expression is profusely related with [Rajimwale 4]<sup>2</sup>.

Thus, this source of communicative approach is essentially met with the characteristic manifestation of giving, receiving or exchanging ideas through appropriate media which in turn, enables the group or individuals to persuade, convince and seek or give information.

Meanwhile Language is both a system of communication between individuals and a social phenomenon. Wherein, the theory of socio-linguistics intends to convey that the channel of language is verily governed and moulded by the nuances of culture, class, gender, race and nationality. In lieu of which it would be worth-while to quote the words of **Elizabeth Drew** who asserted that:

“Language is like soil. However rich, it is subject to erosion, and its fertility is constantly threatened by

uses that exhaust its vitality. It needs constant Re-Invigorating if it is not to become arid and sterile” [termcoord.eu]<sup>3</sup>.

However Language is a dynamic tool which receives adapts and cohesively reflects the dazzling shades of the developing culture in the contemporary society. And with the growth of time and space, Language changes and adapts accordingly in the widening horizons of culture and society at large. In the early 1960s a number of linguists in America began to investigate English usage in the United States from a sociological point of view. Since then the times are witnessing a flood of publications, predominantly in America before but now increasingly much has been communicated and recorded in Europe as well with contemporaneous zeal and vigour.

Proceeding further anthropologically to this potent channel of human expression, the approach observes that the acquaintance of Language is comprehensively perused with an approach to the circle of all groups – young and old, male and female, rural and urban settings also add to this enrichment process of Language. Theoretically, the English Lexicon has mutated over the sway of time from the variations of parent languages – noted chiefly with the names of Latin, French and Old English. Though certain words have still retained their fundamental origins but over the time many new words have been added to the evolving world of encyclopaedia. Owing to these ideas the present approach seeks to explore the boundaries of the emerging NEOLOGISM. – a potent channel of linguistic expression which spreads majorly via the channel of Multi-media and Popular Culture in the frame of contemporaneous literature.

NEOLOGISM is understood as a newly coined word or a new term which has entered the world of being called as expressions of common use, but it has not yet been recognised and accepted into the frame of Mainstream Language. Neologisms appear due to the developments communicated in the frame of social life, culture

or science, and are usually attributable to their specific era.

Etymologically, the word Neologism is derived from the fusion of the Greek 'Neo' meaning New and Logos implied as a Word or speech. **Helge Niska** in his paper entitled '*Explorations in translational creativity: Strategies for interpreting neologisms*' has defined Neologism as “tokens of a creative process, a novel relational product, growing out of the uniqueness of the individual on the one hand, and the materials, events, people, or circumstances of his life on the other” [translationjournal.net]<sup>4</sup>.

Therefore it dictates moreover that some of the new words are beaded together for a temporary phase which gradually fades into the world of insignificance but the words in harmony with the enduring scales of the changing society retains its prevalence and hence becomes the permanent feature of our lexicon.

Neologisms are often formed by combining existing words or by assigning words with new and unique suffixes or prefixes. This mode of language is further developed by the techniques of Blending, Abbreviation or Acronym and with the exercise of intentional rhyming and cohesive play of sounds.

Thereon, Neologisms traverses through the three stages calculated as: creation, trial and establishment. Whereby, the new term enters the body of common language as a Protologism (freshly coined word) [Wikipedia.org: Neologism]<sup>5</sup> and is used only by a limited audience at first. It is then diffused till it is widely accepted and stabilised in the cultural repository of ideas and thence it acquires a stability which is indicated by its appearance in Glossaries, Dictionaries and huge corpora of Thesaurus at large. It is also understood as a blend of existing linguistic fragments, which are used to coin a new term. As we find with the emerging child learning apps named as Lingokids and Kiddopia – the developing realms are all the more enamoured by this enrichment of linguistic pedagogy.

However the majority of these new words and expressions include at least one lexical component which is familiar to us. They are framed and rather moulded substantially via the tools of various Linguistic Processes which are conjectured as follows:

**Compounding:** is a channel through which the existing words are combined together to embody a new word like Speed-dating, Text messages, Book-cases, Blueberry, Notebook.

**Blending:** is a process where the parts of existing words are fused together like

Brunch- Breakfast and Lunch; Flexitarian-Flexible vegetarian; Smog- Smoke and Fog.

**Re-appropriation:** is understood as assigning new senses for words such as Mouse, Virus, Google, Surf and Web.

**Abbreviation:** As in colloquial expression recorded as LOL –Laugh out loud;

ASAP – As soon as possible; BTW- By the way; Sci-fi for Science Fiction and Chicklit for Chick Literature.

**Affixation:** is also a technique where the recognised affixes are cognitively attached to give rise to new concepts such as Transnationality; Transhumanism; Transgender; Pro-feminist.

Hence, contemporaneously the stylistic process of linguistics today is met with creating new words via the channel of borrowing from the other languages and then it enters and evolves as a word of common use. As in Latin we meet with the derivation of Sub which is eventually coined in English as Submarine and Subway.

Neologisms meet popularity through the mediums of Memetics, Mass-media, Internet and Academic Discourse – ultimately conferring on the idea of the distinctive jargons. Pertaining to the socio-cultural advancements they tend to

disappear and evade from the world of common use, just as readily and swiftly as they reckon back to the idea of Cultural Discourse.

Therewithal, Neologisms are words that appear from nowhere, exert their significance in a bid to become accepted and exist for just as long as it is counted as relevant and is very much in vogue as per the views and cultural acceptance of the masses is considered. It emerges as a significant aspect of *Popular Literature* which can be drawn and developed with the theoretical implication of **Derrida's Deconstruction**; wherein the structured frame of words act as a SIGN in the light of Semiotics- to transgress the limiting boundaries and rather meets with the world of infinite possibilities and fecund imagination – to the build of a new dictionary of ideas and ideological innovations to the utmost.

#### References

1. Rajimwale, Dr. Sharad. *Elements of General Linguistics. Volume 1. New Delhi: Rama Brothers, 2003.*
2. Drew, Elizabeth. <<https://termcoord.eu>>
3. Sayadi, Forough. 'The Translation of Neologisms'. <<https://translationjournal.net/journal/56neologisms.htm>>
4. Neologism <[en.Wikipedia.org](http://en.Wikipedia.org)>
5. Abrams, M.H. & Geoffrey Galt Harpham. *A Glossary of Literary Terms. Tenth Edition. Delhi: Cengage Learning, 2012.*
6. Cuddon, J.A. *The Penguin Dictionary of Literary Terms and Literary Theory. New Delhi: Penguin Books, 2013.*
7. McDonald, Lucinda. 'Neologisms as Markers of Culture and Technology'. <https://yorku.ca-docs>
8. Neologisms <https://www.britannica.com>





# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

## Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

Address .....

District .....

State .....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date

(Signature)

<b>Frequency</b>	: Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
<b>Mode of Payment</b>	: Subscription fee can be deposit through online Banking.
<b>Bank Details</b>	: <b>DR S N TAILOR FOUNDATION</b> (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 <b>IFS Code</b> : UBIN0932639 • <b>MICR Code</b> : 305026014 <b>Account Type</b> : Current • <b>Subscription Fees</b> : 1800 Rs.

Membership No. ....

Date .....

(For Office Use only)

## DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....  
hereby declared that the paper entitled'.....  
.....'is unpublished original paper which is not sent any where  
for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....  
.....which is  
exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the  
Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the  
address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other  
journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

Residential Address .....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address .....



# Shodh Shree

( A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

## Institutional Membership Form

The Editor  
Shodhshree  
Jaipur

Dear Sir

I want to become a member of this Journal for -

1 year

(Rs. 1000/-)

2 years

(Rs. 1800/-)

3 years

(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID .....

Date:

Signature

For Office Use Only

Membership No. \_\_\_\_\_

Date \_\_\_\_\_

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)  
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

**Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION**

(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)

Union Bank of India, Beawar - 305901

**UB A/C No. 032632101000001 • Account Type : Current**

IFS Code : UBIN0932639 • MICR Code : 305026014



## Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.
3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.
6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.
7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

**Book Review :** For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

**Note :** Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail: [shodhshree@gmail.com](mailto:shodhshree@gmail.com)  
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134**

To,

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

**शोध श्री** (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी

टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,  
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।